

**DUE DATE SLIP****GOVT. COLLEGE, LIBRARY**

KOTA (Raj.)

Students can retain library books only for two weeks at the most.

BORROWER'S No.	DUE DATE	SIGNATURE

महामुनि आदिकवि श्री वाल्मीकिप्रणीत

# श्रीरामायण महाकाव्य

[ तृतीय भाग ]

( ३ )

## अयोध्याकाण्ड

( उत्तरार्ध )

( हिंदी अनुवाद तथा निरीक्षण )

संपादक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर  
माध्यम, स्वाध्याय-मंडळ, औरंग ( जि० सातारा )

प्रथम संस्करण

विक्रम-संवत् २००२, गालीवाहन शक १८६७, इ. स. १९४६

चौखम्बा विद्यामवन

चौक, वाराणसी ।

# अयोध्याकाण्ड

( उत्तरार्ध )

युद्धजन्य परिस्थितिके कारण यह विभाग समयपर प्रकाशित न हो सका । कागज भी इवेतरंगवाला न मिल सका । इसकी पाठकक्षमा करें । अगले भाग इरेत कागजपर पूर्वके समान समयपर प्रकाशित होंगे ।

औध  
१ फागुन विक्रम-संवत् २००२



—प्रकाशक

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस  
पो० बा० नं० ८, वाराणसी ।

---

मुद्रक तथा प्रकाशक— व० श्री० सातवळेकर, B. A.,  
भारतमुद्रणालय, औध ( जि. सातारा )

---

# श्री वाल्मीकि रामायणान्तर्गत अयोध्याकांडके उत्तरार्धकी विषयानुक्रमणिका

---

सर्ग ५६ पृ. १-६

चित्रकूटका दर्शन ( श्लोक १-१५ ) वहांके वाल्मीकि मुनिका दर्शन ( श्लो. १६-२० ) कुछ समय वहां निवास ( श्लो. २१-३५ )

सर्ग ५७ पृ. ६-११

सुमन्त्रका अयोध्यामें आना ( श्लो. १-५ ), उसका राजमंदिरमें प्रवेश ( श्लो. ६-१३ ) कौसल्यादिकोंका शोक ( श्लो. १४-३४ )

सर्ग ५८ पृ. ११-१६

राजा दशरथका सूतसे प्रश्न करना कि ' सीताके साथ राम कैसे बनमें गये ? ' ( श्लो. १-१२ ) सूतका उत्तर ( श्लो. १३-३७ )

सर्ग ५९ पृ. १६-२१

मृतके सन्मुख रामके लिये राजा दशरथका विलाप ( श्लो. १-३३ )

सर्ग ६० पृ. २१-२४

कौसल्याका शोकसे सूतको कहना कि मुझे भी दण्डकारण्यमें ले चलो ( श्लो. १-२० ), मृतके निराकरण करनेपर उसका शोक ( श्लो. २१-२७ )

सर्ग ६१ पृ. २४-२८

पुत्र शोकसे शोषित कौसल्याका दशरथ राजासे संवाद ( श्लो. १-२७ )

सर्ग ६२ पृ. २८-३०

कौसल्याके कठोर वचनसे कंपित हुआ राजा दशरथ कौसल्याके सामने हाथ जोड़कर पड़ा ( श्लो. १-१० ), यह देखकर कौसल्या भी अत्यंत दुःखित होकर रोने लगी ( श्लो. ११-२० )

सर्ग ६३-६४ पृ. ३०-४८

दशरथने अपना पूर्ववृत्तांत कहा, श्रावणमुनिवधका इतिहास सुनाया ( १-५४ ) पुत्रशोकसे मरनेका शाप ( १-५६ ) बहुत शोकके पश्चात् राजाकी मृत्यु ( ५७-५८ )

सर्ग ६५ पृ. ४८-५२

दशरथकी मृत्युपर उसकी स्त्रियोंका शोक ( १-३० )

सर्ग ६६ पृ. ५३-५६

सब स्त्रियोंका शोक । दशरथके शरीरको तेलकी कड़ाहीमें रखना ( १-२९ )

सर्ग ६७ पृ. ५६-६१

वसिष्ठ ऋषिके साथ मंत्रियोंकी मंत्रणा । अराजकसे नाश ( १-३८ )

सर्ग ६८ पृ. ६१-६३

वसिष्ठकी आज्ञासे मानुलगृहसे भरतको छुलानेके लिये दूतोंका भेजना ( १-३२ )

सर्ग ६९ पृ. ६३-६६

भरतका दुष्ट स्वप्नका दर्शन

सर्ग ७० पृ. ६६-७०

केकयरामाके घर भरतका दूतोंके साथ संवाद, और भरतका वहांसे प्रस्थान ( १-३० )

सर्ग ७१ पृ. ७०-७६

मानुलगृहसे वापस आये भरतका धूम्य अयोध्याका दर्शन, भरतका पिताके मंदिरमें प्रवेश

सर्ग ७२ पृ. ७६-८१

कैकेयीके द्वारा राजमरण, रामवनवास आदि वृत्तका कथन और भरतको राज्य स्वीकार करनेका उपदेश ( १-८२ )

सर्ग ७३ पृ. ८३-८६

भरतका कैकेयीकी निन्दा करना, भरतका शोक ( १-२८ )

सर्ग ७४ पृ. ८६-९१

भरतकी की हुई कैकेयीकी निन्दा ( १-३६ )

सर्ग ७५ पृ. ९१-९९

भरतका कौसल्यासे संवाद ( १-६५ )

सर्ग ७६-७७ पृ. ९९-१०५

दशरथका धन्यसंस्कार

सर्ग ७८ पृ. १०६-१०८

भरतके पास मन्थराका आना, शत्रुघ्ने मन्थराका बंधन करना ( १-२६ )

सर्ग ७९ पृ. १०९-११०

चौदहवें दिन मंत्रियोंका भरतसे कहना कि ' तू हमारा राजा हो । ' शत्रुघ्नका कहना कि ' रामही राजा होगा । '

सर्ग ८० पृ. १११-११३

अयोध्यासे मार्गका वर्णन ( १-२२ )

सर्ग ८१ पृ. ११४-११६

रामचन्द्रजीके वनवाससे भरतका शोक, वसिष्ठका आना और राजसभामें वार्तालाप ( १-१६ )

सर्ग ८२ पृ. ११६-१२०

वसिष्ठका राज्य ग्रहण करनेके लिये भरतको उपदेश । रामचन्द्रको वनसे वापस लानेका भरतका निश्चय ( १-३२ )

सर्ग ८३ पृ. १२०-१२३

रामको वापस लानेके लिये चले भरतकी शृंगवेर पुरमें स्थिति ( १-२६ )

सर्ग ८४ पृ. १२३-१२५

शृंगवेर पुरमें भरतके आनेसे निषादाधिपति गुहके मनमें भरतके विषयमें संदेह । भरत और गुहकी भेट । भरतके उद्देश्यका गुहको ज्ञान ( १-१८ )

सर्ग ८५ पृ. १२५-१२८

भरद्वाज ऋषिके आश्रमका मार्ग । भरत व गुह का संवाद ( १-२२ )

सर्ग ८६ पृ. १२८-१३१

गुहने राम-लक्ष्मणके जानेका मार्ग भरतको बताया

सर्ग ८७ पृ. १३१-१३४

गुहके द्वारा राम-लक्ष्मणका विशेष वर्णन ( १-२४ )

सर्ग ८८ पृ. १३४-१३८

रामचरित्रके चकित हुए भरतका स्वगत भाषण ( १-३० )

सर्ग ८९ पृ. १३८-१४१

भरतादिकोंका प्रयागमें गमन ( १-३३ )

सर्ग ९० पृ. १४१-१४५

वसिष्ठादिकोंके साथ भरतका भरद्वाज ऋषिका दर्शन करना ( १-३४ )

सर्ग ९१ पृ. १४४-१५६

भरतादिकोंका भरद्वाजके आश्रममें अर्घ्य आतिथ्य और उसका वर्णन ( १-८४ )

सर्ग ९२ पृ. १५६-१६०

भरद्वाज और भरतका संवाद । ऋषिको प्रणाम करके भरतका आगे प्रस्थान ( १-४० )

सर्ग ९३ पृ. १६१-१६४

धिवक्रूटके समीपकी मन्दाकिनी नदीके तटपर भरतके सैन्यका डेरा लगाना । भरतका रामचन्द्रकी कुटीके धूर्तके अनुसंधानसे उस ओर जाना ( १-९७ )

सर्ग ९४ पृ. १६४-१६७

चित्रकूटमें रहनेवाले राम और सीताका संवाद ( १-२७ )

सर्ग ९५ पृ. १६७-१७०

सीता और रामका पर्वतपर भ्रमण, सीताको मंदाकिनी नदीका दर्शन कराना । सीताको कष्ट देनेवाले कौबेका अवयव छेद

सर्ग ९६ पृ. १७१-१७८

दूरसे भरतकी सेना देखकर राम-लक्ष्मणका संवाद । रामको भरतका वध करनेके लिये लक्ष्मणकी संमति ( १-५७ )

सर्ग ९७ पृ. १७९-१८२

चित्रकूटपर आये भरत और शत्रुघ्नका संवाद ( १-३० )

सर्ग ९८ पृ. १८२-१८६

भरतका रामकी कुटीके पास पैदल गमन ( १-३१ )

सर्ग ९९ पृ. १८६-१८९

रामको कुशामनपर भूमिपर बैठे देखकर भरतका विलाप ( १-१८ )

सर्ग १०० पृ. १८९-१९४

भरतको विवर्ण और दुःखित देखकर रामका उसको अपनी गोदमें बिठलाकर उसके साथ आदरपूर्वक भाषण करना ( १-४२ )

सर्ग १०१ पृ. १९४-२०३

रामका भरतके प्रति वन आगमनके हेतुका पूछना । भरतका शोक-पूर्वक पितृनिधनादिका कहना । पश्चात् रामका भरतको आलिंगन देकर शोकपूर्वक पिताके दिये राज्यका उपभोग करनेके लिये आज्ञा करना ( १-७६ )

सर्ग १०२ पृ. २०३-२०७

रामका भाषण सुनकर ज्येष्ठ पुत्रही राज्यका अधिकारी हैं इत्यादि भरतका रामसे कथन । रामको राज्यस्वीकार करनेके लिये भरतका भाषण ।



पिताकी उदक क्रिया करानेके लिये भरतकी रामके प्रति मृचना  
( १-२६ )

सर्ग १०३ पृ. २०७-२०८

पिताकी मृत्युसे राम, लक्ष्मण और सीताका शोक ( १-९ )

सर्ग १०४ पृ. २०९-२१५

कौसल्यादि राजननियोंका परस्पर भाषण ( १-४९ )

सर्ग १०५ पृ. २१५-२१९

भरतका रामसे कहना की मुझे दिया राज्य तेरे लियेही है ( १-३९ )

सर्ग १०६ पृ. २१९-२२४

भरतका रामसे पारवार कहना कि तू अयोध्याको जा और राज्य कर  
( १-४२ )

सर्ग १०७ पृ. २२४-२२८

पिताकी सत्यवादिता सिद्ध करनेके लिये भरतकोही राज्य लेना चाहिये  
और अपनेको वनमें रहना योग्य है ऐसा रामका कहना । देवानुर संप्रा-  
ममें कैकेयीको दशरथने ऐसे वर दिये थे इत्यादि कथन ( १-३५ )

सर्ग १०८ पृ. २२८-२३१

जावाली नुनिका रामसे कहना कि तू भरतका दिया राज्य लो ( १-१९ )

सर्ग १०९ पृ. २३१-२३३

रामने जावालीका सांखन करके कहा कि अष्ट प्रतिज्ञ होकर अयोध्यामें  
रहना मुझे योग्य नहीं है इ० ( १-१८ )

सर्ग १११ पृ. २३९-२४३

दशरथकी वंशावली कहकर ज्येष्ठत्वके कारण तू ही राज्यका अधिकारी  
है इत्यादि वसिष्ठाका रामसे कथन ( १-३५ )

सर्ग ११२ पृ. २४३-२४७

मैं तेरा गुरु हूँ इसलिये मेरी आज्ञा मान ऐसा वासिष्ठका रामसे आग्रह-  
पूर्वक कथन । राम और भरतका संवाद ( १-३२ )

सर्ग ११३ पृ. २४७-२५१

रामका कहना कि रामकी प्रतिज्ञा भंग नहीं होगी । अन्तमें रामकी  
पादुकाएं लेकर भरतका वापस आनेके लिये निश्चय ( १-३३ )

सर्ग ११४ पृ. २५१-२५४

भरतका वापस आकर भरद्वाज ऋषिसे सब वृत्तान्तका कथन  
( १-२४ )

सर्ग ११५ पृ. २५४-२५७

भरतका अयोध्यामें आना । राजासे रहित अयोध्याको देखकर भरतका  
आंखें डालना ( १-२९ )

सर्ग ११६ पृ. २५७-२६०

रामकी पादुकाएं विरवर धारण करके नन्दिग्राममें भरतका आना  
( १-२३ )

सर्ग ११७ पृ. २६०-२६३

भरद्वाजके आश्रमवासी ऋषियोंसे रामका संवाद ( १-२६ )

सर्ग ११८ पृ. २६४-२६७

रामका ऋषियोंके कष्टोंको जानना । रामका अत्रिके आश्रममें निवास ।  
अनुसूया और सीताका संवाद ( १-२८ )

सर्ग ११९ पृ. २६७-२७४

सीताका अरुणा वृत्तान्त अनुसूयासे कहना ( १-५४ )

सर्ग १२० पृ. २७४-२७७

अनुसूयाको प्रगाम करके सीताका आगमन और रामसे संवाद ।  
राम-लक्ष्मण और ऋषियोंका संवाद । सीताके साथ रामका राक्षसमय वन  
में प्रवेश ( १-२२ )

## रामायण चरित्रमाला

१ राममाता कौसल्या	"
कौसल्याका दातृत्व	२८४
कौसल्या और कुन्तीकी तुलना	२८५
२ लक्ष्मण-माता सुमित्रा	२८९
कैकेयी और सुमित्राकी तुलना	२९३
३ भरत-माता कैकेयी	२९४

## वाल्मीकिरामायण अयोध्याकाण्ड उत्तरार्धका

तिरीक्षण—	३०१
रावणके साम्राज्यका नाश करने की इच्छा करनेवाले ऋषिमुनि	"
रामका वनवास राष्ट्रका सुख बढावेगा	३०२
कैकेयीपर क्रोध न करो	३०३
रामके कारण राक्षस क्रुद्ध हुए	३०५
राक्षस रामका द्वेष करते थे	३०७
भरतके विषयमें कौसल्याके विचार	३०९
"      "      भरद्वाज भी संदेह करते हैं	३१०
"      "      गुहके मनमें भी संदेह	३११
भरतका शुद्ध भाव	३१२
भरतका अंतरंग	३१३
भरतका घोर स्वप्न । भरतका प्रायोपवेशन	३१५
श्री रामचन्द्रजीकी प्रतिज्ञा	३१६
पिताका वचन । लक्ष्मणका क्रोध	३१७
दूम्बरके द्वारा भोगा हुआ राज्य राम नहीं लेगा	३१८
राष्ट्रपुत्रका मत	३१९
मंत्रियोंसे पुछातक नहीं	३२०

# श्री रा मा य ण म् ।

## अयोध्याकाण्डम् ।

( उत्तरार्धः )

पदपञ्चाशः सर्गः ।

अथ राज्यां व्यतीतायामवसुप्तमनन्तरम् ।	
प्रबोधयामास शनैर्लक्ष्मणं रघुपुङ्गवः	१
सौमित्रे ऋणु वन्यानां वल्गु व्याहरतां स्वनम् ।	
संप्रतिष्ठामहे कालः प्रस्थानस्य परंतप	२
प्रसुप्तस्तु ततो भ्रात्रा समये प्रतियोधितः ।	
जहौ निद्रां च तन्द्रां च प्रसक्तं च परिश्रमम्	३
तत उत्थाय ते सर्वे स्पृष्ट्वा नद्याः शिवं जलम् ।	
पन्थानमृपिभिर्जुष्टं चित्रकूटस्य तं ययुः	४
ततः संप्रस्थितः काले रामः सौमित्रिणा सह ।	
सीतां कमलपत्रार्श्रीमिदं वचनमब्रवीत्	५

रात बीतने पर लक्ष्मण को रघुश्रेष्ठ रामने शनैः शनैः जगाया \* । 'लक्ष्मण ! वन में पक्षी मधुर शब्द बोल रहे हैं, अब चलने का समय आ गया, उठो, यहां से चलो ।' राम द्वारा जगाये जाने पर लक्ष्मण का निद्राजनिन आलस्य तथा मार्ग का थकान जाता रहा । ततः सब उठ यमुनाजल से हाथ मुख धो मुनिनिषेवित चित्रकूट के मार्ग में चले । लक्ष्मण के संग जाते राम सीता से कहने लगे ( १-५ ) ।

\* इस से इतना स्पष्ट हुआ कि लक्ष्मण के १४ वर्षों तक न सोजाने की कल्पना निराधार है ।

हिं. १. ( अयोध्या. उ. )

आदीप्तानि च वैदेहि सर्वतः पुष्पिताग्रमान् ।	
सैः पुष्पैः किंशुकान्पश्य मालिनः शिशिरात्यये	६
पश्य भङ्गातकान्वित्वाग्रैरनुपसेवितान् ।	
फलपुष्पैरवननान्नूनं शक्याम जीवितुम्	७
पश्य द्रोणप्रमाणानि लम्बमानानि लक्ष्मण ।	
मधूनि मधुकारीभिः संभृतानि नगे नगे	८
एष क्रोशति नत्यूहस्तं शिखी प्रतिवृजति ।	
रमणीये वनोद्देशे पुष्पसंस्तरसंकटे	९
मातङ्गयूथानुसृतं पक्षिसंघानुनादितम् ।	
चित्रकूटमिमं पश्य प्रवृद्धशिखरं गिरिम्	१०
समभूमितले रम्ये द्रुमैर्बहुभिरावृते ।	
पुण्ये रम्यामहे तात चित्रकूटस्य कानने	११
ततस्तौ पादचारेण गच्छन्तौ सह सीतया ।	
रम्यमासेदतुः शैलं चित्रकूटं मनोरमम्	१२
तं तु पर्वतमासाद्य नानापक्षिगणायुतम् ।	

‘हे वैदेहि ! देखो तो वसन्त ऋतु में चारों ओर कैसे पलाश के वृक्ष फूल रहे हैं, मानों अपने अपने फूलों की माला धारण कर रहे हैं । फिर और वृक्ष व वेल के वृक्ष तो देखो, जिन के नीचे अति दुर्गम होने से कोई जन नहीं है और जो फल पुष्पों के भार से झुके पड़ते हैं । हे लक्ष्मण ! देखो तो प्रत्येक वृक्ष में शहद के छत्ते लटक रहे हैं, जिन में सहस्रों मधुमात्रिकायां चिपट रही हैं । कोकिल कैसी बोल रही हैं, जिस के पीछे पीछे मोर भी बोलता है । इसी रमणीय वन में जहाँ कि नाना प्रकार के पुष्प फूले हैं, हाथियों के झुण्ड के झुण्ड घूम रहे हैं, नाना प्रकार के पुष्पों से युक्त वृक्षों से भूषित चित्रकूट दिखाई देता है । हम चित्रकूट के नीचे नीचे जो अति रमणीय वृक्षों का वन है, जिस की भूमि सर्वत्र समतल है, यहाँ रह कुछ दिन निवास करेंगे ।’ ( ६-११ )

ऐसा कहते कहते पैदल चलते अति मनोहर चित्रकूट पर जा पहुँचे, जो

बहुमूलफलं रम्यं संपन्नसरसोदकम्	१३
मनोहोऽयं गिरिः सौम्य नानाद्रुमलतायुतः ।	
बहुमूलफलो रम्यः स्वाजीवः प्रतिभाति मे	१४
मुनयश्च महात्मानो वसन्त्यस्मिञ्जिगलोद्यये ।	
अयं वासो भवेत्तात वयमत्र वसेमहि	१५
इति सीता च रामश्च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः ।	
अभिगम्याश्रमं सर्वे वाल्मीकिमभिवाद्यन्	१६
तान्महर्षिः प्रमुदितः पूजयामास धर्मवित् ।	
आस्यतामिति चोवाच स्वागतं तं निबध्न च	१७
ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्लक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजः ।	
सन्निवेद्य यथान्यायमात्मानमृषये प्रभुः	१८

नाना प्रकार के पक्षियों से भरा हुआ सब प्रकार के फल मूलादिकों से पूर्ण था, जहां ठौर ठौर मीठा जल विद्यमान था। ऐसे पर्वतको देख राम लक्ष्मणसे कहने लगे, 'हे सौम्य ! यह पर्वत नाना वृक्षों से शोभित बहुत फल मूलादि से युक्त है, यहां हम लोगों का निर्वाह अच्छी तरह से होगा। तात ! इस पर्वत पर बहुत से मुनि लोग भी रहते हैं, इस से यह वास करने के योग्य है, हम भी अब यहीं रहेंगे।' ( १२-१५ )

यह कहते कहते लक्ष्मण तथा जानकीसहित रामने उस आश्रम पर पहुंच वाल्मीकि ! को प्रणाम किया। इन तीनों की धर्मज्ञ वाल्मीकि हर्षित

! कुछ दीकालेखकों की राय में, रामायणके निर्माता प्राचेतस् वाल्मीकि मुनि दूसरे ही थे और ये वाल्मीकि अन्य मुनि हैं। यह धारणा किन्हीं अंशों में ठीक जान पड़ती है। अकेला निलक नानक दीकाकार दिना किसी प्रमाण के यों कहता है, अतः यह कथन त्याज्य है। गोविन्दराज के कथनानुसार, रामचंद्रजीसे मुलाकात होनेपर जब भरत वापस चले गये, तब अन्य ऋषियों के समान ही यह वाल्मीकि भी रामचंद्रजीके चित्रकूट से आगे बढ़नेपर तमसा नदी के तटपर निवाम करने गया, यही मग्य प्रतीत होता है। अतः ऐसी कल्पनाके लिए कोई आधार नहीं कि ये वाल्मीकि थे।

लक्ष्मणानय दारूणि दृढाणि च वराणि च ।	
कुरुष्वनावसथं सौम्य वासे मेऽभिरतं मनः	१९
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सौमित्रिर्बिबिधान्द्रुमान् ।	
आजहार ततश्चक्रे पर्णशालामार्षदमः	२०
तां निष्ठितां वद्धकटां दृष्ट्वा रामः सुदर्शनाम् ।	
शुश्रूषमाणमेकाग्रमिदं वचनमब्रवीत्	२१
ऐणेयं मांसमाहृत्य शालां यक्ष्यामहे वयम्	२२
कर्तव्यं वास्तुशमनं सौमित्रे चिरजीविभिः ।	
मृगं हत्वाऽऽनय क्षिप्रं लक्ष्मणेह शुभेक्षण	२३
कर्तव्यः शास्त्रदृष्टो हि विधिर्धर्ममनुसर ।	
भ्रातृवचनमाज्ञाय लक्ष्मणः परवीरहा	२४
चकार च यथोक्तं हि तं रामः पुनरब्रवीत् ।	
ऐणेयं श्रपयस्यैतच्छालां यक्ष्यामहे वयम्	२५

हो पूजा करने लगे, तथा बिठाकर स्वागत किया । तब ऋषि से अपने धन आनेका कारण बता राम लक्ष्मण से बोले— 'लक्ष्मण ! इत व अष्ट्रेष्ट काट लाकर रहनेके लिये एक स्थान बनाओ, यहां रहने को हमारा पित्त चाहता है ।' यह सुन लक्ष्मण विविध भांति के वृक्षों से छोटी छोटी डालें काट लाये और अच्छी पर्णशाला बना दी ( १९-२० ) ।

उस सुन्दर कुटिया को देखते ही श्रीरामचंद्रजी हमेशा अपनी सेवा बड़ी लगन एवं तत्परता से करने में निरत लक्ष्मण से कहने लगे, ' हे लक्ष्मण ! हम मृगमांस लाकर इस पर्णशालाकी वास्तुशान्ति करें, यही ठीक है; क्योंकि जो लोग चिरकाल तक जीवित रहने की इच्छा करते हों, उन्हें वास्तुशान्ति जरूर पूरी करनी चाहिए । इसीलिए हे सुनेत्र लक्ष्मण ! तू अभीही एक हिरन मार ले आ; दूसरे यह बात शास्त्र में भी कही है, इसीलिए तू धर्म-शास्त्र का स्मरण कर । ' ( २१-२४ )

भाईका यों भाषण सुनकर शत्रुदल के वीरों के वध करनेवाले लक्ष्मणने सब कुछ वैसे ही कर डाला । अब रामचंद्रजी उनसे बोले— हे लक्ष्मण !

त्वरे सौम्य मुहूर्तोऽयं ध्रुवश्च दिवसो ह्ययम् ।  
 स लक्ष्मणः कृष्णमृगं हत्वा म-यं प्रतापवान् ।  
 अथ चिक्षेप सौमित्रिः समिक्षे जातवदसि २६  
 तत्तु पक्वं समाहाय निष्टुप्तं छिन्नशोणितम् २७  
 लक्ष्मणः पुरुषव्याघ्रमथ राघवमघर्षात् ।  
 अयं सर्वः समस्ताङ्गः श्रितः कृष्णमृगो मया २८  
 देवता देवसङ्काश यजस्व कुशलो ह्यसि ।  
 रामः स्नात्वा तु नियतो गुणवाञ्छपकोविदः २९  
 संग्रहेणाकरात्सर्वान्मन्त्रान्सत्रायसानिकान् ।  
 इष्ट्वा देवगणान्सर्वान्विवेशावसथं शुचिः ३०  
 यभूव च मनोह्रादो रामस्यामिततेजसः ।

तनिकु शीघ्रता तो कर और इस मृगमांस को जल्द पका ले, अभी वास्तु-  
 शान्ति पूरी कर ले तो बहुत ठीक; यह मुहूर्त बड़ा सौम्य और यह दिन भी  
 ध्रुव नामवाला है । ' ( २४-२६ )

इसके पश्चात् प्रतारी, सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणने यज्ञकर्म के लिए योग्य  
 ऐसे काले हिरनका वध करके धरकरते हुए ग्राममें उसे फेंक डाला और जब  
 देखा कि वह मृग पक हो चुका, तथा उस में से बहुत गर्म होने के कारण  
 खून का टपकना भी बंद हो गया, तब श्रेष्ठ पुरुष रामचंद्रजी से लक्ष्मण  
 कहने लगा, ' हे देवतारूपी राम ! अविकल अवयवों से युक्त इस समूचे  
 कृष्णसारको मैं भून चुका हूँ; अब आप देवताओं के नाम से याग कीजिए,  
 क्योंकि ऐसे यागकर्म में आप ही कुशल हैं । ' ( २६-२९ )

इतना हो चुकनेपर, जपजाप्यादि कार्योंमें गुणयुक्त तथा जितेन्द्रिय  
 रामचंद्रजीने स्नान किया और याग की पूर्णता के लिये जितने आवश्यक  
 उतनेही मंत्रों से वहींपर संक्षेप में वास्तुशान्ति पूर्ण कर दी । समूचे  
 देवगणों को लक्ष्य में रख यजन हो चुकनेपर शुचिर्भूत हो श्रीरामचंद्रजीने  
 उस घरमें प्रवेश किया । उस समय उस अति तेजस्वी रामचंद्रजीके मन में  
 अत्यन्त आनन्द हुआ । पश्चात् वास्तुदोष को हटाने के निमित्त मंगलकारक



वैश्वदेवबलिं कृत्वा रौद्रं वैष्णवमेव च ३१

वास्तुशंसमनीयानि मङ्गलानि प्रवर्तयन् ।

जपं च न्यायतः कृत्वा स्नात्वा नद्यां यथाविधि ३२

पापसंशमनं रामश्चकार बलिमुत्तमम् ।

वेदिस्थलविधानानि चैत्यान्यायतनानि च ।

आश्रमस्यानुरूपाणि स्थापयामास राघवः ३३

तां वृक्षपर्णच्छदनां मनोज्ञां यथाप्रदेशं सुकृतां निवाताम् ।

घासाय सर्वे विविधः समेताः सभां यथा देवगणाः सुधर्मां ३४

सुरम्यमासाद्य तु चित्रकूटं नदीं च तां माल्यवतीं सुतीर्थाम् ।

ननन्द हृष्टो मृगपक्षिजुष्टां जहौ च दुःखं पुरविप्रवासात् ३५ [२२६८]

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽथोपाकाण्डे षट्षष्ठांशः सर्गः ॥५६॥

सप्तपद्यांशः सर्गः ।

कथयित्वा तु दुःखार्तः सुमन्त्रेण चिरं सह ।

रामे दक्षिणकूलस्थे जगाम स्वगृहं गुहः १

भरद्वाजाभिगमनं प्रयागे च सभाजनम् ।

आ गिरेर्गमनं तेषां तत्रस्थैरभिलक्षितम् २

सूक्त आदि का पठन करने के लिए ब्राह्मणों से कहकर रामचंद्रजीने नदी में यथोचित ढंग से स्नान किया और ठीक तरह जप करके विश्वेदेव, रुद्र एवं विष्णु देवों के हेतु बलि दे चुकनेपर पापशमन हो जाए, इसलिये दूसरा भी एक बड़ा अच्छा बलिदान उसने कर डाला । तथा आश्रम के अनुरूप देवालय, आदिको भी उसने बलि दे दिये । ( २५-३३ )

उस सुन्दर मनोहर पर्णकुटी में सबने इस प्रकार प्रवेश किया, जैसे देवता सुधर्म सभा में प्रवेश करते हैं । अतिरमणीय चित्रकूट पर जिस के तट पर माल्यवती नदी बहती है और जहां मृग, पक्षी हर्षित फलरस करते हैं, राम मुखपूर्वक निवास करने लगे ( ३४-३५ ) ।

यहाँ छप्पनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

सुमन्त्र को समझा अति दुःखित हो राम के गंगा के दक्षिण तट पर आने पर सुमन्त्र को साथ ले गुह घरको चला गया । जब तक राम प्रयाग

अनुज्ञातः सुमन्त्रोऽथ योजयित्वा द्वयोत्तमान् ।	
अयोध्यामेव नगरीं प्रययौ गाढदुर्मनाः	३
स वनानि सुगन्धीनि सरितश्च सरांसि च ।	
पश्यन्त्यत्तो ययौ शीघ्रं ग्रामाणि नगराणि च	४
ततः सायाह्नसमये द्वितीयेऽहनि सारथिः ।	
अयोध्यां समनुप्राप्य निरानन्दां ददर्श ह	५
स शून्यामिव निःशब्दां दृष्ट्वा परमदुर्मनाः ।	
सुमन्त्रश्चिन्तयामास शोकवेगसमाहतः	६
कच्चिन्न सगजा साध्वा सजना सजनाधिपा ।	
रामसन्तापदुःखेन दग्धा शोकाग्निना पुरी	७
इति चिन्तापरः सूतो वाजिभिः शीघ्रयायिभिः ।	
नगरद्वारमासाद्य त्वरितः प्रविवेश ह	८
सुमन्त्रमभिधावन्तः शतशोऽथ सहस्रशः ।	
क राम इति पृच्छन्तः सूतमभ्यद्रवधराः	९
तेषां शशंस गङ्गायामहमापृच्छद्य राघवम् ।	
अनुज्ञातो निवृत्तोऽसि धार्मिकेण महात्मना	१०

मैं भरद्वाज के आश्रम पर हो चित्रकूट तक पहुँचे । तब तक सुमन्त्र निपाद के यहाँ रहा । तत्पश्चात् गुह से आज्ञा ले सुमन्त्र रथ में घोड़े जोत अति उदासीन हो अयोध्या को चला । मार्ग में नाना सुगन्धमय वन, नदी, तडाग, ग्राम देखता, जल्दी से सुमन्त्र चला तथा अगले दिन सन्ध्या के समय उस आनन्दरहित अयोध्या में जा पहुँचा ( १-५ ) ।

अयोध्या को निःशब्द देख शोकार्त हो सुमन्त्र चिन्ता करने लगा कि हार्थी, अश्व, जन, राजा सहित अयोध्या राम की जुदाईरूपी शोकाग्नि से दग्ध तो नहीं हो गई ? इस तरह चिन्ता कर शीघ्रगामी घोड़े जुते हुए रथ-सहित सुमन्त्रने नगर के बड़े फाटक की ओर से प्रवेश किया । सुमन्त्र को चले आते देख सैकड़ों मनुष्य 'राम कहाँ है ?' यह पूछनेके लिये उसके चारों ओर से दौड़े । उन सब को सुमन्त्रने यहाँ कहा कि मैं तो गङ्गातट पर से

ते तीर्णा इति विज्ञाय बाष्पपूर्णमुखा नराः ।	
अहा धिगिति निःश्वस्य ह्य रामेति विचुकुशुः	११
शुश्राव च वचन्तेषां वृन्दं वृन्दं च तिष्ठताम् ।	
हताः स खलु येनेह पश्याम इति राघवम्	१२
दानयज्ञविवाहेषु समाजेषु महत्सु च ।	
न द्रक्ष्यामः पुनर्जातु धार्मिकं राममन्तरा	१३
किं समर्थं जनस्यास्य किं प्रियं किं सुखावहम् ।	
इति रामेण नगरं पित्रेव परिपालितम्	१४
वातायनगतानां च स्त्रीणामन्वन्तरापणम् ।	
राममेवाभितप्तानां शुश्राव परिदेवनाम्	१५
स राजमार्गमध्येन सुमन्त्रः पिहिताननः ।	
यत्र राजा दशरथस्तदेवोपययौ गृहम्	१६
सोऽवतीर्य रथारुह्य राजवेष्टम प्रविश्य च ।	
कक्ष्याः सप्ताभिचक्राम महाजनसमाकुलाः	१७

राम की आज्ञा से चला आया हूँ ।' ( १-१० )

वे उस पार चले गये, यह सुन सब के सब रो रो कहने लगे कि- 'अहो ! हम को धिक्कार है !' यह कह राम राम कह चिड़ा चिड़ा रोने लगे । इन सबों को रोदन करते सुन, अन्य भी रोने लगे और कहने लगे- 'जिम से राम को नहीं देखते, इस से नि मन्देह मर जायेंगे । क्या अब हम यज्ञ, विवाह तथा बंड बंडे समाजों के बीच में बैठे हुए राम को कभी न देखेंगे ? जिन रामने इस नगर का पिता के समान पालन किया था, उनके बिना इस पुरी में यहां के निवासी जनों का अब कौन प्रयोजन पालेगा ?' तदसु मरोखों से झांकती हुई स्त्रियों के रोदनशब्द जो 'राम' कह कह रोदन करती थीं, सुमन्त्र सुनता चला जाता था । ( ११-१५ )

यत्र से मुह ढके हुए, राज-मार्ग से चल कर जिस मन्दिर में दशरथ थे, वहां सुमन्त्र पहुंचा । फाटक पर पहुंचते ही रथ से उतर राज महल में प्रवेश कर गया और सात फाटक लांघ गया । सुमन्त्र को आया सुन कोठों,

हर्म्यैर्विमानैः प्रासादैरवेक्ष्याथ समागतम् ।	
हाहाकारकृता नार्यो रामादर्शनकशिताः	१८
आयतैर्विमलैर्नैत्रैरध्ववेगपरिप्लुतैः ।	
अन्योन्यमभिवीक्षन्ते व्यक्तमार्ततरा स्त्रियः	१९
ततो दशरथस्त्राणां प्रासादेभ्यस्ततस्ततः ।	
रामशोकाभितप्तानां मन्दं शुश्राव जल्पितम्	२०
सह रामेण निर्यातो विना राममिहागतः ।	
सूतः किं नाम कौसल्यां क्रोशन्तीं प्रतिवक्ष्यति	२१
यथा च मन्ये दुर्जीवमेवं न सुकरं ध्रुवम् ।	
आच्छिद्य पुत्रे निर्याते कौसल्या यत्र जीवति	२२
सत्यरूपं तु तद्वाक्यं राजस्त्राणां निशामयन् ।	
प्रदीप्त इव शोकेन विवेश सहसा गृहम्	२३
स प्रविश्याष्टमीं कक्ष्यां राजानं दीनमातुरम् ।	
पुत्रशोकपरिचूनमपश्यत्पाण्डुरे गृहं	२४
अभिगम्य तमासीनं राजानमभिवाच च ।	
सुमन्त्रो रामवचनं यथोक्तं प्रन्यवेदयत्	२५

विमानों, तथा ध्वरहरों पर चढ़ीं राम के वियोग से कर्पित स्त्रियां राम को न देख हाहाकार करने लगीं । सब की सब नेत्रों से आंसुओं की धारा छोड़ती आपस में देखती थीं । दशरथ की स्त्रियों का रोदन ध्वरहरों पर से मन्द मन्द होता हुआ सुन पड़ता था । ( १६-२० )

वे सब यह कहती थीं कि 'राम के साथ सुमन्त्र गये थे, पर अब बिना राम के यहां आये-भला रोदन करती हुई कौसल्या से क्या कहेंगे ? जितना जीवन दुःखजनक है, उतना मरण नहीं, देखो ! राम के वन जाने पर भी कौसल्या जीती रही ।' इस प्रकार रानियों के वचन सुनते सुमन्त्र शोक से अधिक जलते हुए राममन्दिर में प्रविष्ट हुए । आठवें फाटक के भीतरवाले चन्द्रसमान मन्दिर में राजा दशरथ को देखा, जो पुत्रशोक से व्याकुल हो शय्या पर पड़े थे । राजा के सम्मुख जा, प्रणाम कर सुमन्त्रने राम के वचन यथावत् कहे । ( २१-२५ )

स तूष्णीमेव तच्छ्रुत्वा राजा विद्रुतमानसः ।	
मूर्च्छितो न्यपतद्भूमौ रामशोकामिषोडितः	२६
ततोऽन्तःपुरमाविष्टं मूर्च्छिते पृथिवीपतौ ।	
उच्छ्रित्य बाहू चुक्रोश नृपतौ पतिते क्षितौ	२७
सुमित्रया तु सहिता कौसल्या पतितं पतिम् ।	
उत्थापयामास तदा वचनं चेदमब्रवीत्	२८
इमं तस्य महाभाग दूतं दुष्करकारिणः ।	
वनवासादनुप्राप्तं कस्मात् प्रतिभापसे	२९
अद्येममनयं कृत्वा व्यपन्नपसि राघव ।	
उत्तिष्ठ सुरुतं तेऽस्तु शोकेन स्यात्सहायता	३०
देव यस्या भयाद्रामं नानुपृच्छसि साराधिम् ।	
नेह तिष्ठति कैकेयी विश्रब्धं प्रतिभाप्यताम्	३१
सा तथोक्त्वा महाराजं कौसल्या शोकलालसा ।	
धरण्यां निपपाताशु चाप्पविप्लुतभाषिणी	३२
विलपन्ती तथा दृष्ट्वा कौसल्यां पतितां भुवि ।	
पतिं चावेक्ष्य ताः सर्वाः समन्ताद्गुरुः स्त्रियः	३३

महाराज दशरथ सुन चुप हो रहे, फिर घबड़ा कर मूर्च्छित हो भूमिपर गिर पड़े । तब भीतर के रहनेवाली रानी दाम दामी आदि ऊपर को हाथ उठाकर रोने लगीं । तब सुमित्रा और कौमल्याने राजा का हाथ पकड़ उठाया और कहा— 'हे महाराज ! अति दुष्कर कर्म करनेवाले राम के यह दूत हैं, इन से राम को वनवास प्राप्त करानेपर आप क्यों नहीं बोलते ? वनवास देने के शोक से लज्जित न हो उठिये ! आप की सत्यप्रतिज्ञता सिद्ध हो गई, अब यदि मन्त्री से न बोलोगे, तो शोक के समय सहायता कौन करेगा ? ( २६-३० )

‘जिस कैकेयी के भय से राम के समाचार नहीं पूछते, वह यहाँपर इस समय नहीं है, आप निःशङ्क हो पृष्ठिये ।’ इतना कह शोकमें डूब कौसल्या मूर्च्छित हो पृथिवीपर गिर पड़ी । विलाप करके गिरती हुई कौमल्या को

ततस्तमन्तःपुरनादमुत्थितं समीक्ष्य वृद्धास्तरुणाश्च मानवाः ।

स्त्रियश्च सर्वा रुदन्तः समन्ततः पुरं तदासीत्पुनरेव सङ्कुलम् ३४  
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिमध्वेऽयोध्याकाण्डे सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥५७॥

अष्टपञ्चाशः सर्गः॥

[२३०२]

प्रत्याश्वस्तो यदा राजा मोहात्प्रत्यागतस्मृतिः ।

तदाजुहाव तं सूतं रामवृत्तान्तकारणात् १

तदा सूतो महाराजं कृताञ्जलिरुपस्थितः ।

राममेवानुशोचन्तं दुःखशोकसमन्वितम् २

वृद्धं परमसन्तप्तं नवग्रहमिव द्विपम् ।

विनिःश्वसन्तं ध्यायन्तमस्वस्वामिप्र कुञ्जरम् ३

राजा तु रजसा सूतं ध्वस्ताङ्गं समुपस्थितम् ।

अथपूर्णमुखं दीनमुवाच परमार्तवन् ४

क नु चत्स्यति धर्मान्मा वृक्षमूलमुपाश्रितः ।

सोऽत्यन्तसुखितः सूत किमशिष्यति राघवः ५

देख तथा उसी दशा में राजा को देव सब स्त्रियां रोने लगीं । तब उस  
अन्तःपुर से उद्धृत वह रोदनध्वनि सुनकर तरुण तथा वृद्ध पुरुष और सब  
स्त्रियाँ रोने लगीं और फिर वह अयोध्यानगरी शोकाकुल हुई । (३१-३४)

यहां सत्तावनवों सर्ग समाप्त हुआ ।

जब राजा की मूर्च्छा जागी और चित्त स्वस्थ हुआ, तो रामका हाल पूछने  
को सूत को बुलाया । सुमन्त्र हाथ जोड़ राजा के निकट खड़े हो गये,  
राजा राम ही का शोक कर रहे थे । वृद्ध, शोक से सन्तापित राजा की  
दशा उस समय उस हाथी के समान थी, जो तुरन्त बन से पकड़ा आवे  
और अपने माथियों में ध्यान लगाने के कारण व्याकुल हो रहा हो । राजाने  
देखा तो सुमन्त्र के सब अंगों में धूल लगी थी, आंसुओं की धारा बह रही  
थी, यह देख परम दुःखित हो राजाने पूछा । ( १-४ )

‘हे सूत ! अब रघुनन्दन वृक्ष के नीचे बसते होंगे, क्योंकिर मुझ भोगने

दुःखस्यानुचितो दुःखं सुमन्त्र शयनाचितः ।	
भूमिपालात्मजो भूमौ शेते कथमनाथयत्	६
यं यान्तमनुयान्ति स्म पदातिरथकुञ्जराः ।	
स वरस्यति कथं रामो विजयं वनमाश्रितः	७
व्यालैर्मृगैराचरितं कृष्णसर्पनिपेचितम् ।	
कथं कुमारौ वैदेह्या सार्वं वनमुपाश्रितौ	८
सुकुमार्या तपस्विन्या सुमन्त्र सह सीतया ।	
राजपुत्रौ कथं पादैरवरुह्य रथाद्गतौ	९
सिद्धार्थः खलु सूत त्वं येन दृष्टी ममात्मजौ ।	
वनान्तं प्रविशन्तौ तावद्विनाविध मन्दरम्	१०
किमुवाच वचो रामः किमुवाच च लक्ष्मणः ।	
सुमन्त्र वनमासाद्य किमुवाच च मैथिली	११
आसितं शयितं भुक्तं सूत रामस्य कीर्तय ।	
जीविष्याम्ययमेतेन ययातिरिध साधुषु	१२
इति सूतो नरेन्द्रेण चोदितः सज्जमानया ।	

होगे ? और क्या भोजन करेंगे ? सुमन्त्र ! वे तो दुःख भोगने के योग्य न थे, सुखशय्या पर ही शयन करने के योग्य थे, तब महाराजाधिराज के पुत्र हो अनार्यों के समान भूमि में कैसे सोते होंगे ? जब कभी पर से बाहर निकलते थे, तो उनके पीछे पीछे पैदल, रथ, घोड़े, हाथी आदि चलते थे, वे राम निर्जन वन में कैसे वसेंगे ? जिस वन में बड़े बड़े अजगरादि नाग और माना वनजीव रहते हैं, उस में सुकुमार राम, लक्ष्मण, वैदेही कैसे बसते होंगे ? ( ५-८ )

सुमन्त्र ! तपस्विनी सीता के साथ दोनों राजकुमार रथसे उतर कर वन में पैदल कैसे गये ? हे सूत ! तुम्हारे सब काम सिद्ध हो गये जोकि वन में प्रविष्ट हुए मेरे पुत्रों को तुमने देखा । हे सुमन्त्र ! राम, लक्ष्मण तथा सीताने क्या कहा ? हे सूत ! राम के आसन शयन और भोजनादि का वृत्तान्त कहो जिसको सुनकर मैं ययाति की तरह सुखी हो जाऊँ ।' ( ९-१२ )

उवाच वाचा राजानं स वाष्पपरिवद्धया	१३
अव्रवीन्मे महाराज धर्ममेवानुपालयन् ।	
अञ्जलिं राघवः कृत्वा शिरसाभिप्रणम्य च	१४
सूत मद्बचनात्तस्य तातस्य विदितात्मनः ।	
शिरसा वन्दनीयस्य वन्द्यौ पादौ महात्मनः	१५
सर्वमन्तःपुरं वाच्यं सूत मद्बचनात्त्वया ।	
आरोग्यमविशेषेण यथाहमभिवादनम्	१६
माता च मम कौसल्या कुशलं चाभिवादनम् ।	
अप्रमादं च वक्तव्या ब्रूयाश्चैनामिदं वचः	१७
धर्मनित्या यथाकालमग्न्यगारपरा भव ।	
देवि देवस्य पादौ च देववत्परिपालय	१८
अभिमानं च मानं च त्यक्त्वा वर्तस्व मातृपु ।	
अनुराजानमार्यां च कैकेयीमभ्य कारय	१९
कुमारे भरते वृत्तिर्वर्तितव्या च राजवत् ।	
अप्यज्येष्ठा हि राजानो राजधर्ममनुसर	२०

सुमन्त्रने राजा के ऐसे वचन सुन गद्गद् वाणी हो उत्तर दिया—  
‘महाराज ! धर्म ही की पालना करते हुए राम भली भाँति प्रणाम कर हाथ जोड़ मुझ से बोले कि हे सूत ! सब कुछ जाननेवाले व शिर से वन्दना करने के योग्य महात्मा मेरे पिता के चरणों की वन्दना मेरी ओरसे करना । तदनु अन्तःपुर में रहनेवाली मेरी मय माताओं से विशेष कर आरोग्य कहना और प्रणामादि मिमको जो योग्य हो कहना । ( १३-१६ )

‘माता कौसल्या से प्रथम तो हमारे कुशलानन्दके समाचार कहना, फिर यह कहना जैसे मदा मे तुम अपने धर्म में लगी रहती थीं, वैसे अब भी अभिहोत्रादि कस्ती हुई पिता के चरणों की सेवा करती रहना । माना—  
भिमान त्याग कर मय माताओं के बीच में रहना, राजा की सेवा करने के पीछे मेरी वप्रियकारिणी कैकेयी से मिलाप क्रिये रहना । यद्यपि भरत आप से छोटे हैं, तथापि उन के साथ वैसे ही वर्ताव करना जैसे अन्य लोग



भरतः कुशलं वाच्यो वाच्यो मद्बचनेन च ।	
सर्वास्वेव यथान्यायं वृत्तिं वर्तस्व मातृपु	२१
त्रक्तव्यश्च महाबाहुरिष्ट्वाकु कुलनन्दनः ।	
पितरं यौधराज्यस्थो राज्यस्थमनुपालय	२२
अतिक्रान्तवया राजा मा स्मै न व्यपरोरुधः ।	
कुमारराज्ये जीवस्व तस्यैवाज्ञाप्रवर्तनात्	२३
अत्रवीचापि मां भूयो भृशमश्रूणि वर्तयन् ।	
मातेय मम माता ते द्रष्टव्या पुत्रगर्धिनी	२४
इत्येवं मां महाबाहुर्बुधन्नेव महायशाः ।	
रामो राजीवपत्राक्षो भृशमश्रूण्यवर्तयत्	२५
लक्ष्मणस्तु सुसंकुतो निःश्वसन्वाक्यमब्रवीत् ।	
केनायमपराधेन राजपुत्रो विधासितः	२६
राज्ञा तु खलु कैकेय्या लघु चाश्रुत्य शासनम् ।	
कृतं कार्यमकार्यं वा वयं येनाभिपीडिताः	२७
यदि प्रजाजितो रामो लोभकारणकारितम् ।	

राजानों के संग बर्ताव करते हैं । ( १७-२० )

‘भरत से कुशल के पश्चात् कहलाया है कि सब माताओं में यथायोग्य वृत्ति से बर्ताव करें । तथा युवराज पदवी को पाकर राजा की पालना ऐसी कर जिस से वे राज्य से बाहर न जायें । यह भी कहा है कि राजा बहुत दिनों से राज्य कर रहे हैं, सब बातें जानते सुनते हैं, उन के मन की कभी न भंग करें, वरन् सब राजकाज उन्हीं की आज्ञा से करें । यह कह रामने भरत से कहने के लिये मुझ से कहा है कि पुत्र के विषय इच्छा किये हुई मेरी माता को स्वमाता के समान समझना । राम इस तरह से कह बहुत ही रोये । उस दशा का वर्णन मैं नहीं कर सकता । ( २१-२५ )

‘तदन्तर ऊंची श्वास ले अति क्रोध से लक्ष्मण ने कहा कि इन राजकुमार राम को किम अपराध से वनवास दिया, यह भी उस से कह देना । राजाने कैकेयी के वचनों से ऐसा अकार्य किया, जिस से हम लोग वन में दुःखित

वरदाननिमित्तं वा सर्वथा दुष्कृतं कृतम्	२८
इदं तावद्यथाकाममीश्वरस्य कृते कृतम् ।	
रामस्य तु परित्यागे न हेतुमुपलक्षये	२९
असमीक्ष्य समारब्धं विरुद्धं बुद्धिलाघवात् ।	
जनयिष्यति सक्राशं राघवस्य विवासनम्	३०
अहं तावन्महाराजे पितृत्वं नोपलक्षये ।	
भ्राता भर्ता च बन्धुश्च पिता च मम राघवः	३१
सर्वलोकप्रियं त्यक्त्वा सर्वलोकहिते रते ।	
सर्वलोकोऽनुरज्यंतं कथं चानेन कर्मणा	३२
सर्वप्रजाभिरामं हि रामं प्रव्राज्य धार्मिकम् ।	
सर्वलोकविरोधेन कथं राजा भविष्यति	३३
जानकी तु महाराज निःश्वसन्ती तपस्विनी ।	
भूतोपहतचित्तेव विष्टिता विस्मृता स्थिता	३४
अट्टपृष्वव्यसना राजपुत्री यशस्विनी ।	
तेन दुःखेन रुदती नैव मां किञ्चिदग्रहीत्	३५

फिरते हैं । यदि राम को लोभ के कारण परित्याग किया अथवा कैकेयी के वर को पूरा करने को किया, तो भी अनुचित ही किया । यदि ईश्वर के कराने से उन्होंने ऐसा किया है तो भी राम के परित्याग में ईश्वर-कृति का भी हेतु नहीं विदित होता । राजाने इस का दुःखद परिणाम न विचारा, केवल बुद्धिस्वल्पता से ही यह काम किया । ( २६-३० )

‘मैं पिता माता आदि के वियोग को न सहकर अयोध्या जाने के लिये ऐसा नहीं कहता, क्योंकि मेरे तो पिता, भाई, बन्धु, स्वामी सब राम ही हैं । सर्व लोक के हित करने में लगे हुए राम को उन्होंने बनवास दिया, तब इन के इस कर्म से सब लोक कैसे प्रसन्न होंगे ? सब प्रजाओं के अभिराम राम को बनवास दे सर्व लोक से विरुद्ध कर राजा दशरथ आप ही कैसे राजा होंगे ? परम तपस्विनी सीता बड़ी हतचित्त हो खड़ी लम्बी सांस लेती रही । उम यशस्विनी राजपुत्रीने कभी दुःख नहीं देखा था, अतः उस दुःख से

उद्दीक्षमाणा भर्तारं मुखेन परिशुष्यता ।

मुमाच सहसा वाष्पं प्रयान्तमुपवीक्ष्य सा ३६

तथैव रामोऽश्रुमुखः कृताञ्जलिः स्थितोऽग्रवील्लक्ष्मणवाहुपालितः ।

तथैव सीता रुदती तपस्विनी निरीक्षते राजरथं तथैव माम् ३७

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे अष्टपञ्चाशः सर्गः ॥५८॥

एकोनपटितमः सर्गः ।

[ २३२९ ]

मम त्वश्वा निवृत्तस्य न प्रावर्तन्त वर्तमानि ।

उष्णमश्रु विमुञ्चन्तो रामे संप्रस्थिते वनम् १

उभाभ्यां राजपुत्राभ्यामथ कृत्वाहमञ्जलिम् ।

प्रस्थितो रथमास्थाय तदुःखमपि धारयन् २

गुहेन सार्धं तत्रैव स्थितोऽस्मि दिवसान्वहन् ।

आशया यदि मां रामः पुनः शब्दापयेदिति ३

विपये ते महाराज महाव्यसनकर्षिताः ।

अपि वृक्षाः परिम्लानाः सुपुष्पाङ्कुरकोरकाः ४

दुःखी हो रोती ही रही । उसने मुझे कुछ भी नहीं कहा । कभी राम की ओर और कभी मेरी ओर देख नेत्रों से जल गिराती रही, शुष्क मुख कर सांसे लेती रही । जब मैं आगे बढ़ने लगा, तब लक्ष्मणने रामचन्द्रजीके हाथ पकड़ रखे थे, रामचन्द्रजी के आँखों से आँसुओंकी झड़ीसी लगी थी और हाथ जोड़कर उन्होंने, जैसा कि मैंने आप से कह दिया, उसी तरह अपना कथन कह डाला, लेकिन बेचारी सीताजी कुछ भी न कहती हुई रोते रोते उम राजरथ की ओर और मेरी तरफ देख रही थी । ( ३१-३७ )

यहां अट्टावनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

‘राम के वन को चले जानेपर अश्व भी हिनहिना कर गर्म आँसुओं को छोड़ने उन्हीं की ओर वन को जाने लगे । राम लक्ष्मण के चलते समय हाथ जोड़ इन का दुःख हृदय में भर में चला आया । वहां से आ कई दिन गुह के यहां रहा कि, कदाचित् राम मुझे फिर न बुलावे । महाराज ! आप के देश के वृक्ष भी राम के वनवास के दुःख से दुःखित हो कुम्हला गये हैं ।

उपतप्तोदका नद्यः पल्वलानि सरांसि च ।	
परिशुष्कपलाशानि वनान्युपवनानि च	५
न च सर्पन्ति सत्त्वानि व्याला न प्रसरन्ति च ।	
रामशोकाभिभूतं तं निष्कूजमिव तद्वनम्	६
लीनपुष्करपत्राश्च नद्यश्च कलुषोदकाः ।	
सन्तप्तपद्माः पद्मिन्यो लीनमीनविहंगमाः	७
जलजानि च पुष्पाणि माल्यानि स्थलजानि च ।	
नातिमान्त्यल्पगन्धानि फलानि च यथापुरम्	८
अत्रोद्यानानि शून्यानि प्रलीनविहगानि च ।	
न चाभिरामानारामान्पश्यामि मनुजैर्जम्भ	९
प्रविशन्तमयोध्यायां न कश्चिदभिनन्दति ।	
नरा राममपश्यन्तो नि श्वसन्ति मुहुर्मुहुः	१०

नदी, ताल व तल्लो का जल गर्म हो गया; वन, उपवनों के पत्ते सूख गये । ( १-५ )

‘ न सर्प रंगते और न जीव चलते थे, राम के शोक से वन में शब्द ही नहीं होता था । नदियों का जल कलुषित हो गया, उन में कमलों के सड़े गले पत्ते बहते हैं, तालावों में कमल सन्तप्त हो रहे हैं । जलसे उत्पन्न कमल आदि के फूल व गुलाब चम्पादि वृक्षों के पुष्प, सभी में सुगन्ध कम हो गई है । राजन् ! अयोध्या में जितनी वाटिकाएँ थीं, सब शून्य पश्वीरहित हो गईं, कोई बागादि चित्त को प्रफुल्लित करनेवाले नहीं दिखाई देते । मेरे

( पृष्ठ मोलह पर की टिप्पणी )

+ ‘दिवसान्वहन्’ याने लंबे अर्सेतक, नकि बहुतसे दिन । संस्कृत भाषा में दोसे ज्यादा कोई संख्या हो तो बहु शब्द का प्रयोग किया जाता है । यहाँ पर, सीता और लक्ष्मण के साथ राम गंगाके पार चला गया था, वह एक दिन, चित्रकूट पहुँचा, वह दूसरा दिन और गुह्यके पास गुह्यवर सखर लाये वह तीसरा दिन । तीसरे दिन पिछले दिन का कुछ अंश शेष रहने सुमत्र अयोध्या जाने निकला, इस लिए ‘ बहन् दिवसान्’ कहा है ।

हि. २ ( अयोध्या. उ. )

न मां जानीत दुःखेन त्रियमाणमनाथवत्	२६
स तेन राजा दुःखेन भृशमर्पितचेतनः ।	
अवगाढः सुदुष्पारं शोकसागरमवर्षात्	२७
रामशोकमहावेगः सीताविरहपारगः ।	
श्वसितोर्मिमहावर्तो वाष्पवेगजलाविलः	२८
बाहुविक्षेपमानोऽसौ विकान्दितमहास्वनः ।	
प्रकीर्णकेशशैवालः कैकेयीवडवामुखः	२९
ममाश्रुवेगप्रभवः कुब्जावाक्यमहाग्रहः ।	
वरवेलो नृशंसापा रामप्रवाजनायतः	३०
यस्मिन्वत निमग्नोऽहं कौसल्ये राघवं विना ।	

दुस्तरो जीवता दद्वि मयायं शोकसागरः ३१

अशोभनं योऽहमिहाद्य राघवं दिदक्षमाणो न लभे सलक्ष्मणम् ।

इतीव राजा विलपन्महायशाः पपात तूर्णं शयने स मूर्च्छितः ३२

इससे अधिक और कौन दुःख मिलेगा ? हा राम ! हा लक्ष्मण ! हा सीते ! मेरी वेदना को तुम नहीं जानते कि मैं तुम्हारे दुःख से एक अनाथ के समान प्राण त्याग रहा हूँ ? ( २१-२६ )

पूवं दुःखी हो राजा हतचेतन हो गये और प्रगाढ शोक में डूब कहने लगे कि ' राम के शोकरूपी महावेग और सीता की जुदाईरूपी परला तट, दीर्घ सातों ही जिस की लहरें हैं, अश्रुजल ही जिस में पानी है, हाथ फेंकना ही जिम में मत्स्य है, रोन्म ही शब्द है, कैकेयीरूपी बडवानल है, मंधराके वचन ही जिस में नकादि ग्रह हैं, दुष्ट कैकेयी को दिया हुआ वर जिम की सीमा है, ऐसे शोकरूपी अथाह सागर में राम के बिना मैं डूबता हूँ ! कौशल्ये ! इस शोकसागरसे मेरा जीना कठिन जान पड़ता है । ( २७-३१ )

‘ आज मेरे सामने एक बड़ा भारी पाप मुँहचाये खड़ा है जिससे मैं, लक्ष्मण के साथ रामचंद्रजी को नहीं देख पाता यद्यपि मेरे दिल में उसे देख लेनेकी तीव्र लालसा उठ खड़ी है ।’ इस भाँति विलगते हुए वे अनिपशस्वी गरेश दशरथ बेसुध होकर यकायक बिस्तरे पर गिर पड़े और इसी तरह

इति विलपति पार्थिवे प्रनष्टे करुणतरं द्विगुणं च रामहेतोः ।

वचनमनुनिशम्य तस्य देवी भयमगमत्पुनरेव राममाता ३३

इत्थापे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽथोध्याकाण्ड एकोनपठितम्. सर्गः ॥५९॥

षष्ठितमः सर्गः ।

[२३७२]

ततो भूतोपसृष्टेव वेपमाना पुनः पुनः ।

धरण्यां गतसत्त्वेव कौसल्या सूतमब्रवीत् १

नय मां यत्र काकुत्स्थः सीता यत्र च लक्ष्मणः ।

तान्धिना क्षणमप्यद्य जीवितुं नोत्सहे ह्यहम् २

निवर्तय रथं शीघ्रं दण्डकान्नय मामपि ।

अथ तान्नानुगच्छाम गमिष्यामि यमक्षयम् ३

वाप्पवेगोपहतया स वाचा सज्जमानया ।

इदमाश्वासयन्देवीं सूतः प्राञ्जालरव्रवीत् ४

त्यज शोकं च मोहं च संभ्रमं दुःखजं तथा ।

व्यवधूय च संतापं वने वत्स्यति राघवः ५

लक्ष्मणश्चापि रामस्य पादौ परिचरन्वने ।

आराधयति धर्मज्ञः परलोकं जितेन्द्रियः ६

रामके लिये रोते रोते सुधबुध भूलकर पडे हुए नरेश के उस अतिकरुणा-जनक भाषण को सुनकर राममाता कौसल्यादेवी के मन में दुगुना डर पैदा हो गया, न जाने क्या इस दुःख में अब पति के बिछोह से होनेवाली पीडा भी जोड़ी जायगी ? ( ३२-३३ )

यहाँ उनसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

कौसल्या बारबार कांपती हुई धरणी में गिर सुमन्त्र से कहने लगी । 'सूत ! जहां राम, जानकी व लक्ष्मण हैं, वहां मुझे ले चलो, उन के बिना क्षणभर भी नहीं जी सकती । शीघ्र रथ लौटाओ, मुझे दण्डकवन को ले चलो ।' यह सुन सुमन्त्र गद्गदवाणी से कौमल्या को समझाता हुआ हाथ जोड़ बोला— 'अब आप शोक व दुःखसे पैदा हुए सम्भ्रम को छोड़ दें, राम सुख से वन में रहेंगे । लक्ष्मण भी वन में रामचरणों की सेवा करते

तथापि सूतेन सुयुक्तवादिना निवार्यमाणा सुतशोककश्चिता ।  
न चैव दर्व विरराम कूजितात्प्रियंति पुत्रेति च राघवेति च २२  
इत्यर्थे श्रीमद्रामायणे वार्त्तिकीय आदिकाव्येऽथोप्याकाण्डे षष्ठितमः सर्गः ॥६०॥

एकषष्ठितम सर्ग ।

[ २३१५ ]

वनं गते धर्मरते रामे रमयतां वरे ।  
कौसल्या रुदती चातां भर्तारमिदमब्रवीत् १  
यद्यपि त्रिषु लोकेषु प्रथितं ते महद्यशः ।  
सानुक्रोशो वदान्यश्च प्रियवादी च राघवः २  
कथं नरवरश्रेष्ठ पुत्रौ तौ सह सीतया ।  
दुःखितौ सुखसंवृद्धा कथं दुःखं सहिष्यतः ३  
सा नूनं तरुणी श्यामा सुकुमारी सुखोचिता ।  
कथमुष्णं च शीतं च मैथिली विसहिष्यते ४  
भुक्त्वाशनं विशालाक्षी सूपदंशान्वितं शुभम् ।  
वन्यं नैवारमाहारं कथं सीतापभोक्ष्यते ५  
गीतवादित्रनिर्घोषं श्रुत्वा शुभसमन्विता ।

हे और वन्य फल भक्षण करके वे पित्राज्ञा का परिपालन करते हैं ।' इस प्रकार सुयोग्य वन्ता सुमंत्र " शोक मत करना " ऐसा कहता था, तो भी पुत्रशोक से कृश कौसल्या ' हे प्रिय पुत्र, राम ! ' ऐसा शोक कर रही थी । ( १९-२३ )

यहां साठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

जब राम वन को चले गये तो कष्ट से पीड़ित कौसल्या रोती हुई अपने पति महाराज दशरथ से कहने लगी— ' राजन् ! यद्यपि तीनों लोकों में आप का यह यश फैल गया कि आप बड़े दयालु, बड़े दानी व प्रियवादी हैं, तो भी यह तो कहो कि जानकी व तुम्हारे दोनों पुत्र वन के दुःख कैसे सहेंगे ? सुकुमारी जानकी वन की गर्मी व जाड़ा कैसे सहेंगी ? यहां और जनकपुरमें नानाभोजन करके सीता वन के खटे तीखे फल और मुनियों के निःस्वाद

कथं क्रव्यादसिंहानां शब्दं श्रोप्यत्यशोभनम्	६
महेन्द्रध्वजसङ्काशः कं नु शेते महाभुजः ।	
भुजं परिघसङ्काशमुपाधाय महाबलः	७
पद्मवर्णं सुकेशान्तं पद्मानिःश्वासमुत्तमम् ।	
कदा द्रक्ष्यामि रामस्य वदनं पुष्करेक्षणम्	८
वज्रसारमयं नूनं हृदयं मे न संशयः ।	
अपश्यन्त्या न तं यद्वै फलतीदं सहस्रधा	९
यत्नया करुणं कर्म व्यपोह्य मम बान्धवाः ।	
निरस्ताः परिधावन्ति सुखार्हाः कृपणा वने	१०
यदि पञ्चदशे वर्षे राघवः पुनरेष्यति ।	
जह्याद्राज्यं च कोशं च भरतो नोपलक्ष्यते	११
भोजयन्ति किल श्राद्धे केचित्सवानेव बान्धवान् ।	
ततः पश्चात्समीक्षन्ते कृतकार्या द्विजोत्तमान्	१२
तत्र ये गुणवन्तश्च विद्वांसश्च द्विजातयः ।	
न पश्चात्तेऽभिमन्यन्ते सुधामपि सुरोपमाः	१३

भोजन कैसे करेगी ? यहां नाना गाने बजाने की ध्वनि सुन अब मिहादिकों के भयङ्कर शब्द कैसे सुनेगी ? ( १-६ )

‘सब को उत्सव करानेवाले राम भूषणरहित परिघ समान हस्त का तकिया बनाये कहीं शायन करते होंगे ? कमलाकार सुन्दर डाढ़ी मृदयुक्त, कमलनयन राम का मुख अब फिर कब देखूंगी ? प्रिय राम को बिना देरे हृदय के सहस्रों टुक नहीं हो जाते, जान पड़ता है कि हृदय वज्रसारवन् कठोर है । आपने दयाभाव को छोड़ राम, जानकी, लक्ष्मण को निकाल दिया । अब वे कृपणों के तुल्य वन में इतस्ततः फिरते हैं । ( ७-१० )

‘यदि चौदह वर्ष के बाद राम वन से लौटे भी तो भी राज्य, कोषादि भरत न छोड़ेंगे । क्योंकि जैसे कोई लोग श्राद्ध में अधिक मिलने के लिये पहिले अपने बान्धवों आदि को ही बुला खिलाने हैं, पीछे अन्य द्विजोत्तमों को भोजनादि को बुलाते हैं, पर उन में जो ब्राह्मणोत्तम होते हैं, उन को यदि पीछे से अमृत के समान भी भोजन करावें तो वे मान भद्र होने



ब्राह्मणेष्वपि वृत्तेषु भुक्तशपं द्विजोत्तमाः ।	
नाभ्युपेतुमलं प्राज्ञाः शृङ्गच्छदमिषर्षभाः	१४
एवं कनीयसा भ्रात्रा भुक्तं राज्यं विशांपते ।	
भ्राता ज्येष्ठा वरिष्ठश्च किमर्थं नावमन्यते	१५
न परेणाहृतं भक्ष्यं व्याघ्रः खादितुमिच्छति ।	
एवमेव नरव्याघ्रः परलीढं न मन्यते	१६
हृदिराज्यं पुरोडाशः कुशा यूपाश्च खादिराः ।	
नैतानि यातयामानि कुर्वन्ति पुनरध्वरे	१७
तथा ह्यात्तमिदं राज्यं हृतसारां सुरामिव ।	
नाभिमन्तुमलं रामो नष्टसोममिवाध्वरम्	१८
नैवंविधमसत्कारं राघवो मर्षयिष्यति ।	
बलवानिव शार्दूलो बालधेरभिमर्शनम्	१९
नैतस्य संहिता लोका भयं कुर्युर्महामृधे ।	
अधर्मं त्विह धर्मात्मा लोकं धर्मेण योजयेत्	२०

से नहीं करते । ब्राह्मण जो पहिले भोजन कर जाते, तो पीछे उनको जो प्रतिष्ठित ब्राह्मण हैं, वे अविशिष्ट अन्न नहीं खाते, क्योंकि उस में उन का मान भंग होता है । इसी भांति भरत के भोगे हुए राज्य को राम कैसे अंगीकार करेंगे ? ( ११-१५ )

‘ऐसे बाघ अन्य जीव का लाया मांसादि ग्याने की इच्छा नहीं करता, ऐसे ही नरव्याघ्र राम भरत के जूठे राज्य को स्वीकार न करेंगे । क्योंकि यज्ञ से बची हुई सामग्री फिर दूसरे यज्ञ के योग्य नहीं रहती । अतः इस राज्य को जो बल से लौटने पर राम पावेंगे भी तो न ग्रहण करेंगे जैसे सारांश निकाला अमृत ग्रहण योग्य नहीं रहता । ऐसे अपमान को राम न सह सकेंगे, जैसे बलवान् सिंह पूंछ छू लेने के अनादर को नहीं सहता । राज्य न लेने पर भी उनकी अप्रतिष्ठा नहीं हो सकती, इस अधर्ममय संसार को धर्मात्मा करने के लिये ही ऐसा किया है । ( १६-२० )

नन्यसौ काञ्चनैर्वाणैर्महावीर्यो महाभुजः ।

युगान्त इव भूतानि सागरानपि निर्दहत् २१

स तादृशः सिंहबलो वृषभाक्षो नरर्षभः ।

स्वयमेव हतः पित्रा जलजेनात्मजो यथा २२

द्विजातिचरितो धर्मः शास्त्रे दृष्टः सनातनैः ।

यदि ते धर्मनिरते त्वया पुत्रे विवासिते २३

गतिरेका पतिर्नार्या द्वितीया गतिरात्मजः ।

तृतीया ज्ञातयो राजंश्चतुर्थी नैव विद्यते २४

तत्र त्वं मम नैवासि रामश्च वनमाहितः ।

न वनं गन्तुमिच्छामि सर्वथा ह्य इता त्वया २५

हन्तं त्वया राष्ट्रमिदं सराज्यं हताः स्य सर्वाः सह मन्त्रिभिश्च ।

हता सपुत्रास्मि हताश्च पौराः सुतश्च भार्या च तव प्रहृष्टौ २६

इमां गिरं दारुणशब्दसंहितां निशम्य रामेति मुमोह दुःखितः ।

‘महाबली राम सुवर्णबाणों से प्राणियों व समुद्रों का ऐसे भस्म कर सकते हैं जैसे प्रलय के समय सब भस्म होते हैं। ऐसे सिंहवत् बली वृषभस्कन्ध राम को पिता होकर आप ही ने मार डाला। देखिये ! द्विजों का धर्म जो सदा से ऋषिलोग लिखते चले आते हैं और देवता सुना जाता है उस को ऐसे धर्मान्मा पुत्र को आपने वन निकाला दे नष्ट कर दिया। राजन् ! स्त्री की एक गति तो पति है और दूसरी पुत्र तथा तीसरी ज्ञाति के लोग हैं, चौथी और कोई गति नहीं, इन के अभाव में उन का धर्म नहीं ठहरता। प्रथम गति पति है, सो आप तो मूर्च्छित ही पड़े हैं, दूसरी गति पुत्र सो वन को चले गये, तीसरी गति परिवार सो भी रामके वियोग से मरे ही हैं। आप यहाँ रहने से मैं वनमें जाना नहीं चाहती। अतः सर्वथा तुमने मुझे मार डाला। आपके द्वारा राज्य के साथ राष्ट्र, मंत्रियोंके साथ सब स्त्रियोंका, पुत्रों के साथ मेरा और प्रजाजनों का घात हुआ है। केवल आपका पुत्र भरत और कंकणी प्रहृष्ट हुई हैं।’ ( २१-२६ )

उपयुक्त कठोर भाषण सुनकर दुःखी हुआ दशरथ राजा ‘ हे राम ! ’

ततः स शोकं प्रविवेश पार्थिवः स्वदुष्कृतं चापि पुनस्तथास्मरत् १७  
 इत्यार्षे श्रीमद्रामायण बाण्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्ड एकपष्ठितमः सर्गः ॥ ६१ ॥  
 द्विपष्ठितमः सर्गः । [ २४२२ ]

एवं तु क्रुद्धया राजा राममात्रा सशोकया ।  
 श्रावितः परुषं वाक्यं चिन्तयामास दुःखितः १  
 चिन्तयित्वा स च नृपो मोहव्याकुलितेन्द्रियः ।  
 अथ दीर्घेण कालेन संज्ञामाप परंतपः २  
 स संज्ञामुपलभ्यैव दीर्घमुष्णं च निःश्वसन् ।  
 कौसल्यां पार्श्वतो दृष्ट्वा ततश्चिन्तामुपागमत् ३  
 तस्य चिन्तयमानस्य प्रत्यभात्कर्म दुष्कृतम् ।  
 यदनन कृतं पूर्वमज्ञानाच्छब्दबंधिना ४  
 अमनास्तन शोभेन रामशोकेन च प्रभुः ।  
 द्वाभ्यामपि महाराजः शोकाभ्यामभितप्यते ५  
 दह्यमानस्तु शोकाभ्यां कौसल्यामाह दुःखितः ।  
 वेपमानोऽञ्जलिं कृत्वा प्रसादार्थमवाङ्मुखः ६  
 प्रसादये त्वां कौसल्ये रचितोऽयं मयाञ्जलिः ।

ऐसा पुकार के मूर्च्छित हुआ और पश्चात् शोकाकुल उस को अपने दुष्कृत्य का पुनः स्मरण हुआ । ( २७ )

यहां एकमठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

शोक और क्रोध से कौसल्या के दशरथ को ऐसे कठोर वचन कहनेपर राजा दुःखिन हो चिन्ता करने लगे । व्याकुलेन्द्रिय चिन्तित राजा मोहित हो गया और बहुत काल में उनकी मूर्च्छा जागी । मूर्च्छा जागने पर दीर्घ गर्म सांस लेते हुए राजा बगल में कौसल्या को बैठी देख फिर चिन्ता करने लगे । उस समय में शब्दबन्धी बाण द्वारा श्रवण को मारने और श्राप प्राप्त होने की याद आई । तब उस शोक से व रामके शोक से महाराज अति संतप्त हुए । ( १-५ )

दोनों शोकों से भस्म होते महाराज कांपते हुए हाथ जोड़ कौसल्या से

वत्सला चानृशंसा च त्वं हि नित्यं परेष्वपि	७
भर्ता तु खलु नारीणां गुणवान्निर्गुणोऽपि वा ।	
धर्मं विमृशमानानां प्रत्यक्षं देवि दैवतम्	८
सा त्वं धर्मपरा नित्यं दृष्टलोकपरावरा ।	
नार्हसे विप्रियं धन्तुं दुःखितापि सुदुःखितम्	९
तद्वाक्यं करुणं राज्ञः श्रुत्वा दीनस्य भाषितम् ।	
कौसल्या व्यसृजद्वाप्यं प्रणालीव नवोदकम्	१०
सा मूर्ध्नि वद्ध्वा रुदती राज्ञः पद्ममिवाञ्जलिम् ।	
संभ्रमादवीत्वस्ता त्वरमाणाक्षरं वचः	११
प्रसीद शिरसा याचं भूर्मा निपतितास्मि ते ।	
याचितास्मि हता देव क्षन्तव्याहं नहि त्वया	१२
नैषा हि सा स्त्री भवति श्लाघनीयेन धीमता ।	
उभयोर्लोकयोर्लोके पत्या या संप्रसाद्यते	१३
जानामि धर्मं धर्मज्ञ त्वां जाने सत्यवादिनम् ।	
पुत्रशोकार्तया ननु मया किमपि भाषितम्	१४

बोले- 'हे प्रिये ! जिस से तुम शत्रुओं के ऊपर भी दया करती और प्रसन्न रहती हो, सो मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ । देवि ! धर्मवती स्त्रियों के लिये पति ही धर्म है, चाहे वह सुशील हो वा कुशील, गुणी हो वा निर्गुणी, कुलीन हो वा अकुलीन । तुम धर्मनिष्ठ लोगों को देखती हुई मुझ दुःखित को कष्ट न पहुँचाओ ।' अतिदीन राजाके ऐसे कर्णामय वचन सुन कौसल्या आंसुओं की धार बहाने लगी । ( ६-१० )

हाथ जोड़ शिर पर धर रोदन करती हुई कौसल्या बड़ी नम्रता से बोली- 'देव ! प्रसन्न हूँजिये, आप के आगे भूमि में गिर प्रणाम करती हूँ, मैं पुत्रशोक से मरी बैठी हूँ, अब आप मेरे कडे वचनों से अप्रसन्न हो मुझे न मारिये । इस लोक परलोक में बड़ाई करने योग्य पति जिस स्त्री को मनावे, वह स्त्री सब स्त्रियों के तुल्य नहीं है । मैं स्त्रीधर्म को भली भाँति जानती हूँ कि उन्हें पति की प्रसन्नता ही के लिये काम करने चाहिये और यह भी जानती हूँ कि आप सत्यवादी हैं, जो कुछ मैंने कटु वचन कहे वे पुत्रशोक से

शोको नाशयते धैर्यं शोको नाशयते श्रुतम् ।	
शोको नाशयते सर्वं नास्ति शोकसमो रिपुः	१५
शक्यमापतितः सोढुं प्रहारो रिपुहस्ततः ।	
सोढुमापततः शोकः सुसूक्ष्मोऽपि न शक्यते	१६
वनवासाय रामस्य पञ्चरात्राऽत्र गण्यते ।	
यः शोकहतहर्षायाः पञ्चवर्षोपमो मम	१७
तं हि चिन्तयमानायाः शोकोऽयं हृदि वर्धते ।	
नदीनामिव धेगेन समुद्रसलिलं महत्	१८
एवं हि कथयन्त्यास्तु कौसल्यायाः शुभं वचः ।	
मन्दरदिमरभूत्सूर्यो रजनी चाभ्यवर्तत	१९
अथ प्रह्लादिता वाक्यैर्देव्या कौसल्याया नृपः ।	
शोकेन च समाक्रान्तो निद्राया वशमेयिवान्	२०

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वार्त्तिकीय आदिकाव्येऽथोपशकाण्डे द्विपटितमः सर्गः ॥६२॥

त्रिपटितमः सर्गः ।

[ २४४१ ]

प्रतिबुद्धो मुहूर्तेन शोकोपहतचेतनः ।

अथ राजा दशरथः स चिन्तामभ्यपद्यत १

ही कहे हैं । शोक, धैर्य और श्रुत का नाश कर देता है, शोक समान अन्य शत्रु नहीं है । ( ११-१५ )

‘शत्रु का भीषण प्रहार सहा जा सकता है, पर शोक का नहीं, इस को रोकना दुष्कर है । राम को वनवास हुये पांच रात्रि हुईं । वे मुझे पांच वर्षों के तुल्य थीं हैं । चिन्ता से बढ़ते हुए नदी धेग के समान शोक से मैं बहुत दुःखित हूँ ।’ कौसल्या के इस प्रकार कहते रात्रि हो गईं और राजा फिर शोकातुर हो गये । कौसल्या के वचनों से कुछ प्रसन्न भी हुए थे, किन्तु शोक ने फिर अधिकार जमा लिया और वह निद्रावश हो गये । ( १६-२० )

यहाँ वामदेवीं सर्ग समाप्त हुआ ।

मुहूर्त भर के बाद राजा जागे और शोक से व्याकुलचित्त हो चिन्ता

रामलक्ष्मणयोश्चैव विवासाद्वासवोपमम् ।	
आपदे उपसर्गस्तं तमः सूर्यमिवासुरम्	२
सभार्ये हि गते रामे कौसल्यां कौसलेश्वरः ।	
धिवभ्रुरसितापाङ्गीं स्मृत्वा दुष्कृतमात्मनः	३
स राजा रजनीं पृथ्वा रामे प्रव्राजिते वनम् ।	
अर्धरात्रे दशरथः सोऽस्मरद् दुष्कृतं कृतम्	४
स राजा पुत्रशोकार्तः स्मृत्वा दुष्कृतमात्मनः ।	
कौसल्यां पुत्रशोकार्तमिदं वचनमब्रवीत्	५
यदाचरति कल्याणि शुभं वा यदि याशुभम् ।	
तदेव लभते भद्रे कर्ता कर्मजमात्मनः	६
गुरुलाघवमर्थानामारम्भे कर्मणां फलम् ।	
दोषं वा यां न जानानि स बाल इति होच्यते	७
कश्चिदाम्रवणं छित्त्वा पलाशांश्च निषिञ्चति ।	
पुष्पं दृष्ट्वा फले गृध्नुः स शोचति फलागमे	८
अविज्ञाय फलं यो हि कर्म त्वेवानुधावति ।	

करने लगे । राम लक्ष्मण के वनवास के उपद्रव से बड़े शोकने दशरथ को ऐसा घेरा जैसे राहु सूर्य को । सपत्नीक राम के वनवास होने पर अपने किये हुए पाप को याद कर दशरथ कौसल्या से कुछ कहने लगे । वनवास के पीछे छठी रात्रि को अर्ध रात्रि के समय राजाने अपने किये पाप की याद की । पुत्रशोक से दुःखित हो अपने आप को याद कर कौमल्या से कहने लगे ।  
( १-५ )

‘भद्रे ! पुरुष संसार में जो शुभ वा अशुभ कर्म करता है, उससे उत्पन्न फल को वह स्वयं ही पाता है । जब प्राणी कर्म करने लगे और उस की गुस्ता, लज्जता, दुःख आदि को प्रथम जान ले, तो वह बड़ा मूर्ख कहलाता है । जो पलाश वृक्ष के लाल लाल सुन्दर फूल देख यह अन्दाजा करता है कि इस के फूल अच्छे हैं, सो फल भी अच्छे होंगे, इसी अभिप्राय से उसे आम पुष्पों को सुन्दर न देख काटता है, वह पीछे पटताता है । ऐसे ही

स शोचेत्फलवेलायां यथा किंशुकसेवकः	९
सोऽहमाप्रवणं छित्वा पलाशांश्च न्यपेचयम् ।	
रामं फलागमे त्यक्त्वा पश्चाच्छोचामि दुर्मतिः	१०
लब्धशब्देन कौसल्ये कुमारेण धनुष्मता ।	
कुमारः शब्दवेधीति मया पापमिदं कृतम्	११
तादिदं मेऽनुसंप्राप्तं देवि दुःखं स्वयंकृतम् ।	
संमोहादिह बालेन यथा स्याद्भक्षितं विषम्	१२
यथान्यः पुरुषः कश्चित्पलाशैर्मोहितो भवेत् ।	
एवं मयाप्यविज्ञातं शब्दवेध्यमिदं फलम्	१३
देव्यनूढा त्वमभयो युवराजो भवाम्यहम् ।	
ततः प्रावृडनुप्राप्ता मम कामविचार्थिनी	१४
अपास्य हि रसान्भौमास्तप्त्वा च जगदंशुभिः ।	
परेताचरितां भीमां रघिराचरते दिशम्	१५

जो जन कर्म करने लगता है और उस के परिणाम को नहीं सोचता वह फल-समयमें ऐसे ही पछताता है, जैसे ढाक को सेवनेवाला । सो मेरी भी वही अवस्था हुई कि आम का वन काट ढाक को सींचा, जब फल पाने का समय आया तो राम को वन भेज अपनी दुष्ट मति को शोचता हूँ । ( ६-१० )

‘कौसल्ये’ कुमारावस्था में एकदा शिकार खेलने गया और यह सोचा कि लोग भरे विषय में मैं कहूँ कि ‘यह बड़ा शब्दवेधी है’ अतएव यह पाप किया । देवि ! वही किया पापरूपी दुःख मुझ को प्राप्त हुआ । जैसे कोई जन ढाक के पुष्प देख उस से उत्तम फल प्राप्ति की इच्छा से सेवा करे, ऐसे ही मैंने भी शब्दवेधी को उत्तम जान बिना जाने वृझे ऐसा किया उस का फल पाया है । यह वृत्त तब का है जब कि तुम्हारा विवाह नहीं हुआ था, मैं युवराज था । उन्हीं दिनों में वर्षा ऋतु आई जिसने मेरे काम की वृद्धि की । उस समय सूर्य किरणों से पृथ्वी का रम खोच दक्षिण दिशा को चला गया था । ( ११-१५ )

उष्णमन्तर्दधे सद्यः स्निग्धा ददृशारे घनाः ।	
ततो जहृपिरे सर्वे भेकसारङ्गवर्हिणः	१६
क्लिन्नपक्षोत्तराः स्नाताः कृच्छ्रादिव पतत्त्रिणः ।	
वृष्टिवातायधूताग्रान्पादपानभिपेदिरे	१७
पतितेनाम्भसा च्छन्नः पतमानेन चासकृत् ।	
आग्रमौ मत्तसारङ्गस्तोयराशिरिवाचलः	१८
पाण्डुरारुणवर्णानि स्त्रोतांसि विमलान्यपि ।	
सुस्रुवुर्गिरिधातुभ्यः सभस्मानि भुजङ्गवत्	१९
तस्मिन्नतिसुखे काले धनुष्मानिपुमाग्रयी ।	
व्यायामकृतसंकल्पः सरथूमन्वगां नदीम्	२०
निपाने महिष रात्रौ गज बाभ्यागतं मृगम् ।	
अन्यद्वा श्वापदं किञ्चिज्जिघांसुरजितेन्द्रियः	२१
अथान्वकारे त्वश्रौयं जले कुम्भस्य पूर्यतः ।	
अन्त्रशुक्तिरस्ये घोरां वारणस्येव स्रदतः	२२

‘उष्णता जाती रही थी, बाढल चारों ओर ढील पड़ते थे, उस वर्षाकाल की देर भेदक, हरिण, मयूर आदि जीव बड़े आनन्द को प्राप्त हुए । जब वर्षा होने लगी, तो सब पक्षी भीगे हुये पर इतस्ततः फटफटाने लगे, मानो बड़े कष्ट में हों, अतः पवन से कांपते वृक्षों पर जा जा बैठे । मत्त बरसते हुए जलसे जाच्छादित तथा मत्त चातकों से युक्त वह पर्वत शोभित होता था, जैसे स्थिर सागर यथावत् स्थिर रह शोभता है । पीले और लाल रङ्ग के विमल सोते पहाड़ों के गेरु आदि धातुओं से मिल कर बहने लगे और कहीं कहीं मिट्टी में लग लग बहते थे । ऐसे सुन्दर वर्षाकाल में धनुर्षाण से रथ पर चढ़ अधिकार खेलने तथा मृगनों के लिये मैं सरयूतट पर पहुंचा । ( १६-२० )

‘वहां से उस स्थान पर गया जहां बाजीब जल पीने को जाने थे, ताकि वहां रात्रि में कोई भेमे, हाथी, हरिण वा और कोई जीव आवे तो उसे मारूं । उम्मी मनःपर्व की अन्धेरी में कोई जड़ भरने आया । जब घड़ा दि. ३ ( अयोध्या. उ. )



ततोऽहं शरमुद्धृत्य दीप्तमाशीविपोषमम्	२३
शब्दं प्रति गजप्रेप्सुरभिलक्ष्यमपातयम् ।	
अमुञ्चं निशितं वाणमहमाशीविपोषमम्	२४
तत्र वागुपसि व्यक्ता प्रादुरासीद्वनैकसः ।	
हा हेति पततस्तोये वाणाद्व्यथितमर्मणः	२५
तस्मिन्निपतिते भूमौ वागभूत्तत्र मानुषी ।	
कथमस्मद्विधे शस्त्रं निपतेच्च तपस्विनि	२६
प्रविविक्तां नदीं रात्राबुदाहारोदमागतः ।	
इषुणाभिहतः केन कस्य वापकृतं मया	२७
ऋपेहिं न्यस्तदण्डस्य घने वन्येन जीवतः ।	
कथं नु शस्त्रेण वधो मद्विधस्य विधीयते	२८
जटाभारधरस्यैव चल्कलाजिनवाससः ।	
को वधेन ममार्थी स्यात्किं वास्यापकृतं मया	२९
एवं निष्फलमारब्धं केवलानर्थसंहितम् ।	
न कचिन्स्ताधु मन्येत यथैव गुरुतल्पगम्	३०
नेमं तथानुशोचामि जीवितक्षयमात्मनः ।	

पानी में डुबोने लगा, तो उस का पैसा शब्द हुआ मानों हाथी है । तब मैंने हाथी मारने के लिये रिप में बुझा हुआ बाण निकाल उस शब्द की सीध में छोड़ा । जैसे ही पैसा वाण मैंने छोड़ा कि किसी वनवासी का शब्द सुनाई दिया और यह भी ज्ञात हुआ कि वह हा हा करता वाणसे व्याकुल हो जल में गिरा । वह कहने लगा । ( २१-२६ )

‘हाय ! मुझ जैसे तपस्वी पर क्यों वाण छोड़ा गया ? मैं तो जल भरने के लिये धरेला इस घन में रात्रि को आया था । मुझे वाण से किसने मारा ? मैंने किस का क्या अपकार किया ? मैंने तो केवल जटा रखावे चल्कल और मुगचमे ही धारण करता हूँ । मेरे पथ से न जाने किस का प्रयोजन लिट होगा और उम का मैंने कौनसा अपकार किया ? पैसा कर्म तो अनर्थमूलक ही है । ( २६-३० )

मातरं पितरं चोभावनुशोचामि मद्बधे	३१
तदेतन्मिथुनं वृद्धं चिरकालभृतं मया ।	
मयि पञ्चत्वमापन्ने कां घृत्ति वर्तयिष्यति	३२
वृद्धौ च मातापितरावहं चैकेपुणा द्रुतः ।	
केन स्म निहताः सर्वे सुयलेनाकृतात्मना	३३
तां गिरं करुणं श्रुत्वा मम धर्मानुकाङ्क्षिणः ।	
कराभ्यां सशरं चापं व्यथितस्यापतद्भुवि	३४
तस्याहं करुणं श्रुत्वा क्रपेर्विलपतो निशि ।	
संभ्रान्तः शोकवेगेन भृशमासं विचेतनः ।	
तं देशमहमागम्य दीनसत्त्वः सुदुर्मनाः	३५
अपश्यमिपुणा तीरे सरयवास्तापसं द्रुतम्	३६
अवकीर्णजटाभारं प्रविद्धकलशोदकम् ।	
पांसुशोणितदिग्धाङ्गं शयानं शल्यवेधितम्	३७
स मामुद्वीक्ष्य नेत्राभ्यां व्रस्तमस्यस्थचेतनम् ।	

‘जैसे कोई गुरुशय्या पर चढ़ने को अच्छा नहीं मानता, वैसे ही मैं इस कर्म को अच्छा नहीं मानता । प्राणनाश का मुझे कुछ शोक नहीं । अपने बध से मैं स्वमाता पिता का शोक करता हूँ, जिन वृद्धों को मैंने चिरकाल से पोषण किया । मेरे मरने पर दोनों किस तरह निर्वाह करेंगे ? मेरे माता पिता तो वृद्ध हैं और मैं बाण से मारा गया । हम सबों को किस अकृतात्माने मारा ।’ ( ३०-३३ )

‘इस करगायाणी का मुन धर्मानुकांक्षी मेरे हाथों से अनुपवाग भूमि पर गिर पड़े और मेरा शरीर कांपने लगा । रात्रि में उस क्रिय का करग-विलाप सुन, शोकवेग ने भ्रान्तमनवाला मैं मूर्च्छित हो गया, फिर अति-दुर्मना हो उस स्थान पर पहुँचा । जंगल तो गुरुगूढ पर बाण से मरा हुआ, जटा धारण सिधे, जलभरा घड़ा हाथ में पकड़े, एक तपस्वी पड़ा है । अंगों में लोहू की सर्तः रुई लगी है, शयनोटा में व्यथित भूमि में पड़ा है ।’ ( ३४-३७ )

इत्युवाच वचः क्रूरे दिग्धक्षत्रिव तेजसा	३८
किं तवापहतं राजन्वने निवसता मया ।	
जिह्विर्पुष्पो गुर्वर्थं यद्दहं ताडितस्त्वया	३९
एकेन खलु वाणेन ममण्यभिहते मयि ।	
द्वाबन्धौ निहतौ वृद्धौ माता जनयिता च मे	४०
तौ नूनं दुर्बलाबन्धौ मत्प्रतीक्षौ पिपासितौ ।	
चिरमाशां कृतां कर्षां तृष्णां संघारायेष्यतः	४१
न नूनं तपसो वास्ति फलयोगः श्रुतस्य वा ।	
पिता यन्मां न जानीति शयानं पतित भुधि	४२
जानन्नपि च किं कुर्यादशक्तश्चापरिक्रमः ।	
भिद्यमानभिवाशक्तखातुमन्यो नगो नगम्	४३
पितुस्त्वमेव मे गत्वा शीघ्रमावक्ष्व राघव ।	
न त्वामनुदहेत्कुब्जो वनमग्निरिवैधितः	४४
इयमेकपदी राजन्यतो मे पितुराश्रमः ।	
तं प्रसादय गत्वा त्वं न त्वा संकुपितः शपेत्	४५

‘उसने मुझे घबड़ाया हुआ देख अपने बैज से मुझ को भस्म करता हुआ सा बोला— ‘राजन् ! इस वन में वम के भैंसे तुम्हारा कौन अपकार किया ? मैं तो स्वमाता पिता के लिये जल लेने आया था, तुमने मुझे मार डाला । वाणद्वारा मेरा मर्मस्थल घेध तुम ने और भी दो वृद्ध अन्धों को मारा, जो मेरे पिता माता हैं, वे प्यास के मारे मेरी राह देखते होंगे । बड़ी देर से तृपित होने से वे बहुत दुःख में होंगे । ( ३८-४१ )

‘मेरी इस दशा को न वे किसी तपोबल से जान सकते हैं और न शाल्व-बल से । पिता यह नहीं जानते कि बाण से हत मैं पृथ्वी में सोता हूँ । वे जान कर भी क्या कर सकते ? क्योंकि वह अपराक्रमी और अशक्त हैं । जैसे कंट वृक्ष की दूसरी वृक्ष रक्षा नहीं कर सकता, ऐसे ही मेरे पिता माता भी बन्धे और पंगु होने से अममर्थ हैं । ओ राजन् ! मेरे पिता के पास जा तुम्हीं कहो, यहाँ तो तुमको पिता भस्म कर देंगे । जहाँ मेरे पिता का

विशल्यं कुरु मां राजन्मर्म मे निशितः शरः ।	
रुणाद्भि मृदु सोत्सेधं तीरमम्बुरयो यथा	४६
सशल्यः क्लिश्यते प्राणैर्विशल्यो विनशिष्यति ।	
इति मामविशश्चिन्ता तस्य शल्यापकर्पणे	४७
दुःखितस्य च दीनस्य मम शोकातुरस्य च ।	
लक्षयामास स ऋषिश्चिन्तां मुनिसुतस्तदा	४८
ताम्यमानं स मां कृच्छादुवाच परमार्थवित् ।	
सीदमानो विवृत्ताङ्गो चेष्टमानो गतः क्षयम्	४९
संस्तभ्य शोकं धैर्येण स्थिरचित्तो भवाम्यहम् ।	
ब्रह्महत्याकृतं तापं हृदयादपनीयताम्	५०
न द्विजातिरहं राजन्मा भूसे मनसो व्यथा ।	
शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवरार्धप	५१
इतीव वदतः कृच्छ्राद्वाणाभिहतमर्मणः ।	
विधूर्णतो विचेष्टस्य घपमानस्य भूतले	५२
तस्य त्वाताम्यमानस्य तं थाणमहमुद्धरम् ।	

म्यान है, वहां तक यह छोटी पगडण्डी गई है। वहां जा मेरे पिता को प्रसादित करो, जिस से तुम को शाप न दे दें। मेरे मर्मस्थान में लगे बाण को भी निकाल दो। क्योंकि वह मुझे पीड़ा दे रहा है, जैसे जल-प्रवाह रेत के ऊँचे ढेर को काटता है।' ( ४२-४६ )

'यह सुन मैंने सोचा कि बाण निकलते ही इसके प्राण भी निकल जायेंगे। अतएव चिन्ता से व्याकुल हो तीर न निकाल सका। उस मुनि-पुत्रने मेरी दशा को लक्षित कर लिया और मुझ से बड़ी कृपा से बोला। यद्यपि उस में बोलने की शक्ति न थी, क्योंकि उस के सब अंग कांप रहे थे, प्राण निकला ही चाहते थे। तो भी दया कर बड़े धैर्य से स्थिर चित्त हो कहने लगा— 'राजन् ! ब्रह्महत्या से डरते हो इस से तीर नहीं निकालते। न डरिये, क्योंकि मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, आप मद्बोच न करें। मैं शूद्रा स्त्री में वैश्य से उत्पन्न हूँ।' बाण निकालने के समय वह छटपटाने लगा, पर मैंने

स मामुद्धीक्ष्य संव्रस्तो जहौ प्राणांस्तपोधनः ५३  
 जलाद्रङ्गात्रं तु विलप्य कृच्छ्रं मर्मव्रणं संततमुच्छ्वसन्तम् ।  
 ततः सरय्वां तमहं शयानं समीक्ष्य भद्रे सुभृशं विपण्णः ५४  
 इत्यार्षे श्री० वा० आदिकाव्येऽथोष्णकाण्डे त्रिपष्ठितमः सर्गः ॥६३॥ [२४९६]  
 चतुःपष्ठितमः सर्गः ।

वधमप्रतिरूपं तु महर्षेस्तस्य राघवः ।  
 विलपन्नेव धर्मात्मा कौसल्यामिदमब्रवीत् १  
 तदज्ञानान्महत्पापं कृत्वा संकुलितेन्द्रियः ।  
 एकस्त्वचिन्तयं बुद्ध्या कथं नु सुकृतं भवेत् २  
 ततस्तं घटमादाय पूर्णं परमचारिणा ।  
 आश्रमं तमहं प्राप्य यथाख्यातपथं गतः ३  
 तत्राहं दुर्बलावन्धौ वृद्धावपरिणायकौ ।  
 अपदयं तस्य पितरौ लूनपक्षाविद्य द्विजौ ४  
 तन्निमित्ताभिरासीनौ कथाभिरपरिभ्रमौ ।  
 तामाशां मत्कृते दीनावुपासीनावनाथवत् ५

बाण निकाल दिया । तीर निकालते ही उसने मेरी ओर देख भयभीत हो प्राण त्याग दिये । तब जल से निगा हुआ तथा शरव्रणजनित दुःख से विलाप करते करते मेरे उस तपस्वी को देखकर हे कौसल्या ! मैं अतीव खिन्न हो गया । ' ( ४७-५४ )

यहाँ त्रेसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

इस प्रकार ऋषिपुत्र का अनुचित वध दशरथ रो रो कर कहते हुए कौसल्या से बोले, ' हे प्रिये ! अज्ञान से वह पाप कर ध्याकुलचित्त हो मैं उस शून्य स्थान में सोचने लगा कि अब कैसे इस के वध का पाप मिटे ? बहुत सीच कर उस घड़े में सरयूजल भर ऋषिपुत्रकी बताई हुई पगडण्डी से उस के स्थान पर गया । वहाँ जो देखा तो अति दुर्बल अन्धे वृद्ध उस के माता पिता पंख कटे पक्षियों के समान बैठे थे और पुत्र की बात देख रहे थे । वह आशा मेरे कारण जाती रही, क्योंकि उस पुत्र का मैंने वध किया था । वे अत्यन्त अनाथ हो बैठे थे । उस पुत्रके सिया और कोई उनकी खबर

शोकोपहतचित्तश्च भयसंत्रस्तचेतनः ।	
तद्याश्रमपदं गत्वा भूयः शोकमहं गतः	६
पदशब्दं तु मे श्रुत्वा मुनिर्वाक्यमभाषत ।	
किं चिरायसि मे पुत्र पानीयं क्षिप्रमानय	७
यन्निमित्तमिदं तात सलीले क्रीडितं त्वया ।	
उत्कण्ठता ते मातेर्यं प्रविश क्षिप्रमाश्रमम्	८
यद्यलीकं कृतं पुत्र मात्रा ते यदि वा मया ।	
न तन्मनसि कर्तव्यं त्वया तात तपस्विना	९
त्वं गतिस्त्यगतीनां च चक्षुस्त्वं हीनचक्षुषाम् ।	
समासक्तास्त्वयि प्राणाः कथं त्वं नाभिभाषसे	१०
मुनिमव्यक्तया वाचा तमहं सज्जमानया ।	
हीनव्यञ्जनया प्रेक्ष्य भीतचित्त इवाब्रुवम्	११
मनसः कर्म चेष्टाभिरभिसंस्तभ्य वाग्यलम् ।	
आचन्द्रक्षे त्वहं तस्मै पुत्रव्यसनजं भयम्	१२
क्षत्रियोऽहं दशरथो नाहं पुत्रो महात्मनः ।	
सज्जनावमतं दुःखमिदं प्राप्तं स्वकर्मजम्	१३

लेनेवाला न था । ( १-५ )

‘उम्मी समय शोक से हतचित्त और भयभीत मैं उस आश्रम पर पहुँचा । मेरे पैरों की आहट सुन वे मुनि बोले— ‘पुत्र ! अब डेरी क्यों करते हो ? जल्द हमको पानी पिलाओ । जलमें बहुत देर तक क्रीडा करते रहे, इससे तुम्हारी मां बड़े प्यार से स्मरण करती है, जल्द ही स्वस्थान में प्रवेश करो । पुत्र ! तुम्हारी माता ने और मैंने जो अपराध किया हो, तुम उस पर ध्यान न देना । इन अममर्थ, अन्यों के पालक तुम्हों में हमारे प्राण लगे हैं, तुम क्यों नहीं बोलते ? ’ ( ६-१० )

‘बृद्धता के कारण वे बहुत धीरे धीरे बोलते थे, विकलता के कारण स्पष्ट शब्द सुनाई नहीं देता था । डरते डरते मैं उनसे बोला और धीरे से उनके कष्ट का हाल कहने लगा— ‘मुनिराज ! मैं दशरथ नाम क्षत्रिय हूँ । आप का

भगवंश्चापहस्तोऽहं सरयूतीरमागतः ।	
जिघांसुः श्वापदं किञ्चिन्निपाने वागतं गजम्	१४
ततः धृतो मया शब्दो जले कुम्भस्य पूर्यतः ।	
द्विपोऽयमिति मत्वाहं वाणेनाभिहतो मया	१५
गत्वा तस्यास्ततस्तीरमपश्यमिपुणा वृद्धि ।	
विनिर्भिन्नं गतप्राणं शयानं भुवि तापसम्	१६
ततस्तस्यैव वचनादुपेत्य परिप्यतः ।	
स मया सहसा वाण उद्धृतो मर्मतस्तदा	१७
स चोद्धृतेन वाणेन सहसा स्वर्गमास्थितः ।	
भगवन्तावुर्भां शोचन्नन्धाविति विलप्य च	१८
अजानान्द्रवतः पुत्रः सहसाभिहतो मया ।	
शेषमेवं गते यत्स्यात्तत्प्रसीदतु मे मुनिः	१९
स तच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं मया तदघशंसिता ।	
नाशकस्तीव्रमायासं स कर्तुं भगवानृषिः	२०
स वापपूर्णवदनो निःश्वसञ्शोकमूर्च्छितः ।	
मामुवाच महातेजाः कृताञ्जलिमुपस्थितम्	२१

पुत्र अब नहीं है, आप बड़े सज्जन हैं, पर न मालूम आपने क्यों यह दुःख पाया है । भगवन् ! मैं धनुर्बाण ले पनघट पर हाथी, सिंह आदि जङ्गली जीव मारने के लिये सरयू तट पर गया, वहाँ जल में घड़ा डूबने का शब्द सुन और यह जान कि हाथी पानी पी रहा है, वाण चलाया । ( ११-१५ )

‘सरयू के तटपर जा देखा, तो मेरे उसी वाण से भिन्नहृदय प्राण निकलते हुए, एक तपस्वी पृथ्वीपर पड़ा है । मैं वाण नहीं निकालना चाहता था, पर उसी के कहने से उस के मर्मस्थल में लगा तीर मैंने निकाल दिया । वाण निकालते ही आप लोगों का शोक करते हुए उसने स्वर्ग की यात्रा की । इस तरह अनजाने में मैंने तुम्हारे पुत्र को मारा । अब आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये । ’ ( १६-१९ )

‘तब मैंने अपना अपराध अपने मुख से मुनि से कहा, तो उस को मुन वे मुनिराज कुछ न बोल सके । केवल आंसू भर कर शोक से मूर्च्छित हो

यद्येतद्गुप्तं कर्म न स्म मे कथयेः स्वयम् ।	
फलेन्मूर्धा स्म ते राजन्सद्यः शतसहस्रधा	२२
क्षत्रियेण वयो राजन्वानप्रस्थे विशेषतः ।	
ज्ञानपूर्वं कृतः स्थानाच्छयावयेदपि वज्रिणम्	२३
सतथा तु भवेन्मूर्धा मुनौ तपसि तिष्ठति ।	
धानाङ्घ्रिस्तृजतः शङ्खं तादृशे ब्रह्मवादिनि	२४
अधानाङ्घ्रि कृतं यस्मादिदं ते तेन जीवसे ।	
अपि ह्यकुशले न स्याद्रावयाणां कुतो भवान्	२५
नय मां नृप तं देशमिति मां चाभ्यभाषत ।	
अथ तं द्रष्टुमिच्छावः पुत्रं पश्चिमदर्शनम्	२६
रुधिरेणावसिक्ताङ्गं प्रकीर्णाजिनवाससम् ।	
शयानं भुवि निःसंजं धर्मराजवशं गनम्	२७
अथाहमेकस्तं देशं नीत्वा तौ भृशदुःखिनौ ।	
अस्पर्शयमदं पुत्रं तं मुनिं सह भार्यया	२८
तौ पुत्रमात्मनः स्पृष्ट्वा तमासाद्य तपस्विनौ ।	
निपेततुः शरीरेऽस्य पिता चैनमुवाच ह	२९

हाथ जोट खड़े हुए मुझ से बोले— ' राजन् ! जो यह अपना किया हुआ अनुभवं कर्म आज स्वयं हम से न कहते, तो तुम्हारे शिर के फटकर अमंगल टूक हो जाने । क्षत्रिय होकर जो तपस्वी का वध जानबूझ करे, तो इन्द्र तक भी पतित हो जाये । ऐसे ब्रह्मवादी तपस्वी का वध जो जानबूझ करे, तो वधकर्ता के शिर के टुकड़े टुकड़े हो जायें । तुमने अज्ञानता में हमारे पुत्र का वध किया, इस ने जीते हो, अन्यथा ऐसा पाप जानबूझ कर करने में रघुवंश ही न रहता । हे राजन् ! हम अपने पुत्रको देखना चाहते हैं, इस से हमें वहीं ले चलो, क्योंकि अब उम के अन्तिम दर्शन हैं । उसके अङ्गों में लोहू लगा होगा, मृगचर्म अलग पड़ा होगा, मूर्च्छित भूमि में सोता होगा, प्राण उम के यमराज के समीप पहुँच गये होंगे । ' ( २०-२७ )

‘मैंने अङ्ग्रे उन दोनों को कन्वे पर चढ़ा लिया और उनके पुत्रको छुआ दिया । वे दोनों अपने पुत्र के शरीर को टोले उसी के देह पर गिर पड़े,



नाभिवादयसे माद्य न च मामभिभाषसे ।

किं च शेषे तु भूमौ त्वं वत्स किं कुपितो ह्यसि ३०

नन्वहं तेऽप्रियः पुत्र मातरं पश्य धार्मिकीम् ।

किं च नालिङ्गसे पुत्र सुकुमार यचो वदः ३१

कस्य चा पररात्रेऽहं श्रोष्यामि हृदयंगमम् ।

अधीयानस्य मधुरं शाखं चान्यद्विशेषतः ३२

को मां संध्यामुपास्यैव स्नात्वा हुतहुताशनः ।

श्लाघयिष्यत्युपासीनः पुत्रशोकभयार्दितम् ३३

कन्दमूलफलं हत्वा यो मां प्रियमिवातिथिम् ।

भोजयिष्यत्यकर्मण्यमप्रग्रहमनायकम् ३४

इमामन्धां च वृद्धां च मातरं ते तपस्विनीम् ।

कथं पुत्र भरिष्यामि कृपणां पुत्रगर्धिनीम् ३५

तिष्ठ मा मागमः पुत्र यमस्य सदनं प्रति ।

श्वो मया सह गन्तासि जनन्या च समेधितः ३६

उभावपि च शोकार्तावनाथौ कृपणौ वने ।

क्षिप्रमेव गमिष्यावस्त्वया हीनौ यमक्षयम् ३७

उसका पिता— ‘बोला । हे वत्स ! आज हमें प्रणाम नहीं करने ? हमसे बोलते नहीं हो ? पृथ्वी पर सो रहे हो, क्या हम से रुष्ट हो गये हो ? यदि मैं तुम को अप्रिय हूँ तो धार्मिकी अपनी माता ही को देखो, क्यों नहीं उठके लिपट जाते ? अब हम अर्ध रात्रि के पीछे शाख आदि पढ़ते हुए मनोहर वचन किसके सुनेंगे ? अब स्नान सन्ध्या समाप्त करके पुत्र के शोक दुःखित हमारी कौन सेवा करेगा ? ( २८-३३ )

‘और कन्द मूल लेकर जिस का हाथ पकड़नेवाला कोई नहीं रहा, ऐसे अनाथ को कौन भोजन करावेगा ? अब हम इस वृद्धा व अन्धी तुम्हारी माताको कैसे पालें पोषेंगे ? क्योंकि वह रात्रि दिन पुत्र ही की आकांक्षा किया करेगी । हे पुत्र ! अभी ठहरो, यमराज के स्थान को न जाओ, प्रातः मेरे और अपनी माता के साथ जाना । क्योंकि हम दोनों भी तो शोकाहत

ततो वैवस्वतं दृष्ट्वा तं प्रवक्ष्यामि भारतीम् ।	
क्षमतां धर्मराजो मे विभृयात्पितरावयम्	३८ ।
दातुमर्हति धर्मत्मा लोकपालो महायशः ।	
ईदृशस्य ममाक्षय्यामेकामभयदक्षिणाम्	३९
अपापोऽसि यथा पुत्र निहतः पापकर्मणा ।	
तेन सत्येन गच्छाशु ये लोकास्त्वस्त्रयोधिनाम्	४०
यां हि शूरा गतिं यान्ति सङ्ग्रामेष्वनियतिनः ।	
इतारूढभिमुखाः पुत्र गतिं यां परमां व्रज	४१
यां गतिं सगरः शैब्यो दिलीपो जनमेजयः ।	
नहुषो धुन्धुमारश्च प्राप्तास्तां गच्छ पुत्रक	४२
या गतिः सर्वभूतानां साध्यायात्तपसश्च या ।	
भूमिदस्याहिताग्नेश्च एकपत्नीव्रतस्य च	४३
गोसहस्रप्रदातृणां गुरुसेवाभृतामपि ।	
देहन्यासकृतां या च तां गतिं गच्छ पुत्रक	४४

अनाथ तुम्हारे बिना शीघ्र ही यमालय को जायेंगे । वहाँ चल यमसे कहेंगे, कि हमने जो अपराध किया हो क्षमा कीजिये, हमारा पुत्र हम वृद्धों का पालन करे, ऐसी आज्ञा दीजिये । ( ३४-३८ )

‘हमारे ऐसा कहने पर वे धर्मराज लोकपाल यह अभय क्षयरहित दक्षिणा दे देंगे । हे पुत्र ! तुम तो पापी नहीं हो, पर कोई तो पूर्व जन्म में पाप था जिस से मारे गये । तुमने कोई भी पाप नहीं किया, इसी सत्यसे उन लोकों को चल जाओ, जो युद्ध सन्मुख मरे हुए लोगों को होते हैं । पुत्र ! जिस गति को शूरवीर लोग जो संग्राम से लौटते नहीं, रण में मर पाते हैं, उसी गति को तुम भी प्राप्त होओ । जिस गतिको सगर, शैब्य, दिलीप जनमेजय, नहुष व धुन्धुमार राजा प्राप्त हुए, तुम भी उसी गति को पाओ । और जो गति प्राणियों को वेदशास्त्र आदि पढ़ने, यज्ञ करने, प्रतिदिन अभिहोत्रादि करने, एकपत्नीव्रत, सहस्र गौ देने, गुरुसेवा करने व [ प्रयाग अयोध्या काश्यादि तीर्थों में ] इच्छापूर्वक शरीर त्याग करनेसे होती है, हे पुत्र ! उसी

न हि त्वस्मिन्कुले जातो गच्छत्यकुशलां गतिम् ।

• स तु यास्यति येन त्वं निहतो मम बान्धवः ४५

एवं स कृपणं तत्र पर्यदेवयतासकृत् ।

तथोक्त्वा कर्तुमुदकं प्रयुक्तः सह भार्यया ४६

स तु दिव्येन रूपेण मुनिपुत्रः स्वकर्माभिः ।

स्वर्गमध्यारुहक्षिप्रं शक्रेण सह धर्मवित् ४७

आवभाषे च तौ वृद्धौ शक्रेण सह तापसः ।

आश्वस्य च मुहूर्ते तु पितरौ वाक्यमब्रवीत् ४८

स्थानमस्मि महत्प्राप्तो भवतोः परिचारणात् ।

भवन्तावपि च क्षिप्रं मम मूलमुपैष्यतः ४९

एवमुक्त्वा तु दिव्येन विमानेन वपुष्मता ।

आरुरोह दिवं क्षिप्रं मुनिपुत्रो जितेन्द्रियः ५०

स कृत्वाथोदकं तूर्णं तापसः सह भार्यया ।

मामुवाच महातेजा कृताञ्जलिमुपस्थितम् ५१

अद्यैव जहि मां राजन्मरणे नास्ति मे व्यथा ।

यः शरेणेकपुत्रं मां त्वमकार्षीरपुत्रवत् ५२

गति को पाओ । इस हमारे कुल में उत्पन्न मनुष्य कुगति को नहीं पाता, मो मोरे जाने पर भी तुम सुगति को ही पाओ । ’ ( ३९-४५ )

‘इस प्रकार वह नाना भांति रोदन कर और ऐसी बातें करता हुआ स्त्री सहित उस को जल देने में उद्यत हुआ । जब उन दोनोंने जल दानादि किया, तो वह नपस्वी पुत्र दिव्य शरीर पा इन्द्र के साथ स्वर्ग को चला गया और चलने के मनय इन्द्र के साथ विमान पर चढ़ माता पिता को सनझा उन से यह बोला कि ‘आप लोगों की सेवा करने से मुझ को बड़ा उत्तम स्थान मिला, आप लोग भी बहुत ही शीघ्र उसी मेरे स्थान को प्राप्त होंगे । ’ इस तरह मुनि से वह विमान पर मुनिपुत्र चड़ा । ( ४६-५० )

‘उस के पीछे सखीरु वह मुनि, पुत्र को निलोदक दे हाथ जोड़ खड़ा हो मुझ से बोला- ‘ राजन् ! तुमने हमारे पुत्र का मारा, अब हम को भी

त्वयापि च यदज्ञानान्निहतो मे स बालकः ।	
तेन त्वामपि शप्स्येऽहं सुदुःखमतिदारुणम्	५३
पुत्रव्यसनजं दुःखं यदेतन्मम सांप्रतम् ।	
एवं त्वं पुत्रशोकेन राजन्कालं कारिष्यसि	५४
अज्ञानान्तु हतो यस्मात्क्षत्रियेण त्वया मुनिः ।	
तस्मात्त्वां नाविशन्त्याशु ब्रह्महत्या नराधिप	५५
त्वामप्येतादृशो भावः क्षिप्रमेव गमिष्यति ।	
जीवितान्तकरा घोरो दातारमिव दक्षिणाम्	५६
एवं शापं मयि न्यस्य विलप्य करुणं बहु ।	
चितामारोप्य देहं नन्मिथुनं स्वर्गमभ्ययात्	५७
तदेतच्चिन्तयन्नेन स्मृतं पापं मया स्वयम् ।	
तदा बाल्यान्कृतं देवि शब्दवेद्यनुकर्षिणा	५८
तस्यायं कर्मणो देवि विपाकः समुपस्थितः ।	
अपथ्यैः मह संभुक्तं व्याधिरक्षरसे यथा	५९
तस्मान्मामागतं भद्रे तस्योदारस्य तद्वचः ।	
इत्युक्त्वा स रुदन्बला भार्यामाह तु भूमिपः	६०

मार डालो, हमें मरने में कुछ दुःख नहीं है । तुमने अज्ञान से हमारे पुत्र को मार डाला, तथापि हम तुमको शाप देते हैं जिस से तुम्हें अति दारुण कष्ट मिलेगा । राजन् ! जैसे हम को इस समय यह पुत्र का शोक है जिस से हम शीघ्र ही मरेंगे, वैसे ही तुम भी पुत्रके शोकसे प्राण छोड़ दोगे । तुमने अज्ञान से हमारे पुत्र को मारा है, इसी से तुम को ब्रह्महत्या नहीं हुई । पर तुम भी बहुत शीघ्र इसी पुत्र शोक की दशा में मरोगे । ’ ( ५०-५६ )

‘इस तरह से मुझे शाप दे काष्ठ से वहाँ चिता बना कर अग्नि लगा दे दोनों जड़ कर स्वर्ग को प्राप्त हो गये । देवि ! बिना करने करते इस पाप की याद आ गई जो मैंने अज्ञान से शब्दवेद्य यागद्वारा किया है । देवि ! यह उन्नी पाप का फल है जैसे अपथ्य रण खाने में व्याधी होती है । अतः पुत्र उम महान्मा नृपि के वचन आज मुझ को प्राप्त हुए । ’ यह कह रोड़ा कर राजा कर्मवत्या में घोले- ( ५७-६० )

यदहं पुत्रशोकेन संत्यजिष्यामि जीवितम् ।

चक्षुर्भ्यां त्वां न पश्यामि कौसल्ये त्वं हि मां स्पृश ।

यमक्षयमनुप्राप्ता द्रक्ष्यन्ति नहि मानवाः ६१

यदि मां संस्पृशेद्रामः सकृदन्वारभेत वा ।

धनं वा यौवराज्यं वा जीवेयमिति मे मतिः ६२

न तन्मे सदृशं देवि यन्मया राघवे कृतम् ।

सदृशं तत्तु तस्यैव यदनेन कृतं मयि ६३

दुर्वृत्तमपि कः पुत्रं त्यजेद्भुवि विचक्षणः ।

कश्च प्रव्राज्यमानो वा नासूयेत्पितरं सुतः ६४

चक्षुषा त्वां न पश्यामि स्मृतिर्मम विलुप्यते ।

दूता वैवस्वतस्यैते कौसल्ये त्वरयन्ति माम् ६५

अतस्तु किं दुःखतरं यदहं जीवितक्षये ।

न हि पश्यामि धर्मज्ञं रामं सत्यपराक्रमम् ६६

तस्यादर्शनजः शोकः सुतस्यात्रतिक्लमणः ।

उच्छोषयति वै प्राणान्वारि स्तोकमिवातपः ६७

‘अब मैं पुत्र शोक से मरता हूँ, अब मुझ को दीख नहीं पड़ता, तुम मुझे पकड़े रहो ! न दीख पड़ने का कारण यही है कि जो लोग यमपुर के जाने-वाले होते हैं, वे मनुष्य फिर किसी को नहीं देखते । हाय ! यदि राम मुझ को आकर छुए व पाँछे से कुछ सहारा करें । अर्थात् धन ग्रहण करें वा युवराजपद ही को ग्रहण करें, तो अवश्य मैं जी सकता हूँ, पर जो कर्म मैंने राम के साथ किया है वह मेरे योग्य नहीं था । जो कुछ उनके योग्य था सो तो उन्होंने किया । विचारवान् जन दुराचारी पुत्र को भी नहीं त्यागते । ऐसा कोई पुत्र न होगा जिसे पिता घर से निकाल दे, पर वह कुछ न कहे । प्रिये ! अब मैं तुम्हें नहीं देख पाता, स्मरण भी जाता रहा, किसी बात की याद नहीं आती । हे प्रिये ! ये यम के दूत आगे खड़े हैं, मेरे ले चलने में पड़ती करावे हैं । ( ६१-६५ )

‘इस से भी खफिऊ कष्ट और क्लेश होगा कि मरते समय मैं धर्मज राम को नहीं देखूँ ? अतः जिस के सम्मान दूसरा पुत्र धर्म न कर सकेगा,

न ते मनुष्या देवास्ते ये चारुशुभकुण्डलम् ।

मुखं द्रक्ष्यन्ति रामस्य वर्षे पञ्चदशे पुनः ६८

पद्मपत्रेक्षणं सुधु सुदंष्ट्रं चान्दनासिकम् ।

धन्या द्रक्ष्यन्ति रामस्य ताराधिपसंमं मुखम् ६९

सदृशं शारदस्येन्दोः फुल्लस्य कमलस्य च ।

सुगन्धि मम रामस्य धन्या द्रक्ष्यन्ति ये मुखम् ७०

निवृत्तवनवासं तमयोध्यां पुनरागतम् ।

द्रक्ष्यन्ति सुखिनो रामं शुभं मार्गगतं यथा ७१

कौसल्ये चित्तमोहेन हृदयं सीदतेतराम् ।

वेदये न च संयुक्ताब्जशब्दस्पर्शरसानहम् ७२

चित्तनाशाद्विपद्यन्ते सर्वाण्येवेन्द्रियाणि हि ।

क्षीणस्नेहस्य दपि स्य संरक्ता रसमयो यथा ७३

अयमात्मभवः शोको मामनाथमचेतनम् ।

संसाधयति वेगेन यथा कूलं नदीरयः ७४

हा राघव महाबाहो हा ममायासनाशन ।

हा पितृप्रिय मे नाथ हा ममासि गतः सुत ७५

हा कौसल्ये न पदयामि हा सुमित्रे तपस्विनि ।

ऐसे पुत्र के न देखने का प्राक भरे प्राणों को सोखे लेता है । वे लोग मनुष्य नहीं हैं, किन्तु देवता हैं, जो रमणीय कुण्डल धारे, पन्द्रह वर्षके बाद रामका पद्मपत्रेक्षण सुन्दर मुखारविन्द देखेंगे । जो लोग प्रकुल्लि कमल के समान प्रकाशित चन्द्राकार राम का मुख देखेंगे, वे लोग धन्य हैं । ( ६६-७० )

‘वनवासी निवृत्त हो फिर अयोध्या में आये हुए राम का कमलमम सुगन्धित मुख जो देखेंगे, वे लोग धन्य हैं । जो लोग नन्दममरूप राघव को देखेंगे, वे धन्य हैं । हे प्रिय ! अब चित्तमोह मे मत बहुत ध्वराज है, जिन मे शब्द, स्पर्श रसादि जान पड़ते हैं, वे सब चित्त के नाश मे नाश हो जाते हैं । हे कौसल्ये ! यह मेरे हृदय मे उठा शोक अचेतन अनाथ का भाँति मुझको बेग मे गिराये देता है जैसे नदी की धारा उस के किनारों को गिराती है । हा महाबाहो राघव ! हा मित्रांशु प्यारे पुत्र ! हा कौमर्ये !

हा नृशंस ममामित्रे कैकेयि कुलपांसनि ७६  
 इति मातुश्च रामस्य सुमित्रायाश्च संनिधौ ।  
 राजा दशरथः शोचञ्जीवितान्तमुपागमत् ७७ .  
 तथा तु दीनः कथयन्नराधिपः प्रियस्य पुत्रस्य विवासनातुरः ।  
 गतेऽर्धरात्रे भृशदुःखपीडितस्तदा जहौ प्राणमुदारदर्शनः ७८  
 इत्यपि श्री० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे चतुःपठितम्. सर्गः ॥६४॥ [२५७४]  
 पञ्चपठितम्. सर्गः ।

अथ राज्यां व्यतीतायां प्रातरेवापरेऽहनि ।  
 वन्दिनः पर्युपातिष्ठंस्तत्पार्थिवनिवेशनम् १  
 सूताः परमसंस्कारा मागधाश्चोत्तमधुताः ।  
 गायकाः धृतिशीलाश्च निगदन्तः पृथक्पृथक् २  
 राजानं स्तुवतां तेषामुदात्ताभिहिताशिपाम् ।  
 प्रासादाभोगविस्तीर्णः स्तुतिशब्दो ह्यवर्तत ३  
 ततस्तु स्तुवतां तेषां सूतानां पाणिवादकाः ।  
 अपदानान्युदाहृत्य पाणिवादन्ययादयन् ४

तुम दिखीई नहीं पढती । हा तपस्विनी सुमित्रा ! तुम्हे मैं नहीं दीख पाता ।  
 हा नृशंसिन, अमित्रा, कुलपांसिनी कैकेयी ! 'यह कहते कहते दशरथ कैम्बलिया  
 और सुमित्रा के सम्मुख रोने लगे और इसी प्रकार शोचते हुए जीवन की  
 अन्तिम गति को प्राप्त हुए । मध्यरात्री हो जानेपर, प्रिय पुत्रको वन में  
 निकाल देने से आतुर, दीन तथा अति दुःख से पीडित हुए दशरथ पंचत्व  
 को प्राप्त हुए । ( ७१-७८ )

यहाँ चौमठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

जब वह रात्रि बीत गई और प्रातः हुआ, तो सब वन्दीगण राजमन्दिरके  
 द्वार पर पहुँचे । सूत लोग भी अण्डे बछादि धारण किये तथा मंगलवाचक  
 व गायक लोग आ आकर बलग अलग बैठे । वे लोग बड़े ऊँचे स्वर से  
 राजा को आशीर्वाद देने और उन की स्तुति करने लगे । उनका शब्द जिस  
 धरहर पर राजा पड़े थे, वहाँ तक पहुँचा । जब वे लोग स्तुति करने लगे

तेन शब्देन विहगाः प्रतिबुद्धाश्च सखनुः ।	
शाखास्थाः पञ्जरस्थाश्च ये राजकुलगोचराः	५
व्याहृताः पुण्यशब्दाश्च वीणानां चापि निःस्वनाः ।	
आशीर्गेयं च गाथानां पूरयामास वंश्म तत्	६
ततः शुचिसमाचाराः पर्युपस्थानकोविदाः ।	
स्त्रीवर्षवरभूयिष्ठा उपतस्थुर्यथा पुरा	७
हरिचन्दनसंपृक्तमुदकं काञ्चनैर्घटैः ।	
आनिन्युः स्नानशिक्षाया यथाकालं यथाविधि	८
मङ्गलालम्भनीयानि प्राशनीयान्युपस्कृष्टान् ।	
उपानिन्युस्तथा पुण्याः कुमारीबहुलाः स्त्रियः	९
सर्वलक्षणसंपन्नं सर्वं विधिवदचित्तम् ।	
सर्वं सगुणलक्ष्मीवत्तद्भूदाभिहारिकम्	१०
ततः सूर्योदयं यावत्सर्वं परिसमुत्सुकम् ।	
तस्यावनुपसंप्राप्तं किंस्विदित्युपशङ्कितम्	११
अथ याः कोशलेन्द्रस्य शयनं प्रत्यनन्तराः ।	

तो तालियां बजानेवाले लोग ताली बजाकर राजवंश की परंपरा आदि गाने लगे । उस शब्दको सुन राजा के यहांके पाले हुए पक्षी, जो पित्रोंमें रहते थे और वृक्षोंकी डालोंपर रहते थे जाग उठे और बोलियां बोलने लगे । (१-५)

इन सबों के शब्द, वीणा आदि का शब्द, आशीर्वादों की ध्वनि से वह मन्दिर गूँज उठा । तब सदाचारो सेवाकर्म में निपुण लोग तथा स्त्रियां और नपुंसकगण यथापूर्वस्तुति करने लगे । चन्दनमिश्रित जल सोने के घड़ों में भर कर स्नान कराने में चतुर लोग अपने समय पर लाये । मंगलदायक भोजन करने, चखने, देखने आदि को शुभ वस्तुएँ, कुमारिकाएँ और जिनमें अधिक हैं ऐसी स्त्रियाँ लाकर इकट्ठी कीं । जो जो चीजें आईं सब सब लक्षणसम्पन्न विधिवत् पूजित एवं लक्ष्मीदुक्त थीं । ( ५-१० )

जबतक सूर्योदय नहीं हुआ तबतक सब लोग राजा के आने की प्रतीक्षा करते हुए खड़े रहे, जब राजा न आये तो शङ्का करने लगे । वहां भीतर जो

हि. ४. ( अयोध्या. उ. )



ताः स्त्रियस्तु समागम्य भर्तारं प्रत्यबोधयन्	१२
अथाप्युचितवृत्तास्ता विनयेन नयेन च ।	
नह्यस्य क्षयनं स्पृष्ट्वा किञ्चिदप्युपलेभिरे	१३
ताः स्त्रियः स्वप्रशालिताश्चेष्टां संचलनाडिषु ।	
ता वेषथुपरीताश्च राज्ञः प्राणेषु शङ्किताः	१४
प्रतिह्योतस्तृणाग्राणां सदृशं संचकाशिरे	१५
अथ संदेहमानानां स्त्रीणां दृष्ट्वा च पार्थिवम् ।	
यत्तदाशङ्कितं पापं तदा जज्ञे विनिश्चयः	१६
कौसल्या च सुमित्रा च पुत्रशोकपराजिते ।	
प्रसृप्ते न प्रबुध्यते यथाकालसमन्विते	१७
निप्रभा सा विवर्णा च सन्ना शोकेन संनता ।	
न व्यराजत कौसल्या तारेव तिमिरावृता	१८
कौसल्यानन्तरं राज्ञः सुमित्रा तदन्तरम् ।	
न च विभ्राजते देवी रौद्राधुलुलितागता ।	१९
न च दृष्ट्वा तदा स्मृते उभे देव्यां च तं नृपम् ।	

स्त्रियां महाराज से कुछ ही क्षणों पर थी और रात्रि में महाराज की स्वर्ण यात्रा नहीं जानती थी वे आकर जगाने लगीं । उन्होंने सब प्रकार विनम्रतासे तथा बरखादि हटाकर राजा को जगाने की चेष्टा की, पर सफलता न हो सकी । वे स्त्रियां जब सब चेष्टा कर चुकीं और राजा न जागता तो उन को राजा के प्राणों की रक्षा हुई । राजा की ऐसी दशा देख स स्त्रियां सन्देह से बाँपने लगीं । ( ११-१५ )

जो कुछ पाप उनके मन में आया था उस का उन को निश्चय हो गया कौसल्या, सुमित्रा, पुत्रों के शोक से अत्यन्त विह्वल हो रही थीं । अतः ऐसी सोई कि उन्होंने राजा का भरण नहीं जाना, वे तो मोह से प्रभाई हो गई थीं । जैसे बादल की जल्दोरी से छिपे नक्षत्र सोभित नहीं होते वैसे ही राजा के समीप देवी कौसल्या व सुमित्रा सोभित नहीं होती थीं अन्य स्त्रियां भी शोक से अधुराव करती हुई नहीं सोभती थीं, उन स

सुप्तमेवोद्धतप्राणमन्तःपुरमदृश्यत	२०
ततः प्रचक्रुश्चुर्दन्ताः सुखरं ता वराहनाः ।	
करेणव इवारण्ये स्थानप्रच्युतयूथपाः	२१
तान्नामाक्रन्दशब्देन सहस्रोद्धतचेतने ।	
कौसल्या च सुमित्रा च त्यक्तनिद्रे बभूवतुः	२२
कौसल्या च सुमित्रा च दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च पार्थिवम् ।	
हा भर्तृति परिकुश्य पेततुर्धरणीतले	२३
सा कोशलेन्द्रदुहिता चेष्टमाना महीतले ।	
न भ्राजते रजोध्वस्ता तारेव गगनच्युता	२४
नृपे शान्तगुणे जाते कौसल्यां पतितां मुवि ।	
अपदयन्ताः स्त्रियः सर्वा हतां नागबधूमिव	२५
ततः सर्वा नरेन्द्रस्य कैकेयीप्रमुखा स्त्रियः ।	
रुदत्यः शोकसंतप्ता निपेतुर्गतचतनाः	२६
ताभिः स बलयास्तादः क्रोशन्निमिरनुव्रतः ।	
येन स्फीतीकृता भूयस्तद्गृहं समनादयन्	२७

स्त्रियोंने उसी स्थान पर सोती कौमल्या और सुमित्रा को व राजा को देखा । यह जान कि ये तीनों नर गये, अनन्तर मोर से दोन हो सब की सब देखे स्वर में रोने लगीं । ( १६-२० )

इन सनका रोगा मुन एकाएकी चेतन्यशील हो कौमल्या तथा सुमित्रा भी जान उठी और झटपट दोनों राजा को देख तथा उनके अंग टोका “ हा भर्ता ” कह पृथिवी में गिर पड़ी और लोटने लगी, देह भग में धूल लगने से ऐसी मोहित नहीं होनी जैसा जाना में पृथिवी में तारा गिरने पर नहीं शोभता । जब राजा मृतक हो गये जोर कोमल्या भूमि में गिर पड़ी, तो सब स्त्रियां मरी हुई नागबधू के समान कौमल्या को देखने लगीं । ( २१-२५ )

कैकेयी आदि सब रानियां मोर्यतस्त तथा चेतनाहीन हो रोने लगीं, उन सब स्त्रियों के रोने में बड़ा भारी शब्द हुआ, जिस से सब घर गूंज

व्यपनिन्युः सुदुःखार्ता कौसल्यां व्यावहारिकाः	१३
तैलद्रोण्यां तदामात्याः संवक्ष्य जगतीपतिम् ।	
राज्ञः सर्वाण्यथादिष्टाश्चक्रुः कर्माण्यनन्तरम्	१४
न तु संकालनं राज्ञो विना पुत्रेण मन्त्रिणः ।	
सर्वज्ञाः कर्तुमीपुस्ते ततो रक्षन्ति भूमिपम्	१५
तैलद्रोण्यां शायित तं सचिवैस्तु नराधिपम् ।	
हा मृतोऽयमिति ज्ञात्वा स्त्रियस्ता पर्यदेवयन्	१६
वाह्नुच्छिद्रूत्य कृपणा नेत्रप्रस्त्रवर्णैर्मुखैः ।	
रुदत्यः शोकसंतप्ताः कृपणं पर्यदेवयन्	१७
हा महाराज रामेण संततं प्रियवादिना ।	
विहीनाः सन्यसंधेन किमर्थं विजहासि नः	१८
कैकेय्या दुष्टभावाया राघवेण विवर्जिताः ।	
कथं सपत्न्या वत्स्यामः समीपे विधवा वयम्	१९
स हि नाथः स चारुणाकं तव न प्रभुगतनवान् ।	
वनं रामो गतः श्रीमान्विहाय नृपतिश्चिरम्	२०
त्वया तेन च वीरेण विना व्यसनमोहिताः ।	

एवं विलाप करती कौसल्या को सब दामी आदिकों ने राजा की लाश से अलग किया । तब मंत्रियो ने एक तेल भरे द्रोण में राजा का शरीर रख दिया । उस समय राजा का कोई भी पुत्र वहां न था, बहुदुर्भाग्यालों ने विना पुत्र दाहादिक्रिया न की, अतएव तेल की द्रोण में रखकर राजा के शरीर की रक्षा करते रहे । जब अमात्यों ने राजा के शरीर को तेल में रख दिया तब स्त्रियां फिर रोदन करने लगीं । ( १३-१६ )

उस दुःखके समय वे नेत्रोंसे आंसुओं की धारा बहाती शोकसे संतप्त हो विलाप करतीं व कहती थीं, कि हा राजन् ! राम से रहित हम को क्यों त्यागते हो ? हम राम के और आपके विना इय दुष्टा कैकेयीके पास विधवा हो कैसे रहेंगी । जो राम सबके सब कुट्ट करने वाले स्वामी थे, वे राज्यश्री को छोड़ वन चले गए । राजन् ! आप व राम विना कैकेयी से सन्तापित

कथं वयं निवत्स्यामः कैकेय्या च विदूषिताः २१

यया च राजा रामश्च लक्ष्मणश्च महाबलः ।

सीतया सह संन्यक्ताः सा कमन्यं न हास्यति २२

ता वाप्सेण च संवीताः शोकेन विपुलेन च ।

व्याचेष्टन्त निगनन्दा राघवस्य वरस्त्रियः २३

निशा नक्षत्रर्हन्निव स्त्रीव भर्तृविवर्जिता ।

पुरी नागजतायोध्या हीना राणा महान्मना २४

वाप्पपर्याकुलजना हाहाभूतकुलाङ्गना ।

• शून्यचन्वग्देमान्ता न यश्चाज यथापुग्म् २५

गते तु शोकाग्निदिव्यं नगाधिपे महींनिलस्थान्मु नृपाङ्गनाम् च ।

निवृत्तचारः सहसा गतो रविः प्रवृत्तचारा रजनीं द्युपस्थिता २६

कृते तु पुत्राद्वहनं मर्हापतर्नाराचयन्त मुहुरः समागताः ।

इतीथ तस्मिञ्छयने न्यवेशयान्वचिन्त्य राजानमचिन्त्यदर्शनम् २७

गतप्रभा द्यौरिव भास्करं विता व्यपेततश्चरयणेन शर्मणी ।

कैसे रह सकेंगे ? कैकेयी ने राजा, राम, लक्ष्मण और सीता को त्याग दिया, अब वह और किस को न छोड़ेगी ? वे स्त्रियां बड़े शोक से दुःखित आमुओं की धार छोड़ती हुई निश्चेष्ट हो गईं । दशम दिन अयोध्या शोभा नहीं देती थी । जहां देखो आसू बहाने हुए मनुष्य गरडे थे, स्त्रियां हाहाकार मचा रही थीं। (१७-२५) पुत्र वियोगजन्य शोकके मारे नरेशके स्वर्ग विधानेपर और राजमहिषाओंके भूमिपर ही पड़ा रहनेपर यकायक अपना धूमना समाप्त कर मूर्ख आँगों से बोझिल हो गया तथा रात का समय उपस्थित हो अंधेरा फैलने लगा । वहाँपर इकट्ठे हुए मित्रदल को यह ठीक नहीं लँचा कि बिना पुत्र की उपस्थिति के नरेश का दाह संस्कार निभाया जाय, इसलिए उन्होंने अचिन्तनीय ज्ञानशक्तिवाले नरेश को तेलसे भरी हुई कटाहीरूपी शय्यापर मुला दिया । इस भाँति उस महान् नरपाल से बिजुड़नेपर वह नगरी ऐसी दिखाई देने लगी मानों नक्षत्ररहित रात्रि या सूर्यरहित आकाश निस्तेज प्रतीत हो, और उस की सड़कों पर तथा चौराहोंपर उन लोगोंकी भीड़

पुरी बभासे रहिता महात्मना कण्ठावकण्ठाकुलमार्गचत्वरा २८  
नराश्च नार्यश्च समेत्य संघशो विगर्हमाणा भरतस्य मातरम् ।

तदा नगर्यां नरदेवसंक्षये बभूवुरार्ता न च शर्म लेभिरे २९

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः ॥६६॥

सप्तपण्डिततः सर्गः ।

[ २६३३ ]

आक्रान्दिता निरानन्दा सास्त्रकण्ठजनाधिला ।

अयोध्यायामवतता सा व्यतीताय शर्वरी १

व्यतीतायां तु शर्वर्यामादित्यस्योदये ततः ।

समेत्य राजकर्तारः सभामीयुर्द्विजातयः २

मार्कण्डेयोऽथ मौद्गल्यो वामदेवश्च कश्यपः ।

कात्यायनो गौतमश्च जाबालिश्च महायशः ३

एते द्विजाः सहामात्यैः पृथग्याचमुदीरयन् ।

वासिष्ठमेवाभिमुखाः श्रेष्ठं राजपुरोहितम् ४

अर्ताता शर्वरी दुःखं या नो वर्पशतोपमा ।

अस्मिन्पञ्चत्वमापन्ने पुत्रशोकेन पार्थिवे ५

होने लगी जिन के कंठ आँसुओं की झड़ी के कारण रूँध से गण थे । उस हालत में नगरी के राजमहल में नरनारियोंके झुंडके झुंड आकर इकट्ठे हो गए और दुःख भरे दिल से कैकेयी को उलहने देते हुए वे लंग सुख के चजाय दुःख के बोझ से दब गये । ( २७-२९ )

यहाँ सैसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

रोदनयुक्त, निरानन्द अयोध्यामें रात येनकेन प्रकारसे बीती । सूर्य उदय होने पर राजकाज करनेवाले द्विजातिगण राजमहलमें आए । मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, कश्यप, कात्यायन व जाबालि ये ब्राह्मण अपने अपने अनुचरों सहित आ राजपुरोहित वासिष्ठ के आगे बैठ अपना अभिप्राय प्रकट करने लगे । ( १-४ )

महाराज तो म्वर्ग में स्थित हुए और श्रीराम वन में जा चले, लक्ष्मण भी उन्हीं के साथ चले गए और भरत शत्रुघ्न अपनी ननसार में विराज-

स्वर्गस्थश्च महाराजो रामश्चारण्यमाश्रितः ।	
लक्ष्मणश्चापि तेजस्वी रामेणैव गतः सह	६
उभौ भरतशत्रुघ्नौ केकयेषु परंतपौ ।	
पुरे राजगृहे रम्ये मातामहनिवेशने	७
इक्ष्वाकूणामिहाद्यैव कश्चिद्राजा विधीयताम् ।	
अराजकं हि नो राष्ट्रं विनाशं समवाप्नुयात्	८
नाराजके जनपदे विद्युन्माली महास्वनः ।	
अभिवर्षति पर्जन्यो महीं दिव्येन वारिणा	९
नाराजके जनपदे बीजमुष्टिः प्रकीर्यते ।	
नाराजके पितुः पुत्रो भार्या वा वर्तते वशे	१०
अराजके धनं नास्ति नास्ति भार्याप्यराजके ।	
इदमत्याहितं चान्यत्कुतः सत्यमराजके	११
नाराजक जनपदे कारयन्ति सभां नराः ।	
उद्यानानि च रम्याणि हृष्टाः पुण्यगृहाणि च	१२
नाराजके जनपदे यज्ञशीला द्विजातयः ।	
सत्राण्यन्वासते दान्ता ब्राह्मणाः संशितव्रताः	१३
नाराजके जनपदे महायज्ञेषु यज्यन्तः ।	

मान है । इसलिये इक्ष्वाकुवंशियों में से किसी को आज ही राजा बनाना चाहिये, क्योंकि विना राजा के यह राज्य नष्ट हो जायगा । अराजक देश में गर्जते मेघ भूमि पर जल की वर्षा नहीं करते । अराजक देश में किसान लोग बीज की मुट्ठी बोने के लिये नहीं खोलते, न पुत्र पिता की आज्ञा मानता, न स्त्री पति के वश में रहती । ( ५-१० )

अराजक देश में द्रव्य नहीं रहता फिर अराजक देश में सत्यादि धर्म कहां से रहेंगे ? अराजक देश में धर्मादि के निर्णय के लिये लोग सभा नहीं करते और न प्रसन्न हो फूलवाड़ी घाटकादि लगाते । अराजक देश में यज्ञ करनेवाले यज्ञ नहीं करते, न त्रितेन्द्रिय ब्राह्मण यज्ञ कराते हैं । राजरहित देश में ब्राह्मण लोग बड़े बड़े यज्ञ नहीं करते और शास्त्रविहित दक्षिणा

ब्राह्मणा धसुसंपूर्णा विसृजन्त्याप्तदक्षिणाः	१४
नाराजके जनपदे ग्रहघ्ननटनर्तकाः ।	
उत्सवाश्च समाजाश्च वर्धन्ते राष्ट्रवर्धनाः	१५
नाराजके जनपदे सिद्धार्था व्यवहारिणः ।	
कथाभिरभिरज्यन्ते कथाशीलाः कथाप्रियैः	१६
नाराजके जनपदे तृद्यानानि समागताः ।	
सायाह्ने क्रीडितुं यान्ति कुमार्यो हेमभूषिताः	१७
नाराजके जनपदे धनवन्तः सुरक्षिताः ।	
शेरते विवृतद्वाराः रुपिगोरक्षजीविनः	१८
नाराजके जनपदे वाहनैः शीघ्रयाहिभिः ।	
नरा निर्यान्त्यरण्यानि नारीभिः सह कामिनः	१९
नाराजके जनपदे यद्धघ्ण्टा विपाणिनः ।	
अटन्ति राजमार्गेषु कुक्षराः पण्डित्हायनाः	२०
नाराजके जनपदे शरान्संततमस्यताम् ।	
श्रूयते तलनिर्घोष इष्वस्त्राणामुपासने	२१
नाराजके जनपदे वणिजो दूरगामिनः ।	

भी नहीं देते । राजा से शून्य देश में नट व नृत्य आदि करनेवाले लोग और अनेक विषयों के समाज नहीं होते । ( ११-१५ )

अराजक देश में देश में उद्यमी लोग कई व्यवहार नहीं करते, न ब्राह्मणों को बुला कथा ही सुनते । राजारहित देश में कुमारी कन्यायें खेलने के लिये वाटिका आदि में नहीं जातीं । अराजक देश में धनवान् लोगों की रक्षा नहीं होती, न खेती करनेवाले व पशुपालकगण निर्भय सोने पाते हैं । अराजक देश में घोड़े रथ आदि यानों पर सवार हो कामी जन स्त्रियों के साथ विहार करने को वनों में नहीं जाते । राजशून्य देश में साठ साठ वर्ष की उम्र के हाथी सड़कों पर नहीं घूमते । ( १६-२० )

अराजक देश में बाणविद्या सीखने वाले वीरों का ताल ठोकना नहीं सुनाई देता । अराजक देश में वणिजजन उद्यम करने के लिये चोरों के भय

गच्छन्ति क्षेममध्वानं बहुपण्यसमाचिताः	२२
नाराजके जनपदे चरत्येकचरो वशी ।	
भावयन्नात्मनान्मानं यत्र सायंगृहो मुनिः	२३
नाराजके जनपदे योगक्षेमः प्रवर्तते ।	
न चाप्यराजके सेना शत्रुन्दिपहते युधि	२४
नाराजके जनपदे हृष्टः परमवाजिभिः ।	
नराः संयान्ति सहसा रथैश्च प्रतिमण्डिताः	२५
नाराजके जनपदे नराः शास्त्रविशारदाः ।	
संवदन्ताऽपतिष्ठन्ते वनेषूपवनेषु वा	२६
नाराजके जनपदे माल्यमोदकदक्षिणाः ।	
देवताभ्यर्चनार्थाय कल्प्यन्ते नित्यैर्जनैः	२७
नाराजके जनपदे चन्दनागुरुलपिताः ।	
राजपुत्रा विराजन्ते वसन्त इव शालिनः	२८
यथा ह्यनुदग्ना नद्यो यथा वाप्यलृणं वनम् ।	
अगोपाला यथा गावस्तथा राष्ट्रमराजकम् ।	२९
ध्वजो रथस्य प्रज्ञानं धूमो ज्ञानं विभावसोः ।	

से दूर दूर तक नहीं जा सकते । अराजक देश में मुनिगण परमेश्वर का भजन करते दिन भर घूम सायं किसी के द्वार पर नहीं टिकते । अराजक देश में किसी का योगक्षेम नहीं रहता । और सेना शत्रु को नहीं सहन कर सकती । अराजक जनपद में घोड़ों और रथों पर मगार होकर लोग नहीं चलते । ( २१-२५ )

अराजक जनपद में जन परस्पर संवाद करते उपजनादिकों में भयरहित हो नहीं बसते । अराजक जनपद में देवताओं के पूजनार्थ दक्षिणा आदि कोई एकत्र नहीं करते । अराजक देश में सुगंधित वस्तु लगा राजकुमारगण विराजमान नहीं होते । जैसे बिना जल की नदी और बिना गोपाल की गाय होती है ऐसे ही बिना राजा का जनपद होता है । रथ का ज्ञान ध्वजा से होता है, हमारे ध्वजरूप राजा थे सो स्वर्गवासी हो गये । ( २६-३० )



तेषां यो नो ध्वजो राजा स देवत्वमितो गतः	३०
नाराजके जनपदे स्वकं भवति कस्यचित् ।	
मत्स्या इव जना नित्यं भक्षयन्ति परस्परम्	३१
ये हि संभिन्नमर्यादा नास्तिकाश्छिन्नसंशयाः ।	
तेऽपि भावाय कल्पन्ते राजदण्डनिपीडिताः	३२
यथा दृष्टिः शरीरस्य नित्यमेव प्रवर्तते ।	
तथा नरेन्द्रो राष्ट्रस्य प्रभवः सत्यधर्मयोः	३३
राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवतां कुलम् ।	
राजा माता पिता चैव राजा हितकरो नृणाम्	३४
यमो वैश्रवणः शक्रो वरुणश्च महाबलः ।	
विशिष्यन्ते नरेन्द्रेण वृत्तेन महता ततः	३५
अहो तम इवेदं स्यान्न प्रज्ञायेत किञ्चन ।	
राजा चेन्न भवेद्भोके विभजन्साध्वसाधुनी	३६
जीवत्यपि महाराजे तवैव वचनं वयम् ।	
नातिक्रमामहे सर्वे चेलां प्राप्येव सागरः	३७

स नः समीक्ष्य द्विजवर्यं वृत्तं नृपं विना राष्ट्रमरण्यभूतम् ।

अराजक देश में कोई किसी का नहीं होता, लोग एक दूसरे को मार खा जाते हैं। नामिक लोग भी विना राजदण्ड के भयरहित हो अपने मन माने मार्ग फैला देते हैं। दृष्टि जैसे शरीर के लिये तैसे ही राजा राज्य के धर्म के सत्य प्रकट कराने में समर्थ होता है। मनुष्यों का सत्य व धर्म राजा ही तथा सब का माता पिता राजा ही है, सब का हित करनेवाला भी राजा ही है, अतः राजा सर्वश्रेष्ठ होता है। जो लोक में साधु-असाधुकों की राजा शिक्षा न करे तो प्रजाओं में अज्ञान छा जाये। यम, कुबेर, इन्द्र, वरुण इन से भी आचरण से बड़ा रहता है। हम लोग महाराज के जीते हुए भी आपके वचन अतिव्रमण नहीं करते थे जैसे समुद्र तट को छोड़ आगे नहीं बढ़ता। हे द्विजश्रेष्ठ वसिष्ठ मुने ! आप हमारा वचन सुनिये तथा आज ही इक्ष्वाकु-कुल का राजपुत्र या अन्य किसी को अभियेक कीजिये।

कुमारमिक्ष्वाकुसुतं तथान्यं त्वमेव राजानमिहामिषेचय ३८

इत्यपि श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिभाष्येऽयोध्याकाण्डे सप्तपष्ठितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टपष्ठितमः सर्गः ।

[ २६७१ ]

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वसिष्ठः प्रत्युवाच ह ।	
मिश्रामात्यजनान्सर्वान्ब्राह्मणांस्तानिदं वचः	१
यदसौ मातुलकुले दत्तराज्यः परं सुखी ।	
भरतो वसति भ्रात्रा शत्रुघ्नेन मुदान्वितः	२
तच्छीघ्रं जयना दूता गच्छन्तु त्वरितं हयैः ।	
आनेतुं भ्रातरौ चौरौ किं समीक्षामहे वयम्	३
गच्छन्त्विति ततः सर्वे वसिष्ठं वाक्यमब्रवीन् ।	
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत्	४
एहि सिद्धार्थं विजय जयन्ताशोकनन्दन ।	
श्रूयतामिति कर्तव्यं सर्वानय ब्रवीमि वः	५
पुरं राजगृहं गत्वा शीघ्रं शीघ्रजवर्हयैः ।	
त्यक्तशोर्किरिदं वाक्यः शासनाद्भरतो मम	६
पुरांहितस्त्वां कुशलं प्राह सर्वे च मन्त्रिणः ।	
त्वरमाणश्च निर्याहि कृत्यमात्ययिकं त्वया	७

क्योंकि राजाके बिना यह राज्य अरण्यवास हुआ है । ( ३१-३८ )

यहाँ सँसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

उन लोगों के ऐसे वचन सुन वसिष्ठ बोले कि, जो भरत व शत्रुघ्न मुखपूर्वक अपने मामाके यहाँ बसते हैं । उन दोनों भाइयों के लाने के लिये शीघ्रगामी बन्धों पर चढ़ दूत जाएं । सब मुनियोंने कहा बहुत अच्छा । दूत जायें, यह सुन वसिष्ठ बोले कि, हे सिद्धार्थ, विजय, जयन्त, व अशोक-नन्दन ! तुम मुनो ! वेगवान घोड़ों पर सवार हो केकय देशके राजाके यहाँ जाओ, वहाँ पहुँच कर सब तरह के शेर को छोड़ भरत से कहना, कि तुम्हारे कुलपुरोहित वसिष्ठ तथा सब ब्राम्हणों ने आप की कुशल पूछी और बुलाया है कि शीघ्र चलो । तुम राम का वनवास और राजा का मरण उन

मा चासौ प्रोषितं रामं मा चासौ पितरं मृतम् ।	
भवन्तः शंसिपुर्गत्वा राघवाणामितः क्षयम्	८
कौशेयानि च वस्त्राणि भूषणानि वराणि च ।	
क्षिप्रमादाय राक्षश्च भरतस्य च गच्छत	९
दत्तपथ्यशता दूता जग्मुः खं खं निवेशनम् ।	
केकयास्ते गमिष्यन्तो हयानारुह्य संमतान्	१०
ततः प्रास्थानिकं कृत्वा कार्यशेषमनन्तरम् ।	
वसिष्ठेनाभ्यनुज्ञाता दूताः संत्वरितं ययुः	११
न्यन्ते नापरतालस्य प्रलम्बस्योत्तरं प्रति ।	
निषेवमाणास्ते जग्मुर्नदीं मध्येन मालिनीम्	१२
ते हास्तिनपुरे गङ्गां तीर्त्वा प्रत्यङ्मुखं ययुः ।	
पश्चालदेशमासाद्य मध्येन कुरुजाङ्गलम्	१३
सरांसि च सुषुप्तानि नदीश्च विमलोदकाः ।	
निरीक्षमाणा जग्मुस्ते दूताः कार्यवशाद् द्रुतम्	१४
ते प्रत्यङ्गोदकां दिव्यां नानाविहगसेविताम् ।	
उपातिजग्मुर्वगेन शरदण्डां जलाकुलाम्	१५
निकूलवृक्षमाप्ताद्य दिव्यं सत्योपयाचनम् ।	

मे न करना । अच्छे अच्छे भूषण वस्त्र भरत के लिये लेते जाना, अथ देर न करो जल्दी जाओ । ( १-९ )

इतना कह रामने के लिये भोजन पा धे सब दूत अपने अपने घरको गये, वहां से घोड़ों पर चढ़ केन्य देश को चल दिये । मार्ग के लिये यथायोग्य सामान लेकर वशिष्ठ की आज्ञानुसार दूत लोग जन्दीये चले अपरताल देशके वक्षिग और प्रलम्ब देश के उत्तर अर्थात् इन्हीं देशों की मन्थवर्ती मालिनी नदी के किनारे थे दूत पश्चिम दिशा को चले । हस्तिनापुर के पास गङ्गा को पारकर-पांचाल देश तथा कुरुजांगल देश के बीच में पहुंचे । मार्ग में तालाब व नदियां देखीं, पर दूतों को सीधे जाने का प्रयोजन था, अतः चटे ही चले गये । वे शरदण्ड नामक नदी के किनारे पहुंचे । ( १०-१५ )

अभिगम्याभिचार्यं तं कुलिङ्गां प्राविशन्पुरीम् १६  
 अभिकालं ततः प्राप्य तेजाऽभिभवनाच्चयुताः ।  
 पितृपैतामहीं पुण्यां तेखरिश्रुमतीं नदीम् १७  
 अयेक्ष्याञ्जलिपानांश्च द्राह्मणान्वेदपारगान् ।  
 ययुर्मध्येन वाल्हीकान्सुदामानं च पर्वतम् १८  
 विष्णोः पदं प्रेक्षमाणा विपाशां चापि शाल्मलीम्  
 नदीर्वापीतटाकानि पल्वलानि सरांसि च १९  
 पश्यन्तो विविधांश्चापि सिंहान्व्याघ्रान्मृगान्द्विपान् ।  
 ययुः पथाति महता शासनं भर्तुरीप्सवः २०  
 ते श्रान्तवाहता दूता विकृष्टेन सता पथा ।  
 गिरिव्रजं पुरवरं शीघ्रमासेदुरक्षसा २१

भर्तुः प्रियार्थं कुलरक्षणार्थं भर्तुश्च वंशस्य परिग्रहार्थम् ।  
 अहेतुनानास्वरया स्म दूता राज्यां तु ते तत्पुरमेव याताः २२  
 इत्यार्षे श्रीमशमायणे नाम्नीरीय आम्निव्येऽयोध्याप्रादेश्यष्टितमः सर्गः ॥६८॥  
 एकोनसहस्रितमः सर्गः । [२६९३]

यामेव रात्रिं ते दूता प्रविशन्ति स्म तां पुरीम् ।

उम नदी के तीर पर एक पेड़ था, जिस से दर मिलता था, उस के नीचे जा प्रणाम किया, तथा फिर आगे बढ़े, आगे बढ़ने पर कुलिङ्ग नगरी मिली, और आगे बढ़ तेजाभिभवन नामक ग्राम मिला, वहाँ से दड़ अभि-  
 काल नाम नगर में पहुँचे, तदनन्तर डधुमती नदी उतरे । उस के पीछे वाल्हीक देश में पहुँचे, बीच में सुदामानाम पर्वत मिला । उस के पीछे विपाशा नदी मिली, फिर शाल्मली नदी और बहुत सी नदी, वापी आदि देखते चले गए । चलते चलते उन के अथ धरु नग, सो गिरिव्रज नगर में जा कुछ देर आराम किया फिर जल्दी चल दिये । अपने स्वागी के भ्रिन के लिये तथा रघुछल की रक्षा के लिये अनादरसहित रात्र दूत रात को नगर में पहुँचे । ( १६-२० )

यहां वा सर्ग समाप्त हुआ ।

भरतेनापि तां रात्रिं स्वप्नो दृष्टोऽयमप्रियः	१
व्युष्टमेव तु तां रात्रिं दृष्ट्वा तं स्वप्नमप्रियम् ।	
पुत्रो राजाधिराजस्य सुभृशं पर्यतप्यत	२
तप्यमानं तमाज्ञाय वयस्याः प्रियवादिनः ।	
आयासं विनयिष्यन्तः सभायां चक्रिरे कथाः	३
वादयन्ति तदा शान्तिं लासयन्त्यपि चापरे ।	
नाटकान्यपरे स्माहुर्द्वास्यानि विविधानि च	४
स तैर्महात्मा भरतः सखिभिः प्रियबोधिभिः ।	
गोप्त्रीहास्यानि कुर्वद्भिर्न प्राहृष्यत राघवः	५
तमग्रवीत्प्रियसखो भरतं सखिभिर्दृतम् ।	
सुहृद्भिः पर्युपासीनः किं सखे नानुमोदसे	६
एवं वृथाणं सुहृदं भरतः प्रत्युवाच ह ।	
शृणु त्वं यन्निमित्तं मे दैन्यमेतदुपागतम्	७
स्वप्ने पितरमद्राश्रं मलिनं मुक्तमूर्धजम् ।	
पतन्तमद्रिशिखरात्कलुषे गोमये हृदे	८
प्लवमानश्च मे दृष्टः स तस्मिन्गोमये हृदे ।	

जिस रात को वे दूत उस नगरी में पहुँचे उसी रात को भरत ने बड़ा भयावह स्वप्न देखा । जब प्रातः हुआ तो भरत ने बड़ा परिताप किया । उन को दुःखित देख, उन के मित्रगण प्रिय वचन कह खेद मिटाने को रोचक कथाएँ कहने लगे । कोई विपाद मिटाने के लिये बाजा बजाने लगे, कोई शांति पढ़ने लगे, कोई नाचने लगे, कोई हास्य करने लगे । भरत का बोध सब मित्रोंने अपनी अपनी युक्ति से किया और उससे सारी सभा हंसी, पर भरत प्रसन्न न हुए । ( १-५ )

उन में भरत का एक अनि प्रिय मित्र था, वह भरतसे बोला, हे सखे ! हम लोगों ने बड़ी चेष्टा की पर आप प्रसन्न क्यों नहीं होते ? भरत उस से बोले कि, हे मित्र ! जिस कारण मुझ को यह विपाद हुआ उसे सुनो । आज रात को स्वप्न में मलिन वस्त्र धार, बाल खुले पिता को मैले गोबर के कुण्ड

पियन्नञ्जलिना तैलं हसन्निव मुहुर्मुहुः	९
ततस्तिलोदनं भुक्त्वा पुनः पुनरधः शिराः ।	
तैलेनाभ्यक्तसर्वाङ्गस्तैलमवान्यगाहत	१०
स्वप्नेऽपि सागरं शुष्कं चन्द्रं च पतितं भुवि ।	
उपरुद्धां च जगतीं तमसेव समावृताम्	११
औपद्याह्यस्य नागस्य धियाणं शकलीकृतम् ।	
सहस्रा चापि संशान्ता ज्वलिता जातवेदसः	१२
अवदीर्णा च पृथिवीं शुष्कांश्च विविधान्द्रुमान् ।	
अहं पश्यामि विध्वस्तान्सधूमांश्चैव पर्वतान्	१३
पीठे कार्णायसे चैव निपण्णं कृष्णवाससम् ।	
प्रहरन्ति स्म राजानं प्रमदाः कृष्णपिङ्गलाः	१४
त्वरमाणश्च धर्मात्मा रक्तमाल्यानुलेपनः ।	
रथेन स्वरयुक्तेन प्रयातां दक्षिणामुखः	१५
प्रहसन्तीव राजानं प्रमदा रक्तघासिनी ।	
प्रकर्षन्ती मया दृष्टा राक्षसी विकृतानना	१६
एवमेतन्मया दृष्टमिमां रात्रिं भयावहाम् ।	
अहं रामोऽथवा राजा लक्ष्मणो वा मरिष्यति	१७

में गिरते देखा । उसी गोबर के कुण्ड में तैरते व तेल पीते, तिलयुक्त भात भोजन करते मैंने सर्वांग में तैल लगाये नेल ही में डुबकी मारते पिता को देखा । मैंने स्वप्न में देखा कि सागर सूख गया है, चन्द्र पृथिवी में गिर पड़ा है, संसार अन्धकार से छा गया है । ( ६-११ )

सवारी वाले हाथी के दांत टूट गये हैं, प्रज्जालित अग्नि शान्त हो गया है, नाना प्रकार के पेड़ सूख गये हैं, पत्ते टूट फूट गये हैं, लोहे की चौकी पर बड़े ऊगवस्त्रधारी मेरे पिता को काले पांटे वस्त्र पहनी हुई खिया मार रही हैं । और पिता लाल वस्त्र धारे गद्दों के स्थपर घड़े दक्षिणादिना को चले जा रहे हैं । एक राक्षसी विकरालमुग क्रिये राजानो सींचे लिये जाती है । इन तरह यह भयावह स्वप्न मैंने देखा । इन का पोरगाम यह होगा

हि. ५ ( अयोध्या उ. )

नरो यानेन यः स्वप्ने खरयुक्तेन याति हि ।

अचिरात्तस्य धृन्नाग्रं चितायां संप्रदृश्यते १८

एतन्निमित्तं दीनोऽहं न यत्रः प्रतिपूजये ।

शुष्यतीव च मे कण्ठो न स्वस्थमिव मे मनः १९

न पश्यामि भयस्थानं भयं चैवोपधारये ।

भ्रष्टश्च स्वरयोगो मे छाया चापगता मम ।

जुगुप्स इव चात्मानं न च पश्यामि कारणम् २०

इमां च दुःस्वप्नगतिं निशम्य हि त्वनेकरूपामधितर्कितां पुरा ।

भयं महत्तद्भूदयाज्ञ याति मे विचिन्त्य राजानमचिन्त्यदर्शनम् २१

इत्यार्षे श्री०वा०आदिनाव्येऽव्योधावापठ एकोनसप्ततितमः सर्गः॥६९॥ [२७१४]

सप्ततितमः सर्गः ।

भरते वृचति स्वप्नं दूतास्ते क्लान्तबाहनाः ।

प्रदिश्यासह्यपरिखं रम्यं राजगृहं पुरम् १

समागम्य च राक्षा ते राजपुत्रेण चार्चिताः ।

गह्वः पादां गृहित्वा च तमूचुर्भरतं यत्रः २

कि मैं, नरेश, राम लक्ष्मण में से कोई मृत्यु को प्राप्त होगा । (१२-१७)

जो मनुष्य स्वप्नमें गड़हे जुते रथपर चढ़कर देखा चात्री बना जाता है, बहुत शीघ्र वह पञ्चव को प्राप्त होता है । इसी से मैं दुःखी हूँ, मेरा गला सूखा जाता है और मेरा मन स्थिर नहीं है । मैं भय का कारण नहीं देखता, पर भय पाता हूँ, जिस से मेरा स्वर भी कुछ विचलित हो गया है । केवल अपनी निन्दा ही करता हूँ पर भय की निवृत्ति नहीं छेड़ता । स्वप्न की ऐसी राति सुनी तो है, किन्तु कभी उस पर विचार नहीं किया । इस दुःस्वप्न से हृदय में महाराज के दिव्य ने दडा भय उत्पन्न हुआ है । ( १८-२१ )

यहाँ उन्हत्तरवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

भरत स्वप्न की चार फल ही रहे थे कि दोहों पर सवार दत्त राजगृह नामक उस पुरमें आ पहुँचे । उन्होंने राजासे मिल राजपुत्रद्वारा लम्बायित हो भरत से कहा— जगिष्ठ तथा जमादगन्गे कुजल पड़ी हैं.

पुरोहितस्त्वां कुशलं प्राह सर्वे च मन्त्रिणः ।	
त्वरमाणश्च निर्याहि शृत्यमात्ययिकं त्वया	३
इमानि च महार्हाणि वस्त्राण्याभरणानि च ।	
प्रतिगृह्य विशालाक्ष मातुलस्य च दापय	४
अत्र विंशतिकोऽप्यस्तु नृपतेर्मातुलस्य ते ।	
दशकोऽप्यस्तु संपूर्णास्तथैव च नृपात्मज	५
प्रतिगृह्य तु तन्सर्वं स्वनुरक्तः सुहृजने ।	
दूतानुवाच भरतः कामैः संप्रतिपूज्य तान्	६
कश्चित्स कुशली राजा पिता दशरथो मम ।	
कश्चिदारोग्यता रामे लक्ष्मणे च महात्मनि	७
आर्या च धर्मनिरता धर्मज्ञा धर्मवादिनी ।	
अरोगा चापि कौसल्या माता रामस्य धीमतः	८
कश्चित्सुमित्रा धर्मज्ञा जननी लक्ष्मणस्य या ।	
शत्रुघ्नस्य च वीरस्य अरोगा चापि मध्यमा	९
आत्मकामा सदा चण्डी क्रोधना प्राज्ञमानिनी ।	
अरोगा चापि मे माता कैकेयी किमुवाच ह ॥	१०

कारको शीघ्र बुलाया है। जो देर करोगे तो कार्य भ्रष्ट हो जायगा। हे विशालनयन ! ये बहुमूल्य वस्त्रभूषण लेकर अपने मामा को दो। इन में बीस करोड़ तुम्हारे नाना के लिये हैं और दश करोड़ तुम्हारे मामा के लिए हैं। सब वस्त्रभूषणादि सुहृदों को दे दूतों को सत्कारित कर भरत उन से बोले। ( १-६ )

पिता दशरथ कुशलपूर्वक है ? राम लक्ष्मण अरोग्य हैं। धर्मवादिनी

१ दूत याने सेवा करनेवाले सेवक या नौकर ही तो हैं। शत्रुः यह संभव ही नहीं कि भरत जैसा एक राजकुमार अपनी जन्मदात्री माता के बारे में इस ढंग से पूछताउ करने लगे। यह अच्छा नहीं प्रतीत होता है। मूलग्रन्थ में शायद श्लोक का उत्तरार्थ ही मिलता हो, लेकिन दिग्गी ने अपनी ओर से पूर्णार्थ स्वरूप श्लोक की पूर्णता की होगी।



एवमुक्तास्तु ते दूता भरतेन महात्मना ।  
 ऊचुः संप्रश्रितं वाक्यमिदं तं भरतं तदा ११  
 कुशलास्ते नरव्याघ्र येषां कुशलमिच्छसि ।  
 श्रीश्च त्वां वृणुते पद्मा युज्यतां चापि ते रथः १२  
 भरतश्चापि तान्दूतानेवमुक्तोऽभ्यभाषत ।  
 आपृच्छेऽहं महाराजं दूताः संत्वरयन्ति माम् १३  
 एवमुक्त्वा तु तान्दूतान्भरतः पार्थिवात्मजः ।  
 दूतैः संचोदितो वाक्यं मातामहमुवाच ह १४  
 राजन्पितुर्गमिष्यामि सकाशं दूतचोदितः ।  
 पुनरप्यहमेष्यामि यदा मे त्वं स्मरिष्यसि १५  
 भरतेनैव मुक्तस्तु नृपो मातामहस्तदा ।  
 तमुवाच शुभं वाक्यं शिरस्याघ्राय राघवम् १६  
 गच्छ तातानुजाने त्वां कैकेयी सुप्रजास्त्यया ।  
 मातरं कुशलं ब्रूयाः पितरं च परंतप १७  
 पुरोहितं च कुशलं ये चान्ये द्विजसत्तमाः ।

श्रीराम की माता कौसल्या आरोग्य है ? लक्ष्मण व धीर शत्रुघ्न की माता सुमित्रा आरोग्य है ? आत्मवामा, सदाचण्डी तथा अपने को पण्डित मानने-वाली मेरी माता कैकेयी तो निरोग है ? उन्होंने कुछ कहा है ? (७-१०)

महात्मा भरत के ऐसा कहने पर वे दूत बड़ी नम्रता के साथ बोले कि हे नरश्रेष्ठ ! जिनकी कुशल तुम चाहते हो, वे सब कुशल से हैं । आप शीघ्र रथ तयार कराइये और चलिए । भरत ने दूतों से कहा कि अपने नाना से पूछ लें कि दूत चलने के लिये जल्दी कराते हैं । दूतों से ऐसा कहकर भरत अपने नाना से बोले । ( ११-१४ )

राजन् ! दूतों की प्रेरणासे मैं अब पिताके समीप जाऊंगा । जब फिर याद करोगे तो आज्ञाऊंगा । भरत के ऐसा कहने पर उन के नाना उनका शिर संघ्न बोले- तात ! जाओ तुम को प्राप्त दर कैकेयी सुपुत्रवती हैं । अपने माता पिता से यद्वां की कुशल कह देना । अपने पुरोहित तथा अन्य द्विजोत्तमों

तौ च तात महेष्वासौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ	१८
तस्मै हस्त्युत्तमांश्चित्रान्कम्बलानजिनानि च ।	
सत्कृत्य कैकयो राजा भरताय ददौ धनम्	१९
अन्तःपुरेऽतिसंनृद्धान्याग्रधीर्यवलोपमान् ।	
दंष्ट्रायुक्तान्महाकायाञ्छुनश्चोपायनं ददौ	२०
रुक्मनिष्कसहस्रे द्वे षोडशाश्वशतानि च ।	
सत्कृत्य कैकयीपुत्रं कैकयो धनमाविशन्	२१
तदामात्यानभिप्रेतान्विश्वास्यांश्च गुणान्वितान् ।	
ददावश्वपतिः शीघ्रं भरतायानुयायिनः	२२
पेरावतानैन्द्रशिरान्नागान्वै प्रियदर्शनान् ।	
खरान्शीघ्रान्सुसंयुक्तान्मातुलोऽसौ धनं ददौ	२३
स दत्तं कैकयेन्द्रेण धनं तन्नाभ्यनन्दत ।	
भरतः कैकयीपुत्रो गमनत्वरया तदा	२४
वभूव ह्यस्य हृदये चिन्ता सुमहती तदा ।	
त्वरया चापिदूतानां स्वप्नस्यापि च दर्शनात्	२५
स खवेदमाभ्यतिक्रम्य नरनागाश्वसंकुलम् ।	

से और अपने भाई राम लक्ष्मण से भी कुशल कहना । राजाने भरत को एक उत्तम हाथी और उत्तम चित्र, बहुमूल्य शाल कुशल, नागा मृगचर्म और बहुतसा धन दे विदा किया । जो कुत्ते बहुत दिनों से रनवास में बंधे रहते थे और जिन का बल बाघों के समान था, राजा ने चलते वक्त उन्हें दिये । ( १५-२० )

और दो सहस्र सुवर्ण के निष्क, एक सौ सौलह उत्तम घोड़े दिये । साथ के लिये बहुत से विश्वासी मन्त्री आदि करदिये । इरावान् पहाट के पेरावत हाथी और इन्द्रशिर देश के हाथी दिये । पर भरत ने चलने की जल्दी में इन दी हुई वस्तुओं में से कोई पसन्द न की । दूतों की जल्दी और स्वप्न के कारण भरत को बड़ी चिन्ता हो रही थी । ( २१-२५ )

भरत के साथ जानेवाले मनुष्य घोड़े इत्यादि सब सड़क पर सड़े किये

वरूथं च ययौ रम्यं ग्रामं दशरथात्मजः	११
तत्र रम्ये वने वासं कृत्वासौ प्राहमुखो ययौ ।	
उद्यानमुज्जिहानायाः प्रियका यत्र पादपाः	१२
स तांस्तु प्रियकान्प्राप्य शीघ्रानास्थाय वाजिनः ।	
अनुज्ञाप्याथ भरतो वाहिनीं त्वरितो ययौ	१३
वासं कृत्वा सर्वतीर्थे र्तातया चोत्तरगां नदीम् ।	
अन्या नदीश्च विविधैः पार्वतीयैस्तुरङ्गमैः	१४
हस्तिपृष्ठकमासाद्य कुटिकामप्यवतत	१५
ततार च नरव्याघ्रो लोहित्ये च कपीवतीम् ।	
एकसाले स्थाणुमतीं विनते गोमतीं नदीम्	१६
कलिङ्गनगरे चापि ग्राम्ये सालवनं तदा ।	
भरतः क्षिप्रमागच्छत्सुपर्चिश्चान्तघाहनः	१७
वनं च समतीत्याशु शर्वर्यामरणोदये ।	
अयोध्यां मनुना राज्ञा निर्मितां स ददर्श ह	१८
तां पुरीं पुरुषव्याघ्रः सत्तरात्रोपितः पथि ।	
अयोध्यामग्रता दृष्ट्वा सारथिं चेदमब्रवीत्	१९

ग्राम में प्रवेश किया । वहाँ से पूर्व की ओर चले । वहाँ भरत ने सेना को विधाम लेने की आज्ञा दे और उसे वही छोड़ स्वयं चल दिये । आगे 'मर्व-तीर्थ' ग्राम में एक रात्रि बसे, वहाँ से बड़ उत्तानिका नदी तथा अन्य भी नदियाँ मिलीं, उन सब को पहाड़ी घोड़ों पर सवार हो उतर कुछ दूर चल हस्तिपृष्ठक ग्राम मिला, आगे बड़ कुटिका नदी मिली । फिर लोहित्य ग्राम के पास कपीवती नदी उतरे ( ११-१६ )

फिर स्थाणुमती नदी मिली, आगे बड़ विनतग्राम के पास गोमती को पार किया । वहाँ से आगे बड़ने पर घोड़े हाथी आदि जो साथ रह गये थे, धक गये, रास्ते के सालवन को पार कर रात बीतते ही अयोध्या भरत ने देखी । देकर देशसे चल बीच में सात रात बसने पर अयोध्याको देखते ही सारथि ने बोले । ( १६-१८ )

हे सारथे ! यह अयोध्यापुरी जिस में कुलवाड़ी आदि विराजमान थीं,

एषा नातिप्रतीता मे पुण्योद्याना यदास्विनी ।	
अयोध्या दृश्यते दुरात्सारथे पाण्डुमृत्तिका	२०
यज्जिभिर्गुणसंपन्नैर्ब्राह्मणैर्बेदपारगैः ।	
भूयिष्ठमृद्धैराकीर्णा राजर्षिवरपालिता	२१
अयोध्यायां पुरा शब्दः श्रूयते तुमुलो महान् ।	
समंतान्नरनारीणां तमद्य न शणोम्यहम्	२२
उद्यानानि हि सायाह्ने क्रीडित्वोपरतैर्नरैः ।	
समंताद्विप्रधाद्यद्भिः प्रकाशन्ते ममान्यथा	२३
नान्यद्यानुरुदन्तीव पणित्यक्तानि कामिभिः ।	
अरण्यभूतव पुरी सारथे प्रतिभानि माम्	२४
नह्यत्र यानैर्दृश्यन्ते न भजैर्न च वाजिभिः ।	
निर्यान्तो वाभियान्तो वा नरमुख्या यथा पुरा	२५
उद्यानानि पुरा भान्ति मत्तप्रमुद्गितानि च ।	
जनातां रतिसंयोगेऽत्यन्तगुणवन्ति च	२६
नान्येतान्यद्य पश्यामि निरानन्दानि सर्वशः ।	
अस्तपणैरनुपथं विक्रोशद्भिरिव द्रुमः	२७

यह उस्माह्वीन होनेके कारण पीली पीली लगती है और इसमें बड़े पूर्वकाल में बड़े बड़े ब्राह्मण यज्ञ किया करते थे । और राजर्षिगण नाना प्रकार से इसका पालन किया करते थे, जहां देखो, धनधान्ययुक्त लोग आया जाया करने थे, जिस से अयोध्या में कोलाहल मुनाई दिता करता था, वह नहीं मुन पड़ता । इसके उद्यानोंमें संध्या समय जो मनुष्य फोडा करने आते थे, सो आज उन वाटिकाओं में कोई दीग ही नहीं पड़ता, वे उद्यान मानो रो रहे हैं । सो गुमे नगरी वनके तुल्य दिखाई देती है, क्योंकि जैसे पूरे इस पुरी में रथ पालकी, आदि पर सवार हो लोग घूमने को निकलते थे, वे कोई नहीं दिखाई पड़ते । जनों के संयोग से इस के उद्यानावि अति हर्षित ज्ञात होते थे, अब नहीं होते । (११-२६)

वे पुण्यवाटिकाएं आज शानन्दरहित देख पड़ती हैं । मार्गोंमें जगह जगह

नाद्यापि धूयते शब्दो मत्तानां मृगपक्षिणाम् ।	
सरक्कां मधुरां वाणीं कलं व्याहरतां बहु	२८
चन्दनागुरुसंपृक्तधूपसंमूर्च्छितोऽमलः ।	
प्रवाति पवनः श्रीमान्किं नु नाद्य यथा पुरा	२९
भेरीमृदङ्गवीणानां कोणसंघट्टितः पुनः ।	
किमद्य शब्दो विरतः सदादीनगतिः पुरा	३०
अनिष्टानि च पापानि पश्यामि विविधानि च ।	
निमित्तान्यमनोज्ञानि तेन सीदति मे मनः	३१
सर्वथा कुशलं सून दुर्लभं मम बन्धुषु ।	
तथा हसति संमोहे हृदयं सीदतीव मे	३२
विषण्णः श्रान्तहृदयस्त्रस्तः संलुलितेन्द्रियः ।	
भरतः प्रविवेशाशु पुगीमिक्ष्वाकुपालितम्	३३
द्वारेण वैजयन्तेन प्राविशच्छ्रान्तबाहनः ।	
द्वाःस्थैरुत्थाय विजयं पृष्ट्वैतः सहितो ययौ	३४
स त्वनेकाग्रहृदयो द्वास्थं प्रत्यर्च्य तं जनम् ।	
मृतमश्वपतेः क्लान्तमनवीत्तत्र राघवः	३५

पत्ते पड़े हैं । समीप पहुंचने पर मत्त मृग पक्षियों के शब्द अब नहीं सुनाई देते । और चन्दनसे मिला अन्य सुगन्ध से धूपित शोभायमान वायु भी पहलेकामा नहीं बहता । बाजे और उनकी ध्वनि दूर ही से सुनाई दिया करती थी, यह अब क्यों बन्द हो गई ? सब प्रकार अनिष्टकारक निमित्त दिखाई देने हैं इसी से मेरा हृदय कांपता है । ( २६-३१ )

हे सूत ! जान पड़ता है कि भेरे-आरे भाई बन्धुओं में कुछ अमंगल ही है । इस से मेरा मन कांपता है । एवं उदासीन मन व्याकुलशरीर और धुब्धेन्द्रिय भरत ने अयोध्यापुरी में प्रवेश किया । वैजयन्त फाटक पर पहुंच थके हुए बाहनों पर चड़े द्वारपालगण उन्हें देख उठ खड़े हुए और उन्हीं के संग चले । पर भरत ने चित्त अस्वस्थ होने से उन द्वारपालों से कुशल पूछ लें जाने की आज्ञा दी और सारथि से बोले कि मैं जो बहुत शीघ्र बुलाया गया हूं, इस का कुछ कारण अवश्य है । क्योंकि दिल बारबार

किमहं त्वरयामीतः कारणेन विनानय ।	
अशुभाशङ्कि हृदयं शीलं च पततीव मे	३६
श्रुता नु यादृशाः पूर्वं नृपतीनां विनाशने ।	
आकारांस्तानहं सर्वानिह पश्यामि सारथे	३७
संमार्जनविहीनानि परुषाण्युपलक्षये ।	
असंयतकवाटानि श्रीविहीनानि सर्वशः	३८
वलिकर्मविहीनानि धूपसंमोदनेन च ।	
अनाशितकुटुम्बानि प्रभाहीनजनानि च	३९
अलक्ष्मीकानि पश्यामि कुटुम्बिभवनान्यहम् ।	
अपेतमाल्यशोभानि असंमृष्टाञ्जराणि च	४०
देवागाराणि शून्यानि न भान्तीह यथा पुग ।	
देवतार्चाः प्रविद्धाश्च यज्ञगोष्ठास्तथैव च	४१
माल्यापणेषु राजन्ते नाद्य पण्यानि वा तथा ।	
दृश्यन्ते घणिकोऽप्यद्य न यथापूर्वमत्र वै	४२
ध्यानसंविन्नहृदया नष्टव्यापारयन्त्रिताः ।	
देवायतनचैत्येषु दीनाः पक्षिन्तृगास्तथा	४३
मलिनं चाशुपूर्णाक्षं दीनं ध्यानपरं कृशम् ।	
सखीपुंसं च पश्यामि जनमुत्कण्ठितं पुरे	४४

कांपता है । हे सून ! राजाओं के मरने पर जो आकार पुरममाजादि के होते हैं, वे सब आकार मैं देखता हूँ । (३२-३७ )

सब फाटक निना झाडे पटे हैं, क़ियाड टीक नहीं हैं, सब कुछ अस्त-व्यस्त है । मन्दिरों के द्वार पर पूजा की सामग्री दिखाई नहीं देती, धूपटीर का नाम ही नहीं, सब जन प्रभाहीन हो गये हैं । सब भवन श्रीरहित हो गये हैं, माला आदि किसीके दरवाजे नहीं दीख पड़ती, किसीके भी दरवाजे नहीं खुलारे गये हैं । वेदमन्दिर मानो सब शून्य हो गये हैं, यज्ञशालाओं की भी यही दशा है । घणिकृगण जैसे उस्ताहसे अपनी दुकाने खोलते थे, वस्त्र आज नहीं खोली है । वे जहाँ के तहाँ संकोच किये बैठे हैं । देवालयादि में

इत्येवमुक्त्वा भरतः सूतं तं दीनमानसः ।

तान्यनिष्ठान्ययोध्यायां प्रेक्ष्य राजगृहं ययौ ४५

तां शून्यशृङ्गाटकवेश्मरथ्यां रजोरुणद्वारकवाटयन्त्राम् ।

दृष्ट्वा पुरीमिन्द्रपुरीप्रकाशां दुःखेन संपूर्णतरो बभूव ४६

बभूव पश्यन्मनसोऽप्रियाणि यान्यन्यदा नास्य पुरे बभूवुः ।

अवाक्शिरा दीनमना न हृष्टः पितुर्महात्मा प्रविवेश वेदम् ४७

इत्यार्षे श्री० बा० आदिकाव्येऽयोध्यामण्डे एकसप्ततितमः सर्गः ॥७१॥ [२७९१]

द्विसप्ततितमः सर्गः ।

अपश्यंस्तु ततस्तत्र पितरं पितुरालये ।

जगाम भरतो द्रष्टुं मातरं मातुरालये १

अनुप्राप्तं तु तं दृष्ट्वा कैकेयी शोषितं सुतम् ।

उत्पपात तद् दृष्ट्वा त्यक्त्वा सौवर्णमासनम् २

स प्रविश्यैव धर्मात्मा स्वगृहं श्रीविवर्जितम् ।

भरतः प्रेक्ष्य जग्राह जनन्याश्चरणौ शुभौ ३

भी पक्षी नहीं बोलते । जहाँ देवों स्त्री पुरुष सब के सब मलिन वस्त्र धारें  
जति दीनमन दुर्बल जान पड़ते हैं । ( ३८-४४ )

एवं अशुभ अयोध्या में देखते सूत से कहते उदासीन हो भरतने राज-  
मन्दिर में प्रवेश किया । जो अयोध्यानगरी पहले इन्द्र की अमरावती के  
तुल्य थी, वही आज सूने घर, चोराह एवं सड़कों से भरी दीख पड़ती थी,  
और अन्दर के दरवाजे भी मैल जमने के कारण छेधले से दिखाई देते थे,  
यह देखकर भरत के दिल में दुःख उमड़ पड़ा । पहले कभी न देखे हुए  
अप्रिय दृग जब उस नगरी में उस की आँखों के आगे होने लगे, तो भरतने  
अपना मिर झुका लिया और मन में बड़ा दुःखी होकर वह महात्मा अपने  
पिताके घर में भारी अग्रमन्नता के साथ प्रविष्ट हुआ । ( ४५-४७ )

यहाँ बहत्तरवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

वहाँ जाकर भरत अपने पिता को न देख माता को देखने के लिये माता  
के मन्दिर में पहुँचे । आप् हुण अपने पुत्र भरत को देख कैकेयी आसन की  
छोड़ उठ खड़ी हुई । भरत ने भी अपनी माता के चरणों में प्रणाम किया ।

तं मूर्ध्नि समुपाधाय पटिष्वज्य यशस्विनम् ।	
अङ्गे भरतमारोप्य प्रष्टुं समुपचक्रमे	४
अद्य ते कतिचिद्राज्यश्च्युतस्यार्यकवेश्मनः ।	
अपि नाध्वश्रमः शीघ्रं रथेनापततस्तव	५
आर्यकस्ते सुकुशली युधाजिन्मातुलस्तव ।	
प्रवासाच्च सुखं पुत्र सर्वं मे वक्तुमर्हसि	६
एवं पृष्टस्तु कैकेय्या प्रियं पार्थिवनन्दनः ।	
आचष्ट भरतः सर्वं मात्रे राजीवलोचनः ।	७
अद्य मे सप्तमी रात्रिश्च्युतस्यार्यकवेश्मनः ।	
अम्बायाः कुशली तातो युधाजिन्मातुलश्च मे	८
यन्मे धनं च रत्नं च ददा राजा परन्तपः ।	
परिश्रान्तं पथ्यभवत्ततोऽहं पूर्वमागतः	९
राजवान्यहरैर्दूतैस्त्वय्यमाणोऽहमागतः ।	
यदहं प्रष्टुमिच्छामि तदम्या वक्तुमर्हति	१०
शून्योऽयं शयनीयस्ते पर्यङ्को हेमभूषितः ।	
न चायमिक्ष्वाकुजनः प्रहृष्टः प्रतिभाति मे	११

कैकेयी भी भरत को छाती से लगा गोद में ले स्वपिता और भाई आदि के वृत्तान्त पूछने लगी कि तुम को नाना के मन्दिर से चले कितनी रातें हुई ? शीघ्रता के कारण मार्ग में बड़ा परिश्रम पड़ा होगा । तुम्हारे नाना और मामा कुशलपूर्वक तो हैं ? हे पुत्र ! उन लोगों और अपने सुख का वृत्तान्त कहो । ( १-६ )

माता के पूछने पर भरत कहने लगे कि आज आप के पिता के गृह से चले मातृवां रात हैं । मेरे नाना और मामा कुशल से हैं । राजा ने जो कुछ सुझा दिया था, उस सब को थक जाने के कारण मार्ग में छोड़ आया हूँ । मुझे बड़ी जल्दी थी, क्योंकि महाराज का सन्देश ले जो दूत यहाँ से गये थे, वे दड़ी जल्दी करते थे । उस का नया कारण था, सो बताइये । ( ७-१० )

शापका सुगन्धभूषित पर्यङ्क गन्ध क्यों है ? इक्ष्वाकुवंशियों में कोई



धन्या रामादयः सर्वे यैः पिता संस्कृतः स्वयम्	२९
न नूनं मां महाराजः प्राप्तं जानाति कीर्तिमान् ।	
उपजिघ्रेक्षु मां मूर्ध्नि तातः सन्नाम्य सत्वरम्	३०
क स पाणिः सुखस्पर्शस्तातस्याक्लिष्टकर्मणः ।	
यो हि मां रजसा ध्वस्तमभीक्ष्णं परिमार्जति	३१
यो मे भ्राता पिता वन्धुर्यस्य दासोऽस्मि संमतः ।	
तस्य मां शीघ्रमाख्याहि रामस्याक्लिष्टकर्मणः	३२
पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्ममायस्य जानतः ।	
तस्य पादौ ग्रहीष्यामि स ह्येदानीं गतिर्भम	३३
धर्मविद्धर्मशीलश्च महाभागो दृढव्रतः ।	
आर्यं किमब्रवीद्राजा पिता मे सत्यविक्रमः	३४
पश्चिमं साधुसंदेशमिच्छामि श्रोतुमात्मनः ।	
इति पृष्टा यथा तत्त्वं कैकर्या वाक्यमब्रवीत्	३५
रामेति राजा विलपन्हा सीते लक्ष्मणेति च ।	
स महात्मा परं लोकं गतो मतिमतां वरः	३६
इतीमां पश्चिमां वाचं व्याजहार पिता तव ।	
कालधर्मं परिक्षिप्तः पाशैरिव महागजः	३७
सिद्धार्थास्तु नरा राममागतं सह सीतया ।	

पिता को एसा कौन व्याधि हुई जिस से अटपट बिना मेरे आये ही वे इस लोक को छोड़ चले गये ? जब महाराज नहीं जानते कि मैं नाना के यहाँ से आया हूँ, नहीं तो मेरा शिर झूँबते । ( २६-३० )

अब दृष्टे ही सुस देनेवाला पिता का वह हाथ कहाँ है ? जो मेरे भ्राता पिता वन्धु राम है, वे कहाँ है, शीघ्र मेरा आना उनसे कहो । ज्येष्ठ भ्राता पिता ही के समान होता है, इस से उनके ही चरणों को ग्रहण करुं । महाराजाधिराज चलनेके रामय रामसे क्या कह गये थे ? पिताजी चलनेके समय कुछ मुझे भी आजा दे गये हो तो उनका सन्देश सुनाओ । ( ३१-३५ )

भरत के इस भाँति पूछने पर कैकयी बोली कि राम सीता व लक्ष्मणके लिये विलाप करते हुए महाराज परलोक को चले गये । काल धर्म के वश

लक्ष्मणं च महाबाहुं द्रक्ष्यन्ति पुनरागतम्	३८
तच्छ्रुत्वा विषादवै द्वितीयाप्रियशंसनात् ।	
विषण्णवदनो भूया भूयः पप्रच्छ मातरम्	३९
क चेदानीं स धर्मात्मा कौसल्यानन्दवर्धनः ।	
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया च समागतः	४०
तथा पृष्टा यथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे ।	
मातास्य युगपद्वाक्यं विप्रियं प्रियशंसया	४१
स हि राजसुतः पुत्रचोरवासा महावनम् ।	
दण्डकान्सह वैदेह्या लक्ष्मणानुचरो गतः	४२
तच्छ्रुत्वा भरतस्त्रस्तो भ्रातुश्चारित्रशङ्कया	
स्वयं वंशस्य माहात्म्यात्प्रष्टुं समुपचक्रमे	४३
कच्चिन्न ब्राह्मणधनं हतं रामेण कस्यचित् ।	
कच्चिन्नाढ्यो दरिद्रो वा तेनापापो विहिंसितः	४४
कच्चिन्न परदारान्वा राजपुत्रोऽभिमन्यते ।	
कस्मात्स दण्डकारण्ये भ्राता रामो विवासितः	४५
अथास्य चपला माता तत्स्वकर्म यथातथम् ।	

मरते समय तुम्हारे पिता ने यही कहा । और यह भी कहा कि लक्ष्मण, सीता व राम को पुनः लौटा हुआ देखनेवाले जन सिद्धार्थ हो जायेंगे । यह दूसरा अप्रिय वचन सुन भरत ने फिर माता से पूछा । कि कौसल्या को सुख देनेवाले राम, सीता व लक्ष्मण इस समय कहां हैं ? ( ३५-४० )

ऐसा पूछने पर कैकेयी सब अप्रिय कथा के तुल्य सुनाने लगी । हे पुत्र ! राम, लक्ष्मण व सीता के साथ थीर बल्कल पहनकर वन को चले गये । यह सुन भरत अति भयभीत हुए, पर धैर्य से पूछने लगे कि न तो रामने किसी ब्राह्मण का धन ही हरा, न किसी का पिता पातक बध किया, न किसी पराई स्त्री को राम ने गमन किया ? फिर किस कारण राम को दण्डकारण्य का वास दिया गया ? ( ४१-४५ )

हि. ६ ( अयोध्या उ. )

तेनैव स्त्रीस्यभावेन व्याहृतमुपचक्रमे	४६
एवमुक्ता तु कैकेयी भरतेन महात्मना ।	
उवाच वचनं हृष्टा वृथापण्डितमानिनी	४७
न ब्राह्मणधनं किञ्चिद्धृतं रामेण कस्यचित् ।	
कश्चिन्नाट्यो दरिद्रो वा तेनापापो विहिंसितः ।	
न रामः परदारान्स चक्षुर्भ्यामपि पश्यति	४८
मया तु पुत्र धृत्वेव रामस्येहाभिपेक्षनम् ।	
याचितस्ते पिता राज्यं रामस्य च विवासनम्	४९
स स्ववृत्तिं समास्थाय पिता ते तत्तथाकरोत् ।	
रामस्तु सहस्रौमित्रिः प्रोपितः सह सीतया	५०
नमपश्यन्प्रियं पुत्रं महीपालो महायशः ।	
पुत्रशोकपरिचूनः पञ्चत्वमुपपेदिवान्	५१
त्वया त्विदानीं धर्मज्ञ राजत्वमवलम्ब्यताम् । ।	
त्वत्कृते हि मया सर्वमिदमेवंविधं कृतम्	५२
मा शोकं मा च संतापं धैर्यमाश्रय पुत्रक ।	
नवदधीना हि नगरी राज्यं चैतदनामयम्	५३

नतपुत्र शीघ्रं विधिना विधिर्नैवसिष्टमुख्यैः सहितो द्विजेन्द्रैः ।

संकाल्य राजानमदीनसत्त्वमात्मानमुद्वर्ग्यामभिपेक्षयस्व ५४

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिष्टाव्येऽथोऽध्याकाण्डे द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

भरत की यह बात सुन कैकेयी ने जो कुछ किया था, वह धर्जन करने लगी। और पण्डितमानिनी कैकेयी प्रसन्न हो बोली कि रामने न तो किसी का धन ही लिया, न किसी का बंध दिया। राम पराई स्त्री को तो नेत्रों से भी नहीं देखते। हे पुत्र ! मैंने राम का अनिपेक्ष सुन तुम्हारे पिता से तुम्हारे लिये राज्य व राम के लिये वनवास मागा। ( ४६-४९ )

लक्ष्मण सीता न राम को राजा ने वन को भेज दिया। पर पुत्रशोक से उन्होंने शरीर ठोड दिया। अब तुम राज्य को स्वीकार करो। तुम्हारे ही बाम्ने ऐसा किया गया, अब तुम गन्ताप को ठोड धैर्य करो। तुम्हारे ही

त्रिसप्ततितमः सर्गः ।

[ २८४५ ]

धृत्वा च स पितुर्वृत्तं आतरौ च विवासितौ ।	
भरतो दुःखसंतप्त इदं वचनमब्रवीत्	१
किं नु कार्यं हतस्येह मम राज्येन शोचतः ।	
विहीनस्याथ पित्रा च आत्रा पितृसमेन च	२
दुःखे मे दुःखमकरोर्वणे क्षारमिवाददाः ।	
राजानं प्रेतभाधस्थं कृत्वा रामं च तापसम्	३
कुलस्य त्वमभावाय कालरात्रिरिवागता ।	
अङ्गारमुपगुह्य स्म पिता मे नावयुद्धवान्	४
मृत्युमापादितो राजा त्वया मे पापदर्शिनः ।	
सुखं परिहृतं मोहात्कुलेऽस्मिन्कुलपांसनि	५
त्वां प्राप्य हि पिता मेऽद्य सत्यसंधो महायशः ।	
नीददुःखामिसंतप्तो वृत्तो दशरथो नृपः	६
विनाशितो महाराजः पिता मे धर्मवत्सलः ।	
कस्मात्प्रवाजितो रामः कस्मादेव वनं गतः	७
कौसल्या च सुमित्रा च पुत्रशोकाभिपीडिते ।	

अधीन यह पुरी और राज्य है । अतः हे पुत्र ! द्विजेन्द्रों को बुला दीप्त हो इस पृथिवी के राजा बनो । ( ५०-५४ )

यहाँ बहत्तरवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

भरत यह वृत्त सुन रामके वनवाससे सन्तप्त हो कहने लगे कि पिता और श्रीराम के बिना राज्य से क्या प्रयोजन ? अरे दुष्टे ! तूने मुझे दुःखमें दूसरा दुःख दिया । तूने राजा को मार राम को तपस्वी बनाकर वनको भेज दिया । हम कुल के नाश करने के लिये तू कालरात्रि के समान हुई । हा, अंगाररूप तूह को पा पिता स्वर्ग को चले गये । हे पापदर्शिन ! तूने पिता को मार डाला और कुल भर का नाश किया । ( १-५ )

सत्यवन्ध्र वृद्ध मेरे पिता तुझी को प्राप्त हो नरे । उन्हें तूने ही मार डाला । राम जो उन्होंने क्यों मिराया और ये वन क्यों गये ? यदि सौमल्या और

एवं त्विदानीमेवाहमप्रियार्थं तवानघे ।

निवर्तयिष्यामि वनाङ्गातरं स्वजनप्रियम् २६

निवर्तयित्वा रामं च तस्याहं दीप्ततेजसः ।

दासभूतो भविष्यामि सुस्थितेनान्तरात्मना २७

इत्येवमुक्त्वा भरतो महात्मा प्रियेतरैर्वाक्यगणैस्तुदंस्ताम् ।

शोकार्दितश्चापि ननाद भूयः सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः २८

इत्यर्थे श्रीम० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे त्रिमस्तितमः सर्गः॥७३॥ [२८७३]

चतुःसप्ततितमः सर्गः ।

तां तथा गर्हयित्वा तु मातरं भरतस्तदा ।

रोपेण महताविष्टः पुनरेवाब्रवीद्वचः १

राज्याङ्गंशस्व कैकेयि नृशंसे दुष्टचारिणि ।

परित्यक्तासि धर्मेण मा मृतं रुदती भव २

किं नु तेऽदूययद्रामो राजा वा भृशधार्मिकः ।

ययोर्मृत्युर्विवासश्च त्वत्कृते तुल्यमागतौ ३

भूणहत्यामसि प्राप्ता कुलस्यास्य विनाशनात् ।

कैकेयि नरकं गच्छ मा च तातसलोकताम् ४

गये । मैं तेरा अप्रिय करने के लिये अभी जा श्रीराम को वन से लौटा लाऊंगा । और श्रीराम को वन से लौटा उनका दास बन रहूंगा । इस प्रकार अप्रिय शब्दों से कैकेयी को दुःख देनेवाला और शोकाकुल भरत उक्त प्रकार कैकेयी से कहकर मंदरपर्वत की गुहामें स्थित सिंहके समान गर्जना करने लगा । ( २१-२८ )

यहाँ तिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

माता की ऐसी निन्दा कर भरत बड़े क्रोध में भर फिर बोले— हे नृशंसे ! राज्य से तू भी अछू हुई, क्योंकि धर्म ने तुझे परित्यक्त कर दिया, अतः मेरे लिये भी तू रोवेगी । राम तथा राजा ने तेरा क्या बिगाड़ा था जिससे राजा को मार राम को वनवास दिया ? हे कैकेयि ? इस कुल के विनाश से भूणहत्या का पाप तुझे है, इससे नरक को प्राप्त हो तू पिताके लोक को नहीं

यत्त्वया हीदृशं पापं कृतं घरेण कर्मणा ।	
सर्वलोकप्रियं हित्वा ममाप्यापादितं भयम्	५
त्वत्कृते मे पिता वृत्तो रामश्चारण्यमाश्रितः ।	
अयशो जीवलोके च त्वयाहं प्रतिपादितः	६
मातृरूपे ममामित्रे नृशंसे राज्यकामुके ।	
न तेऽहमभिभाष्योऽस्मि दुर्वृत्ते पतिघातिनि	७
कौसल्या च सुमित्रा च याश्चान्या मम मातरः ।	
दुःखेन महताविष्टास्त्वां प्राप्य कुलदूषिणीम्	८
न त्यमद्वपतेः कन्या धर्मराजस्य धीमतः ।	
राक्षसी तत्र जातासि कुलप्रध्वंसिनी पितुः ।	९
यत्त्वया धार्मिको रामो नित्यं सत्यपरायणः ।	
वनं प्रस्थापितो वीरः पितापि त्रिदिवं गतः	१०
यत्प्रधानासि तत्पापं मयि पित्रा विना कृते ।	

जा सकती। क्योंकि तूने राम को वनवास दिया है, जिससे मुझे भी महानय प्राप्त हुआ है। (१-५)

हा! तेरे ही हेतु पिता मरण को प्राप्त हुए और राम वनमें बसते हैं। अतः तेरे कारण लोक में मेरा भी अपयश हुआ। तू माता के रूप शत्रु है, क्योंकि निर्लज्ज हो राज्य की चाह करती है। हे पतिघातिनि! अब मुझसे राज्य के लिए न बहना। हा! कौसल्या और सुमित्रा आदि तुझ कुलपांसनी को पाकर महा दुःखित हैं। तू धर्मराज केजयराज की कन्या नहीं है, मेरे पिताके कुल का नाश करने के लिये उन के घर में राक्षसी उत्पन्न हुई है। तूने परम-धार्मिक राम को वनवास दिया जिससे पिता स्वर्ग को चले गये। (६-१०)

। ९ वे श्लोक में टीकाकार 'कुलप्रध्वंसिनी पितुः' में 'मम' शब्द अध्याहृत लेकर अर्थ करते हैं कि 'मेरे पिताके कुल को मटियामेट करने-वाली' तथा सूचित करते हैं 'अपने पिताके (पीहर) कुल का' ऐसा अर्थ लिया जा सकता है। मेरी राय में 'मम' अध्याहृत मानकर 'मेरे पिताजी के अर्थात् दशरथ के कुल का विनाश' यही अर्थ युक्तियुक्त दीख पड़ता है।

भ्रातृभ्यां च परित्यक्ते सर्वलोकस्य चाप्रिये	११
कौसल्यां धर्मसंयुक्तां वियुक्तां पापनिश्चये ।	
कृत्वा कं प्राप्स्यसे ह्यद्य लोकं निरयगामिनी	१२
किं नावबुध्यसे क्रूरे नियतं बन्धुसंश्रयम् ।	
ज्येष्ठं पितृसमं रामं कौसल्यायात्मसंभवम्	१३
अङ्गप्रत्यङ्गजः पुत्रो हृदयाच्चाभिजायते ।	
तस्मात्प्रियतरो मातुः प्रिया एव तु बान्धवाः	१४
अन्यदा किल धर्मज्ञा सुरभिः सुरसंमता ।	
यहमानौ ददर्शौर्व्यां पुत्रौ विगतचेतसौ	१५
तावर्धदिवसं श्रान्तौ दृष्ट्वा पुत्रौ महीतले ।	
रुरोद पुत्रशोकेन बाष्पपर्याकुलेक्षणम्	१६
अधस्ताद्भ्रजतस्तस्याः सुरराज्ञो महात्मनः ।	
विन्दवः पतिता गात्रे सूक्ष्माः सुरभिगन्धिनः	१७
निरीक्षमाणस्तां शक्रो ददर्श सुरभिं स्थिताम् ।	
आकाशे विष्टितां दीनां रुदतीं भृशदुःखिताम्	१८
तां दृष्ट्वा शोकसंतप्तां यज्ञपाणिर्यशस्विनीम् ।	

जैसे तू राक्षसी थी वैसा ही कर्म किया कि मुझे पिता और भाइयों से रहित कर सब लोकों में मुझे व आप को अप्रिय किया । कौमल्या को बिना पुत्र की कर इस घोर पाप से न जाने तू किम लोक को प्राप्त होगी । क्रूरे ! परमबन्धु ज्येष्ठ भ्राता कौमल्यानन्दन राम को क्या तू नहीं जानती ? पुत्र जाना के अंग प्रत्यङ्ग और हृदय में उत्पन्न होता है, इसी से माता को पुत्र प्रियबान्धवों से भी अधिक प्रिय होता है । ( ११-१४ )

किसी समय देवर्षिणी कामधेनु अपने दो पुत्र बैलों को पृथिवी में हल में जुते व्याकुल श्रान्त दोपहर में भी काम में लगे देरा आंसू गिराने लगी । जहाँ कामधेनु थी, इन्द्र उसी के नीचे होकर जा रहे थे कि उस के आंसुओं की बूंद उनके ऊपर पड़ी । इन्द्र के ऊपर देखने पर उन्हें रोती दीनचित्त सुरभि आकाशमें दीख पड़ी । उसको शोकाकुल देख, इन्द्र उदाय हो बोले—

इन्द्रः प्राञ्जलिरुद्विग्नः सुरराजोऽवर्षाद्वचः	१९
भयं कश्चिन्न चास्मासु कुतश्चिद्विद्यते महत् ।	
कुतोऽनिमित्तः शोकस्ते ब्रूहि सर्वहितैषिणि	२०
पवमुक्ता तु सुरभिः सुरराजेन धीमता ।	
प्रत्युवाच ततो धीरा वाक्यं वाक्यविशारदा	२१
शान्तं पापं न वः किञ्चित्कुतश्चिदमराधिय ।	
अहं तु मग्नौ शोचामि स्वपुत्रौ विपमे स्थितौ	२२
एतौ दृष्ट्वा रुशौ दीनौ सूर्यरश्मिप्रतापितौ ।	
वध्यमानौ बलीवर्दी कर्षकेण दुरात्मना	२३
मम कायात्प्रमृतौ हि दुःखितौ भारपीडितौ ।	
यो दृष्ट्वा परितप्येऽहं नास्ति पुत्रसमः प्रियः	२४
यस्याः पुत्रसहस्रैस्तु कृत्स्नं व्याप्तमिदं जगत् ।	
तां दृष्ट्वा रुदतीं शक्रो न सुतान्मन्यते परम्	२५
इन्द्रो द्यधुनिपातं तं स्वगात्रे पुण्यगन्धिनम् ।	
सुरभिं मन्यते दृष्ट्वा भूयसीं तामिहेश्वरः	२६
समाप्रतिमवृत्तायां लोकधारणकाम्यया ।	
ध्रीमत्या गुणमुरयायाः स्वभावपरिचेष्टया	२७

हे सुरभि ! आजकल किसी ओर से कोई भय नहीं है, फिर तुम्हें यह शोक क्यों प्राप्त हुआ है ? ( १५-२० )

देवराज के सुरभि से ऐसा कहने पर कामवेनु बोली— हे इन्द्र ! आजकल राक्षसादिकों का पाप तो शान्त हो गया, पर मैं अपने पुत्रों का शोक करती हूँ जो विपन्न स्थिति में पड़े हैं। इन दोनों को देखो कैसे दुर्बल हैं। सूर्य की धूप से दुःखी हैं, पर क्रिमान ने दोपहर होने पर भी नहीं छोड़ा। ये मेरी काया से उत्पन्न हैं तथा बोज से दुःखित हो रहे हैं। इन्हें देख मैं शोक से जली जाती हूँ। इन्द्र ने महलों पुत्रोंवाली सुरभि को दो पुत्रों के कष्टों कष्टित देख सोचा कि पुत्र के समान अन्य कोई भी पदार्थ प्रिय नहीं है। इन्द्र ने सुरभि के कामुजों की बंधों को पुण्य समझा। ( २१-२६ )

लोकधारण की कामना, सरलस्वभावता तथा पुत्र प्रेम से अनेक पुत्रों



एवमुक्त्वा सुमित्रां तां विवर्णवदना कृशा ।	
प्रतस्थे भरतो यत्र वेपमाना विचेतना	७
स तु राजात्मजश्चापि शत्रुघ्नसहितस्तदा ।	
प्रतस्थे भरतो येन कौसल्याया निवेशनम्	८
ततः शत्रुघ्नभरतौ कौसल्यां प्रेक्ष्य दुःखितौ ।	
पर्यप्यजेतां दुःखार्तां पतितां नष्टचेतनाम्	९
रुदन्तौ रुदतां दुःखात्समेत्यार्या मनस्विनी ।	
भरतं प्रत्युवाचेदं कौसल्या भृशदुःखिता	१०
इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकण्ठकम् ।	
संप्राप्तं यत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा	११
प्रस्थाप्य चीरवसनं पुत्रं मे वनवासिनम् ।	
कैकेयी कं गुणं तत्र पश्यति क्रूरदर्शिनी	१२
क्षिप्रं मामपि कैकेयी प्रस्थापयितुमर्हति ।	
हिरण्यनाभो यत्रास्ते सुतो मे सुमहायशाः	१३
अथवा स्वयमेवाहं सुमित्रानुचरा सुखम् ।	
अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य प्रस्थास्ये यत्र राघवः	१४
कामं वा स्वयमेवाद्य तत्र मां नेतुमर्हसि ।	
यत्रासौ पुरुषव्याघ्रस्तप्स्यते मे सुतस्ततः	१५

ऐसा कह अति दुर्बलशरीर कांपती हुई कौसल्या भरत के पास चली। भरत भी शत्रुघ्न को साथ ले कौमल्या के मन्दिर को चले। शत्रुघ्न व भरत कौसल्या को देख दुःखित हुए, कौसल्या भी उन्हें देख मूर्च्छित हो गई। फिर रोते हुए दोनों भाइयों में रोदन करती भरत से बोली। (७-१०)

कैकेयी ने बड़ा क्रूर कर्म कर यह राज्य, राज्यकांक्षी तुम्हारे लिये पाया है। तुम्हें अब निष्कण्ठक राज्य मिल गया है। क्रूरकर्मा कैकेयी चीर बलकल पहिना मेरे पुत्र को वनवास देने में कौन लाभ देखती है? मेरे परम यशस्वी पुत्र राम जहां है, वहीं कैकेयी शीघ्र मुझे भी भेज दे। अन्यथा मैं स्वयं सुमित्रा को साथ ले राम के पास राजा की दाह-क्रिया कर चली जाऊंगी।

इदं हि तव विस्तीर्णं धनधान्यसमाचितम् ।	
हस्त्यश्वरथसंपूर्णं राज्यं निर्यातितं तथा	१३
इत्यादिवहुभिर्वाक्यैः क्रूरैः संभर्त्सितोऽनघः ।	
विज्यथे भरतो तीव्रव्रणे तुद्येव सूचिना	१७
पपात चरणौ तस्यास्तदा संभ्रान्तचेतनः ।	
विलप्य बहुधासंज्ञो लब्धसंज्ञस्तदाभवत्	१८
एवं विलपमानां तां प्राञ्जलिर्भरतस्तदा ।	
कौसल्यां प्रत्युवाचेदं शोकैर्बहुभिरावृताम्	१९
आर्यं कस्मादजानन्तं गर्हसे मामकल्मषम् ।	
विपुलां च मम प्रीतिं स्थितां जानासि राधये	२०
कृतशास्त्रानुगा बद्धिर्मा भूतस्य कदाचन ।	
सत्यसंघः सतां श्रेष्ठो यस्यार्योऽनुमते गतः	२१
प्रैष्यं पापीयसां यातु सूर्यं च प्रति मेहतु ।	
हन्तु पादेन गां सुप्तां यस्यार्योऽनुमते गतः	२२
कारयित्वा महत्कर्म भर्ता भृत्यमनर्थकम् ।	

अथवा तुम्हीं मुझ को श्रीराम के पास पहुँचा दो। यह धनधान्ययुक्त राज्य तुम को सौंपती हूँ, सो भोगो। (११-१६)

एवं बड़े क्रूर वचन कौसल्या ने भरत से कहे, जिन्हें सुन भरत अति दुःखित हुए। भरत शोकानुर हो कौसल्या के पैरों पर गिर पड़े, भ्रान्तचित हो रोते रोते मृद्विन्त हो गये, फिर चैतन्य हो रोती माता कौसल्या से हाथ जोड़ बोले—आर्य! राम से मेरी किसी अधिक प्रीति है, वह तुम अच्छी प्रकार जानती हो। मैं इस विषय में अनजान और निष्पाप हूँ, फिर मेरी निन्दा क्यों करती हो? (१७-२०)

सत्यमन्त्र श्रीराम जिसकी अनुमति से बन गये हों, वह शास्त्र भी पड़े तो उस को न खाये। जिस की सम्मति से श्रीराम बन गये हों, वह नाच पापी आदिकों का खेचर हो और सूर्य के सम्मुख हो दिशा पेशाय करे, सोती हुई गाय को लात मारे। जिस के मत से श्रीराम बन गये हों,

अधर्मो योऽस्य सोऽस्यास्तु यस्यायौऽनुमते गतः	२३.
परिपालयमानस्य राज्ञो भूतानि पुत्रवन् ।	
ततस्तु द्रुह्यतां पापं यस्यायौऽनुमते गतः	२४
बलिपट्भागमुद्धृत्य नृपस्याराक्षितुः प्रजाः ।	
अधर्मो योऽस्य सोऽस्यास्तु यस्यायौऽनुमते गतः	२५
संश्रुत्य च तपस्विभ्यः सत्रे वै यज्ञदक्षिणाम् ।	
तां चापलपतां पापं यस्यायौऽनुमते गतः	२६
हस्त्यश्वरथसंबाधे युद्धे शस्त्रसमाकुले ।	
मा स कार्षित्सतां धर्मं यस्यायौऽनुमते गतः	२७
उपदिष्टं नुसूक्ष्मायं शास्त्रं यत्नेन धीमता ।	
स नाशयतु दुष्टात्मा यस्यायौऽनुमते गतः	२८
मा च तं व्यूढवाहंसं चन्द्रभास्करतेजसम् ।	
द्राक्षीद्राजस्थमासीनं यस्यायौऽनुमते गतः	२९
पायसं कृसरं छागं वृथा सोऽश्नातु निर्घृणः ।	
गुरुंश्चाप्यवजानातु यस्यायौऽनुमते गतः	३०

उमको वह पाप हो जो कि बड़ा काम करा लेने पर भी सेवकों को नौकरी न देने से होता है । जिस के मत से श्रीराम बन गये हों, उस को वह पाप हो जो राजा को प्रजाओं के धात से होता है । जिस की अनुमति से श्रीराम बन गये हों, उस को वह पाप होवे जो प्रजा से बलिपट्भाग ग्रहण करके उनकी रक्षा न करनेवाले राजा को होता है । ( २३-२५ )

जिस की अनुमति ने आर्य बन चले गये हों, उस को वह पाप हो जो शास्त्रों से यज्ञादि करा प्रतिज्ञात दक्षिणा न देने पर श्रापित होने से होता है । जिस की मन्मति से श्रीराम बन में गये हों, उस को वह पाप हो जो युद्ध में भागने से होता है । जिस के मत से श्रीराम बनको गये हों, उसको वह पाप हो जो शास्त्र से सूक्ष्म अर्थों को पढ़ मुझा देने से होता है । जिस की मति से श्रीराम निर्मानित हुए हों, वह दुष्ट, तेजस्वी श्रीरामको विहायन पर बैठे न देखे । जिस की मति से श्रीराम बन को गये हों, उस को वह पाप हो जो रिता देवता के कर्पण की हुई स्तार आदि गाने व गुरु का अपमान

गवां स्पृशतु पादेन गुरुन्परिवदेत च ।	
मित्रे द्रुह्येत सोऽत्यर्थं यस्यार्योऽनुमते गतः	३१
विश्वासात्कथितं किञ्चित्परिवादं मिथः क्वचित् ।	
विषृणोतु स दुष्टात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः	३२
अकर्ता चाकृतज्ञश्च त्यक्तश्च निरपन्नपः ।	
लोके भयतु विद्विष्टो यस्यार्योऽनुमते गतः	३३
पुत्रैर्दासैश्च भृत्यैश्च स्वगृहे परिवारितः ।	
स एको मृष्टमन्त्रातु यस्यार्योऽनुमते गतः	३४
अप्राप्य सदृशान्दाराननपत्यः प्रमीयताम् ।	
धनवाप्य क्रियां धन्यां यस्यार्योऽनुमते गतः	३५
मात्मनः संतर्पितं द्राक्षीत्स्वेषु दारेषु दुःखितः ।	
आयुः समग्रमप्राप्य यस्यार्योऽनुमते गतः	३६
राजस्त्रीबालवृद्धानां वधे यत्पापमुच्यते ।	
भृत्यत्यागे च यत्पापं तत्पापं प्रतिपद्यताम्	३७

करने से होता है । ( २६-३० )

जिस की अनुमति से राम वन को गये हों, उस को वह पाप हो जो गायों को पैर से दूने व बड़े लोगों के सामने दिट्ठार्ह के साथ बोलने और मित्रद्रोह से होता है । जिस की मति से राम वन को गये हों, उसे वह पाप हो जो विश्वासघात व प्रतिज्ञाभंग से होता है । जिस की अनुमति से आर्य वन में गये हो, उसको उपकार न करनेवाले अकृतज्ञ होने और संसार भर से धर करने का पाप हो । जिस की मति से आर्य वन दो गये हों, उस को वह पाप पड़े जो पुत्र स्त्री सेवक आदि के होते अश्लेष मित्रान्न खानसे होता है । जिस की मति से आर्य वन से गये हों उस को योग्य स्त्री पुत्र न मिले । ( ३१-३५ )

जिस की मति से राम वन को गये हों वह अपनी स्त्रियों में मन्तनि का सुख न लेने, उस की अपराध हो । जिस की सम्मति से राम वन को गये हों, उसको वह पाप जो राजा, की बान्धव व वृद्ध के नाश डालने से होता

लाक्ष्या मधुमांसेन लोहेन च विपेण च ।	
सदैव विभृयाद्भृत्यान्यस्यायौऽनुमते गतः	३८
सङ्ग्रामे समुपोंढे च शत्रुपक्षभयंकरे ।	
पलायमानो घध्येत यस्यायौऽनुमते गतः	३९
कपालपाणिः पृथिवीमट्टतां चीरसंबृतः ।	
भिक्षमाणो यथोन्मत्तो यस्यायौऽनुमते गतः	४०
मद्यप्रसक्तो भवतु स्त्रीष्वहेषु च नित्यशः ।	
कामक्रोधाभिभूतश्च यस्यायौऽनुमते गतः	४१
मास्य धर्मे मनो भूयाद्धर्मं स निषेवताम् ।	
अपात्रवर्पी भवतु यस्यायौऽनुमते गतः	४२
संचितान्यस्य वित्तानि विविधानि सहस्रशः ।	
दस्युभिर्विप्रलुप्यन्तां यस्यायौऽनुमते गतः	४३
उभे संध्ये शयानस्य यत्पापं परिकल्प्यते ।	
तच्च पापं भवेत्तस्य यस्यायौऽनुमते गतः	४४
यदग्निदायके पापं यत्पापं गुरुतल्पगे ।	
मित्रद्रोहे च यत्पापं तत्पापं प्रतिपद्यताम्	४५

हे । जिसकी राय से राम वन को गये हों, उसको वह दोष लगे जो निषिद्ध चीजों को बेच कुटुम्बियों के भरण से होता है । जिसकी मति से आर्य वन गये हों, वह संग्राम से भागे व वैरी उसका वध करे । जिस की सहमति से राम वन को गये हों, वह हाथमें मुद्दों की खोपड़ी लिये भोख मांगता पृथिवी में धूमा करे । ( ३६-४० )

जिस के मन से राम वन को गये हों, वह मदिरा पान करने व मैथुन करने तथा जुआ में लामक रहे । जिस की मति से आर्य वन को गये हों, उस का मन कभी धर्म में न लगे और अपात्र ही को दान दिया करे । जिसकी अनुमति से आर्य वन को गये हों, उसका बटोरा हुआ धन चोर चुरा ले जायें । जिसकी मति से राम वन को गये हों, उसको प्रातः व सायं की सन्ध्या में शयन करने का पार लगे । जिसकी मतिसे आर्य को वनव्राम हुआ हो, उसको वह पाप लगे जो अग्नि लगाने, गुरुतरु पर बैठने व मित्र

देवतानां पितॄणां च मातापित्रोस्तथैव च ।

मा सः कार्पात्सि शुश्रूषां यस्यार्योऽनुमते गतः ४६

सतां लोकात्सतां कीर्त्याः सज्जुष्टात्कर्मणस्तथा ।

भ्रश्यतु क्षिप्रमथैव यस्यार्योऽनुमते गतः ४७

अपास्य मातृशुश्रूषामनर्थं सोऽवतिष्ठताम् ।

दीर्घबाहुर्महावक्षा यस्यार्योऽनुमते गतः ४८

बहुभृत्यो दस्त्रिश्च ज्वररोगसमन्वितः ।

समायात्सततं क्लेशं यस्यार्योऽनुमते गतः ४९

आशामाशंसमानानां दीनानामूर्ध्वचक्षुषाम् ।

अर्थिनां वितथां कुर्याद्यस्यार्योऽनुमते गतः ५०

मायया रमतां नित्यं पुरुषः पिशुनोऽशुचिः ।

राक्षो भीतस्त्वधर्मात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः ५१

ऋतुस्नातां सर्तां भार्यामृतुकालानुरोधिर्नाम् ।

अतिवर्तेत दुष्टात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः ५२

विप्रलुप्तप्रजातस्य दुष्कृतं ब्राह्मणस्य यत् ।

तदेतत्प्रतिपद्येत यस्यार्योऽनुमते गतः ५३

को मारने से होता है । ( ४१-४५ )

जिस की मतिसे आर्य वनको गये हों, उसको पितर और माता पिता की सेवा करने को न मिले । जिस की मतिसे आर्य वनको गये हों, वह सज्जनों के लोक व कीर्ति और कर्मों से भ्रष्ट हो । जिस की सहमति से आर्य वनको गये हों, वह कुमार्थ में चले । जिस की मति से आर्य वन को गये हों, वह दरिद्री हो और ज्वर से मरना पीड़ित रहे । जिसकी मति से आर्य वन को गये हों, वह याचक लोगों की आशा पूरी न कर सके । ( ४६-५० )

जिपके कहने से आर्य वनको गये हों, वह राजा से डरना निश्चय जहां तहां किरा करे । जिसकी मति से आर्य वन को गये हों, वह अपनी ऋतुस्नान स्त्री के साथ भोग न कर सके । जिसकी मतिसे आर्य वन को गये हों, उस को पुत्रादिका पालन न करनेवाले ब्राह्मणकाम्या पाय लगे । जिस हि. ७ ( अयोध्या उ. )

ब्राह्मणाद्योद्यतां पूजां विहन्तु कलुषेन्द्रियः ।	
वालवत्सां च गां दोग्धुर्यस्यार्योऽनुमते गतः	५४
धर्मदारान्परित्यज्य परदारान्निषेवताम् ।	
त्यक्तधर्मरतिर्मूढो यस्यार्योऽनुमते गतः	५५
पानीयदूषके पापं तथैव विषदायके ।	
यत्तदेकः स लभतां यस्यार्योऽनुमते गतः	५६
तृपार्ते सति पानीये विप्रलम्भेन योजयन् ।	
यत्पापं लभते तत्स्याद्यस्यार्योऽनुमते गतः	५७
भक्त्या विषदमानेषु मार्गमाश्रित्य पश्यतः ।	
तेन पापेन युज्येत यस्यार्योऽनुमते गतः	५८
एवमाश्वासयन्नेव दुःखार्तोऽनुपपात ह ।	
विहीनां पतिपुत्राभ्यां कौसल्यां पार्थिवात्मजः	५९
नदा तं शपथैः कष्टैः शपमानमचेतनम् ।	
भरतं शोकसंतप्तं कौसल्या वाक्यमब्रवीत्	६०
मम दुःखमिदं पुत्र भूयः समुपजायते ।	
शपथैः शपमानो हि प्राणानुपरुणास्ति मे	६१

की मति से आर्य वन को गये हों, वह पापात्मा ब्राह्मण के लिए होती पूजा को मिटा दे । जिस की सहमति से आर्य वन को गये हों, वह विवाहिता स्त्री को छोड़ अन्य स्त्रियों के सहवास में रहे । ( ५१-५५ )

जिस की मति से आर्य वन को गये हों, उसको जल भ्रष्ट करनेवाले व विष भोजन करानेवालेकासा पाप लगे । जिसकी मति से आर्य वन को गये हों, उसको वह पाप लगे जो प्यासे मनुष्यको पानी न पिलाने से लगता है । जिस की मति से आर्य वन को गये हों, उसको वह पाप लगे जो उन मध्यस्थों को लगता है जो न्याययुक्त विचार नहीं करते। एवं शपथ या पतिपुत्रहीन कौसल्या को समझाते भरत दुःखी हो गिर पड़े । तब नृसिंह तब शोकसन्तप्त भरत से कौसल्या बोली । ( ५६-६० )

हे पुत्र ! यद्यपि तुम इन शपथों से मेरे प्राणोंको रोकते हो, तो भी तुम

दिप्या न चलितो धर्मादात्मा ते सहलक्षणः \* ।

यत्स सत्यप्रतिज्ञो हि सतां लोकानवाप्स्यसि ६२

इत्युक्त्या चाङ्गमानीय भरतं भ्रातृवत्सलम् ।

परिष्वज्य महाबाहुं रुरोद भृशदुःखिता ६३

एवं विलपमानस्य दुःखार्तस्य महात्मनः ।

मोहाच्च शोकसंरम्भाद्भूय लुलितं मनः ६४

लालप्यमानस्य विचेतनस्य प्रनष्टबुद्धेः पतितस्य भूमी ।

मुहुर्मुहुर्निःश्वसतश्च दीर्घं सा तस्य शोकेन जगाम रात्रिः ६५

इत्यार्षे श्री०वा०आदिनव्येऽयोध्याकाण्डे पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥७५॥ [२९७४]

पञ्चसप्ततितमः सर्गः ।

तमेवं शोकसंतप्तं भरतं कैकयीसुतम् ।

उवाच वदतां श्रेष्ठो वसिष्ठः श्रेष्ठवागृषिः १

अलं शोकेन भद्रं ते राजपुत्र महायशः ।

को कष्टित देख मुझे अधिक कष्ट होता है । हे वत्स ! भाग्य की बात है कि तुम्हारा आत्मा धर्म से चलायमान नहीं हुआ, इस से तुम सत्यमति हो । यह कह भरत को गोदमें बिठा और छाती से लगा कौसल्या रोने लगी । भरत का मन भी दुःख के मारे पीड़ित हो व्यथित हो गया । और निचारहीन तथा भागरहित होकर भूमिपर गिरे हुए और दीर्घ निःश्वस करते हुए भरतके शोकमें ही वह रात्रि बीत गई । ( ६१-६५ )

यहां पंचदत्तरवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

शोकमन्तव्य भरत से वसिष्ठ बोले- हे राजपुत्र ! अब इस शोकको छोड़ो,

६२ वे श्लोक में निर्णयसागर एवं गुजरार्थी मुद्रित प्रतियों में 'सहलक्षणः' पाठ मिलता है और भाष्यकार भी 'शुभलक्षणैः सहितः' ऐसा ही अर्थ देते हैं । गोविन्दराजीय एवं मद्रास की प्रतियों में 'महलक्ष्मणः' पद मिलता है, जिसका अर्थ यूँ दिया है कि 'सहलक्ष्मण लक्ष्मणवत्' याने 'लक्ष्मणवत् नव्यप्रतिज्ञोऽसि ।' नेरी राम में तो 'सहलक्षण' पाठही ठीक पंचता है ।



प्राप्तकालं नरपतेः कुरु संयानमुत्तमम्	२
वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा भरतो धरणीं गतः ।	
प्रेतकृत्यानि सर्वाणि कारयामास धर्मवित्	३
उद्धृत्य तैलसंसेकात्स तु भूमौ निवेशितम् ।	
आर्पीतवर्णवदनं प्रसुप्तमिव भूमिपम्	४
संवेद्य शयने चाग्न्ये नानारत्नपरिष्कृते ।	
ततो दशरथं पुत्रो विललाप सुदुःखितः	५
किं ते व्यवसितं राजन्प्रोपिते मय्यनागते ।	
विवास्य रामं धर्मज्ञं लक्ष्मणं च महाबलम्	६
क्व यास्यसे महाराज हित्वेमं दुःखितं जनम् ।	
हीनं पुरुषसिंहेन रामेणाक्लिष्टकर्मणा	७
योगक्षेमं तु तेऽव्यग्रं कोऽस्मिन्कल्पयिता पुरे ।	
त्वयि प्रयाते स्वस्तात रामे च वनमाश्रिते	८
विधवा पृथिवी राजंस्त्वया हीना न राजते ।	
हीनचन्द्रेव रजनी नगरी प्रतिभाति माम्	९
एवं विलपमानं तं भरतं दीनमानसम् ।	

स्वर्गगत दशरथजी की किया करो, वसिष्ठ की बात सुन पृथिवीमें पड़े भरत ने उठ प्रेतकार्य करनेके लिये आज्ञा दी । राजा का शरीर तैलसे निकलवा भूमिमें रखवा गया । उस समय राजा का शरीर पीला होगया था । तदनु रत्नजडित पलंग पर उत्तम बिछौने बिठा उसपर राजा को लिटा दुःखित हो भरत विलाप करने लगे । ( १-५ )

राजन् ! आपने मुझे विदेश को भेज जाने भी न दिया और बीच ही में राम लक्ष्मणको वनवाम दे दिया ! हे पुररसिह ! अलौकिक कर्म करनेवाले रामरहित दुःखित हमें छोड़ कहां जाते हो ? तात ! तुम तो स्वर्ग को चले, राम वनको चले गये, अब इस पुरी में योगक्षेम कौन करेगा ? राजन् ! तुम बिना यह वसुन्धरा विधवा हो गई, यह नगरी चन्द्ररहित रात्रिके समान शोभाजन्य जान पड़ती है । ( ६-९ )

अब्रवीद्वचनं भूयो वसिष्ठस्तु महामुनिः	१०
प्रेतकार्याणि यान्यस्य कर्तव्यानि विशंपतेः ।	
तान्यव्यग्रं महाबाहो क्रियतामविचारितम्	११
तथेति भरतो वाक्यं वसिष्ठस्याभिपूज्य तत् ।	
ऋत्विक्पुरोहिताचार्यास्त्वरयामास सर्वशः	१२
ये त्वग्नयो नरेन्द्रस्य अग्न्यागाराद्वहिष्कृताः ।	
ऋत्विग्भिर्याजकैश्चैव ते ह्वयन्ते यथाविधि	१३
शिविकायामथारोप्य राजानं गतचेतनम् ।	
वाष्पकण्ठा विमनसस्तमूचुः परिचारकाः	१४
हिरण्यं च सुवर्णं च वासांसि विविधानि च ।	
प्रकिरन्तो जना मार्गे नृपतेरग्रतो ययुः	१५
चन्दनागुरुनिर्यासान्सरलं पद्मकं तथा ।	
देवदारूणि चाहृत्य क्षेपयन्ति तथापरे	१६
गन्धानुच्चावचांश्चान्यांस्तत्र गत्वाथ भूमिपम् ।	
तत्र संवेशयामासुश्चितामध्ये तमृत्विजः	१७
तदा हुताशनं हुत्वा जेपुस्तस्य तदृत्विजः ।	
जगुश्च ते यथाशास्त्रं तत्र सामानि सामगाः	१८
शिविकाभिश्च यानैश्च यथाहं तस्य योषितः ।	

एवं दान रोते भरत से वसिष्ठ फिर बोले— महाबाहो ! अब महाराज के जो जो प्रेतकार्य हैं, उनको बिना विचार जैसे मैं बताऊं करो । वसिष्ठ की बात सुन भरतने पितृमेघ के लिये ऋत्विज आदि को बहुत शीघ्र बुलवाया । ऋत्विज से अग्नि को प्रज्वलित करवा उसमें आहुतियां करवाईं । तदनु राजा के शव को पालकी में रख रोदन करते परिचारकोंने उठाया । आगे आगे चांदी सोना और नाना उत्तम वस्त्र लुटाते हजारों मनुज्य चले । (१०-१५)

एवं सरयू तट पर पहुँचा तथा चन्दन, अगरु, गुग्गुलु आदि उत्तम काष्ठ ला कर चिता बनाई । उस चिता में अन्य नाना सुगन्धित वस्तु डाल ऋत्विजोंने राजा को उठा उसपर लिटाया । भरत से चिता में आग लगवा कर ऋत्विज मन्त्र पढ़ने लगे, सामवेदपाठी साम गाने लगे । तदनु सवारियों

नगरान्निर्ययुस्तत्र वृद्धैः परिवृतास्तथा १९

प्रसव्यं चापि तं चक्रुर्ऋत्विजोऽग्निचितं नृपम् ।

स्त्रियश्च शोकसंतप्ताः कौसल्याप्रमुखास्तदा २०

कौञ्चीनामिव नारीणां निनादस्तत्र शुश्रुवे ।

आर्तानां करुणं काले क्रोशन्तीनां सहस्रशः २१

ततो रुदन्त्यो विवशा विलप्य च पुनः पुनः ।

यानेभ्यः सरयूतीरमवतेरुर्नृपाङ्गनाः २२

कृत्वोदकं ते भरतेम सार्धं नृपाङ्गनामन्त्रिपुरोहिताश्च ।

पुरं प्रविश्याधुपरीतनेत्रा भूमौ दशाहं व्यनयन्त दुःखम् २३

इत्यार्षे श्री० वा० आदिमण्डयेऽयोध्याकाण्डे षट्सप्ततितमः सर्गः ॥७६॥[२९९७]

सप्तसप्ततितमः सर्गः ।

ततो दशाहेऽतिगते कृतशौचो नृपात्मजः ।

द्वादशेऽहनि संप्राप्ते श्राद्धकर्माण्यकारयत् १

ब्राह्मणेभ्यो धनं रत्नं ददावन्नं च पुष्कलम् ।

वास्तिकं बहु शुक्लं च गाश्चापि बहुशस्तदा २

दासीर्दासांश्च यानानि वेदमानि सुमहान्ति च ।

पर सवार दशरथ की रानियां बृद्ध लोगों के साथ नगर से निकली । वहाँ आ चिताग्रिमें प्राप्त राजाकी प्रदक्षिणा भरत व कौसल्यादि के साथ ऋत्विजों की । ( १६-२० )

तब महाराज की कौसल्यादि सहस्रों स्त्रियों का रोदन चिह्वाती हुई कुररी कौञ्चियों के समान सुनाई देता था । एवं महाराज की स्त्रियां रोदन करती हुई सरयू के समीप आईं । उन सबोंने भरत और पुरोहितके साथ राजाको जलांजलि दी तथा पुरोहित राजमहिषी ऋत्विजों सहित सब लोग नगर को लौट आये और दश दिन तक दुःखित हो ब्रह्मचर्यादि नियम से व्यतीत किये । ( २१-२३ )

यहाँ छहत्तरवो सर्ग समाप्त हुआ ।

भरतने दशाहादि कर बारहवें दिन श्राद्ध किया । ब्राह्मणों को धन, रत्न, अन्न, जग, चांदी, सुवर्ण, गाय, आदि दान दिये । दासदासियों, रथ, उंट,

ब्राह्मणेभ्यो ददौ पुत्रे राक्षसस्यौर्ध्वदेहिकम्	३
ततः प्रभातसमये दिवसे च त्रयोदशे ।	
विललाप महाबाहुर्भरतः शोकमूर्च्छितः	४
शब्दापिहितकण्ठश्च शोधनार्थमुपागतः ।	
चितामूले पितुर्वाक्यमिदमाह सुदुःखितः	५
तात यस्मिन्निष्ठोऽहं त्वया भ्रातरि राघवे ।	
तस्मिन्वनं प्रव्रजिते शून्ये त्यक्तोऽस्म्यहं त्वया	६
यस्या गतिरनाथायाः पुत्रः प्रव्राजितो वनम् ।	
तामभ्यां तात कौसल्यां त्यक्त्वा त्वं क्व गतो नृप	७
दृष्ट्वा भस्मारुणं तच्च दग्धास्थिस्थानमण्डलम् ।	
पितुः शरीरनिर्वाणं निष्टनन्विपसाद ह	८
स तु दृष्ट्वा रुदन्दीनः पपात धरणीतले ।	
उत्थाप्यमानः शक्रस्य यन्त्रध्वज इवाच्छ्रितः	९
अभिपेतुस्ततः सर्वे तस्यामात्याः शुचिधृतम् ।	
अन्तकाले निपतितं ययातिमृपयो यथा	१०
शत्रुघ्नश्चापि भरतं दृष्ट्वा शोकपरिप्लुतम्	
विसंस्रो न्यपतद्रूमौ भूमिपालमनुस्मरन्	११

तथा सामग्रीसं भरे गृह भरतने ब्राह्मणों को दिये । तेरहवें दिन भरत शोक से मूर्च्छित हो रोदन करने लगे । और रोते हुए वहां गये, जहां राजा का दाह किया था, गद्गद हो कहने लगे । ( १-५ )

तात ! जिन भाई राम को हमें आपने सौंपा था, वे तो वन को चले गये । अब हमारा रक्षक कोई नहीं रहा । तात ! कौसल्या-पुत्र राम को वन भेज कौसल्या को अनाथ कर आप कहां चले गये ? यह कह जहां दशरथ के हाड जले थे, सफेद भस्म पड़ी थी, पिता की याद कर रोते रोते वहीं बैठ गये तथा रोते रोते मूर्च्छित हो भूमि में गिर पड़े । उस समय भरत के मंत्री आदि सब शोकातुर हो गये । ( ६-१० )

शत्रुघ्न भी भरत को शोक में दूबा देख राजा को याद कर गिर पड़े ।

उन्मत्त इव निश्चितो विललाप सुदुःखितः ।  
 स्मृत्वा पितुर्गुणाङ्गानि तानि तानि तदा तदा १२  
 मन्थराप्रभवस्तीव्रः कैकेयीग्राहसंकुलः ।  
 वरदानमयोऽक्षोभ्योऽमल्लयच्छोकसागरः १३  
 सुकुमारं च बालं च सततं लालितं त्वया ।  
 क तात भरतं हित्वा विलपन्तं गतो भवान् १४  
 ननु भोज्येषु पानेषु वस्त्रेष्वभरणेषु च ।  
 प्रचारयति सर्वान्नस्तनः कोऽद्य करिष्यति १५  
 अवदारणकाले तु पृथिवी नावदीर्यते ।  
 विहीना या त्वया राज्ञा धर्मज्ञेन महात्मना १६  
 पितरि स्वर्गमापन्ने रामे चारण्यमाश्रिते ।  
 किं मे जीवितसामर्थ्यं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् १७  
 हीनो भ्रात्रा च पित्रा च शून्यामिक्ष्वाकुपालिताम् ।  
 अयोध्यां न प्रवेक्ष्यामि प्रवेक्ष्यामि तपोवनम् १८  
 तयोर्विलपितं श्रुत्वा व्यसनं चाप्यवेक्ष्य तत् ।  
 भृशमार्ततरा भूयः सर्व एवानुगामिनः १९  
 ततो विपण्णौ श्रान्तौ च शत्रुघ्नभरताबुभौ ।

अति दुःखित वे उन्मत्त मनुष्य समान विलाप करने लगे । मन्थरा की उक्ति से उत्पन्न शोकसागर, कैकेयी के वचन ही घड़ियाल, राजा का वरदान ही जिस में अथाह जल ऐसे सागर में रीने रोते शत्रुघ्न ने भरतादिकों को हुवा दिया । वे बोले— हे तात ! अनि सुकुमार भरत को रोते छोड़ आप किधर चले गये ? आज तक तो भोजन वस्त्र भूषणादि के लिये हम सब को आप प्रेरणा करते थे, अब कौन करेगा ? ( ११-१५ )

हा ! आप ऐसे धर्मज्ञ व महात्मा राजा बिना यह पृथिवी अवदारण के ममय फट नहीं गई । पिता स्वर्ग को चले गये, अब हमें जीने से क्या प्रयोजन ? यह पुरी अब बिना राजा की पड़ी है, इस में अब न जा तपोवन को हम भी चले जायेंगे । दोनों भाइयों का ऐसा विलाप देख सब मन्त्री

धरायां स व्यचेष्टेतां भग्नशृङ्गाविवर्षभौ	२०
ततः प्रकृतिमान्वैद्यः पितुरेपां पुरोहितः ।	
वसिष्ठो भरतं वाक्यमुत्थाप्य तमुवाच ह	२१
त्रयोदशोऽयं दिवसः पितुर्वृत्तस्य ते विभो ।	
सावशेषास्थितिचये किमिह त्वं विलम्बसे	२२
त्रीणि द्वन्द्वानि भूतेषु प्रवृत्तान्यविशेषतः ।	
तेषु चापरिहार्येषु नैवं भवितुमर्हसि	२३
सुमन्त्रश्चापि शत्रुघ्नमुत्थाप्याभिप्रसाद्य च ।	
श्रावयामास तत्त्वज्ञः सर्वभूतभवाभवां	२४
उत्थितौ तौ नरव्याघ्रौ प्रकाशेते यशस्विनौ ।	
वर्षात्परिग्लानौ पृथग्निन्द्रध्वजाविव	२५
अश्रूणि परिमृन्दन्तौ रक्ताक्षौ दीनभाषिणौ ।	
अमात्यास्त्वरयन्ति स तनयौ चापराः क्रियाः	२६

इत्यार्षे श्री० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे सप्तमस्तोत्रमः सर्गः ॥७७॥ [२०-२६]

पुरोहितादि बहुत दुःखित हुए । भरत शत्रुघ्न दोनों विह्वल हो भूमि में गिर पड़े । ( १६-२० )

यह दृशा देख वसिष्ठ अपने हाथों से भरत को उठा कहने लगे कि— 'तात ! तुम्हारे पिता के दाह का यह तेरहवां दिन है व अस्थिसंचयन अभी शेष है, अब दण्ड के करने में क्यों देरी करते हो ? संसार में तीन द्वन्द्व हैं, प्रथम भूख प्यास, दूसरा शोक मोह, तीसरा जरा मृत्यु । ये व्यापक द्वन्द्व हैं जन्म मरण व लाभ अलाभ, सुख दुःख । ये बाने सब प्राकृत मनुष्योंको होती है, तुम सरीखे लोगों को इन में न फँसना चाहिये । वसिष्ठने ऐसा कह भरत को समझाया और सुमन्त्रने शत्रुघ्न को समझाया । समझाने से भरत शत्रुघ्न उठके बैठे । वे दोनों भामू पोछते हुए जो कुछ क्रिया करने को शेष थी, शीघ्र करने लगे । ( २१-२६ )

यहां मतहत्तरवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

स वली बलवत्क्रोधाद्गृहीत्या पुरुषर्षभः ।  
 कैकेयीमभिनिर्भर्त्स्य वैभाषे परुषं वचः १९  
 तैर्वाक्यैः परुषैर्दुःखैः कैकेयी भृशदुःखिता ।  
 शत्रुघ्नभयसंत्रस्ता पुत्रं शरणमागता २०  
 तं प्रेक्ष्य भरतः कुब्जं शत्रुघ्नमिदमब्रवीत् ।  
 अवध्याः सर्वभूतानां प्रमदाः क्षम्यतामिति २१  
 हन्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम् ।  
 यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम् २२  
 इमामपि हतां कुब्जां यदि जानाति राघवः ।  
 त्वां च मां चैव धर्मात्मा नाभिभाषिष्यते ध्रुवम् २३  
 भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नो लक्ष्मणानुजः ।  
 न्यवर्तत ततो दोषात्तां मुमोच च मूर्च्छिताम् २४  
 सा पादमूले कैकेय्या मन्थरा निपपात ह ।  
 निःश्वसन्ती सुदुःखार्ता कृपणं विललाप ह २५

शत्रुघ्नविक्षेपविमूढसंज्ञां समीक्ष्य कुब्जां भरतस्य माता ।

शनैः समाश्वसयदार्तरूपां क्रौञ्चीं विलग्नमिव वीक्षमाणाम् २६

इत्यार्षे श्री० बा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डेऽष्टसप्ततितमः सर्गः ॥७८॥ [३०४९]

गहनों से वह मन्दिर बड़ा शोभित हुआ । कैकेयी यह देख मन्थराके छुड़ाने को आई, पर शत्रुघ्न ने उसे अलग कर अति कठोर वाक्य कहे । उन कठोर वचनों को सुन कैकेयी बड़ी दुःखी हुई और भरत के पास गई । (१६-२०)

शत्रुघ्न से भरत बोले, हे शत्रुघ्न ! स्त्रियां अवध्य हैं, सो अब क्षमा करो । यदि मुझे यह ज्ञात होता कि राम मुझको मानृघातक समझ मेरी निन्दा न करेंगे तो इस पापिनी कैकेयी को मैं मार डालता । इस मन्थरा को मारा सुन राम निश्चय से हम से बात भी न करेंगे । भरत के ऐसे वचन सुन शत्रुघ्न ने मन्थरा की मूर्च्छित अवस्था में छोड़ दिया । मन्थरा कैकेयी के चरणों पर गिर विलाप करने लगी । तब उस शत्रुघ्न से भयभीत हुई मन्थराका सान्त्वन कैकेयी ने किया । (२१-२६)

यहां अठहत्तरवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

एकोनाशीतितमः सर्गः ।

ततः प्रभातसमये दिवसेऽथ चतुर्दशे ।	
समेत्य राजकर्तारो भरतं वाक्यमब्रुवन्	१
गतां दशरथः स्वर्गं यो नो गुरुतरो गुरुः ।	
रामं प्रवाज्य वै ज्येष्ठं लक्ष्मणं च महाबलम्	२
त्वमद्य भव नो राजा राजपुत्र महायशः ।	
संगत्या नापराधोति राज्यमतदनायकम्	३
आभिषेचनिकं सर्वमिदमादाय राघव ।	
प्रतीक्षते त्वां स्वजनः श्रेणयश्च नृपात्मज	४
राज्यं गृहाण भरत पितृपैतामहं ध्रुवम् ।	
अभिषेचय चात्मानं पाहि चास्मान्नरर्णभ	५
आभिषेचनिकं भाण्डं कृत्वा सर्वं प्रदक्षिणम् ।	
भरतस्तं जनं सर्वं प्रत्युवाच धृतव्रतः	६
ज्येष्ठस्य राजता नित्यमुचिता हि कुलस्य नः ।	
नैवं भवन्तो मां वक्तुमर्हन्ति कुशला जनाः	७
रामः पूर्वो हि नो भ्राता भविष्यति महीपतिः ।	
अहं त्वरण्ये वत्स्यामि वर्षाणि नव पञ्च च	८
युज्यतां महती सेना चतुरङ्गमहाबला ।	
आनयिष्याम्यहं ज्येष्ठं भ्रातरं राघवं वनात्	९

ततः चौदहवें दिन प्रातः राजकारभारी लोग इकट्ठे हो भरत से बोले कि, राम लक्ष्मण को वन भेज राजा दशरथ स्वर्ग को चले गये । अब यह राज्य राजारहित है, सो हम लोगों के राजा आप होवें । हे राजपुत्र ! अभिषेक की सामग्री लिये थे मन्त्री पुरोहितादि रखे हैं । अतः हे भरत ! अपना अभिषेक कराह्ये व हम लोगों की रक्षा कीजिये । ( १-५ )

यह सुन परम व्रतधारी भरत बोले- हमारे कुल में आज तक ज्येष्ठ ही राजा होता चला आया है, इससे आप लोग ऐसा न कहें । हम में ज्येष्ठ श्रीराम हैं, वही राजा होंगे । अतः सेना तैयार करो, मैं ज्येष्ठ भाई को वन



आभिषेचनिकं चैव सर्वमेतदुपस्कृतम् ।  
 पुरस्कृत्य गमिष्यामि रामहेतोर्चनं प्रति १०  
 तत्रैव तं नरव्याघ्रमभिषिच्य पुरस्कृतम् ।  
 आनयिष्यामि वै रामं हव्यवाहमिवाध्वरात् ११  
 न सकामां करिष्यामि स्वामिमां पुत्रगृद्धिनीम् ।  
 वने वत्स्याम्यहं दुर्गं रामो राजा भविष्यति १२  
 क्रियतां शिल्पभिः पन्थाः समानि विपमाणि च ।  
 रक्षिणश्चानुसंयान्तु पथि दुर्गविचारकाः १३  
 एवं संभाषमाणं तं रामहेतोर्नृपात्मजम् ।  
 प्रत्युवाच जनः सर्वः श्रीमद्वाक्यमनुत्तमम् १४  
 एवं ते भाषमाणस्य पद्मा श्रीरूपतिष्ठताम् ।  
 यस्थं ज्येष्ठे नृपसुते पृथिवीं दातुमिच्छसि १५

अनुत्तमं तद्वचनं नृपात्मजः प्रभाषितं संश्रवणे निशम्य च ।  
 प्रहर्षजास्तं प्रतिवाप्पविन्दयो निपेतुरार्यानननेत्रसंभवाः १६  
 ऊचुस्ते वचनमिदं निशम्यहृष्टाः सामात्याः सपरिपदो धियातशोका  
 पन्थानं नरवर भक्तिमाञ्जनश्च व्यादिष्टस्तत्र वचनाच्च शिल्पिवर्गः  
 इत्यपि श्रीम०वा० आदिभाष्येऽयोध्याकाण्डे एकोनाशीतितमः सर्गः॥७९॥ [३०६६]  
 से बुला लाऊंगा । अभिषेक-सामग्री भी राम के लिये साथ ही चले । वहीं  
 श्रीराम का अभिषेक करके उन्हें यहां लावेंगे । कैकयी की इच्छा के विरुद्ध  
 राम ही राजा होंगे और मैं वनमें निवास करूंगा । बेलदार आदि लोग मार्ग  
 समान करें, बहुत चतुर लोग मार्गकी रक्षाके लिये भी जायें । ( ६-१३ )

जब भरतने यह कहा, तो सब लोग यूँ बोले- जिस से आप राम को  
 यह राज्य देने का विचार करते हैं, इस से आप को लक्ष्मी व शोभा मिले ।  
 भरत का वचन सुन सब प्रसन्न हुए । सब आनन्द के आंसू बहाने लगे ।  
 भरत का भाषण सुनकर सभा और अमात्योंके साथ सब लोग आनंदित हो  
 कहने लगे- हे पुरोत्तम ! तुम्हारी आज्ञानुसार मार्ग करनेवाले और रक्षकों  
 को आज्ञा दी है । ( १४-१७ )

यहां उनामीवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

अशीतितमः सर्गः ।

अथ भूमिप्रदेशज्ञाः सूत्रकर्मविशारदाः ।	
स्वकर्माभिरताः शूराः खनका यन्त्रकास्तथा	१
कर्मान्तिकाः स्थपत्यः पुरुषा यन्त्रकोविदाः ।	
तथावर्धकयश्चैव मार्गिणो वृक्षतक्षकाः	२
सूपकाराः सुधाकारा वंशचर्मकृतस्तथा ।	
समर्था ये च द्रष्टारः पुरतश्च प्रतस्थिरे	३
स तु हर्षान्मुद्देशं जनौघो विपुलः प्रयान् ।	
अशोभत महावेगः सागरस्येव पर्वणि	४
ते स्ववारं समास्थाय वर्त्मकर्मणि कोविदाः ।	
करणैर्विविधोपेतैः पुरस्तात्संप्रतस्थिरे	५
लता बल्लीश्च गुल्माश्च स्थाणून्श्मन एव च ।	
जनास्ते चक्रिरे मार्गं छिन्दन्तो विविधान्द्रुमान्	६
अवृक्षेषु च देशेषु केचिद्वृक्षानरोपयन् ।	
केचित्कुठारैश्चैव दात्रैश्छिन्दन्कचित् कचित्	७
अपरे वीरणस्तम्बान्बलिनो फलवत्तराः ।	
विधमन्ति स दुर्गाणि स्थलानि च ततस्ततः	८

तदनन्तर भूमिप्रदेशज्ञ सूत्रकर्मविशारद तथा नदी आदि के तरने के लिये शीघ्र नाव आदि यन्त्र प्रस्तुत करनेवाले लोग चले । श्रमर्जीवी, यन्त्रकोविद, मार्गरक्षक व वृक्षतक्षक लोग चले । सूपकार, सुधाकार, बांस का बकला छीलनेवाले तथा उन मार्गों में कभी न कभी जानेवाले लोग खाना हुए । उन लोगों के झुण्ड का वेग ऐसी शोभा देता था जैसे पूर्णमासीके दिन समुद्र । वे लोग अपनी अपनी जाति के झुण्डों को व सामग्री साथ ले आगे को चले । और मार्ग के अवरोधक जितने लता, बल्ली, झाड़ू वृक्ष आदि थे उन सब को काट काट मार्ग ठीक करने लगे । ( १-६ )

किन्हीं ने अवृक्षक देशों में नये वृक्ष लगा दिये, वहीं वृक्षों की बड़ी शाखाओं को छांट डाला, मोई कोई बलवान् टूटोंको उखाड़ फेंक देते और

अपरेऽपूरयन्कूपान्पांसुभिः श्वभ्रमायतम् ।	
निम्नभागाँस्तथैवागु समांश्चक्रुः समन्ततः	९
यवन्धुर्वन्धनीयांश्च क्षोद्यान्संचुक्षुदुस्तथा ।	
विभिदुर्मेदनीयांश्च तांस्तान्देशास्तरास्तदा	१०
अचिरेण तु कालेन परिवाहान्वहृदकान् ।	
चक्रुर्बहुविधाकारान्सागरप्रतिमान्वहन्	११
निर्जलेषु च देशेषु खानयामासुरुत्तमान् ।	
उदपानान्वहुविधान्वेदिकापरिमाण्डितान्	१२
ससुधाकुट्टिमतलः प्रपुष्पितमहोरुहः ।	
मत्तोद्घुष्टाद्विजगणः पताकाभिरलंकृतः	१३
चन्दनोदकसंसिक्तो नानाकुसुमभूषितः ।	
यत्तशोभत सेनायाः पन्थाः सुरपथोपमः	१४
आज्ञाप्याथ यथाशक्ति युक्तास्तेऽधिहृता नराः ।	
रमणीयेषु देशेषु बहुस्वादुफलेषु च	१५
यो निवेशस्त्वभिप्रेतो भरतस्य महात्मनः ।	
भूयस्तं शोभयामासुर्भूषाभिर्भूषणोपमम्	१६

विषम स्थलों को बराबर करते थे । मार्ग के अवरोधक कुओं और गडहों को मिट्टी आदि से पाट समान कर देते थे । नदियों आदि में पुल बांध देते, ईंट कट्ठडों को अलग फेंक देते, जल आने की रकावट को दूर कर देते थे । अल्प काल में अनेक धारा वाली नदी की धारा को एक ही स्थानपर लाकर पुल बांधकर समुद्रों के आकार में कर दिया । ( ७-११ )

निर्जल स्थानों में बापी कूप आदि खोद सुन्दर घाट आदि बना दिये, तथा फूलदार पेड़ भी युक्ति से लगा दिये । स्थान स्थानपर पताकायें बांध दी गईं । उस सड़क पर जल से छिड़काव कराया गया । सेना जाने का मार्ग ऐसा शोभित हुआ जैसे अमरावती का मार्ग । उन लोगों ने सुन्दर रमणीय देशों में नाना स्वाद युक्त फलवाले पेड़ लगा दिये । जैसा स्थान अभीष्ट था, वैसा ही उन लोगों ने बना दिया । ( ११-१६ )

नक्षत्रेषु प्रशस्तेषु मुहूर्तेषु च तद्विदः ।

निवेशान्स्थापयामासुर्भरतस्य महात्मनः १७

बहुपांसुचयाश्चापि परिखाः परिवारिताः ।

तत्रेन्द्रनीलप्रतिमाः प्रतालीविरशोभिताः १८

प्रासादमालासंयुक्ताः सौधप्राकारसंवृताः ।

पताकाशोभिताः सर्वे सुनिर्मितमहापथाः १९

वितर्दिभिरिवाकाशे विटङ्काग्रविमानकैः ।

समुच्छ्रितैर्निवेशास्ते यभुः शक्रपुरोपमाः २०

जाह्नवी तु समासाद्य विविधद्रुमकाननाम् ।

शीतलामलपानीयां महामीनसमाकुलाम् २१

सचन्द्रतारागणमण्डितं यथा नभः क्षपायाममलं विराजते ।

नरेन्द्रमार्गः स तदा व्यराजत क्रमेण रम्यः शुभशिल्पिनिर्मितः २२

इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिशब्देऽयोध्याकाण्डेऽनीतितमः सर्गः ॥८०॥ [३०८८]

पश्चात् अच्छे नक्षत्र एवं मुहूर्त देखकर उन्होंने महामा भरतजीके डेरोंको हर जगह खड़ा किया । उम शिविरके इर्दगिर्द खाइयोंके साथ बँधे हुए दुर्ग इन्द्रनील पहाड़की नाई ऊँचे ऊँचे थे और सुहावने सदकोंकी बजह सुन्दर दीख पड़ते थे । भिट्टीके धनगिनती गोले एकके ऊपर एक रखकर इनका निर्माण हुआ था । वे गर्भा शिविर महलोंके झुरमुटमें युक्त थे, राजमहल जैसे आकारसे भरे थे, झंडियोंसे सुहावे थे और उनमें जानेके लिए बड़े बड़े मार्ग बड़ी अच्छी तरह तैयार कर रखे थे । कबूतरोंके गृहोंसे युक्त एवं आत्मानकी चेदियोंकी तरह दिग्याई देनेवाले सात सात मैजिलवाले वे शिविर इन्द्रकी नगरियोंके तुल्य दीख पड़ते थे । ठंडे एवं निर्मल जलसे पूर्ण, पानीमें घूमनेवाले बड़े बड़े जन्तुओंके नरीपड़ी एवं भौंति भौतिके वृक्ष बनोसे समृद्ध जन्तुकन्या गंगाके ऊपरसे भी चला गया और आगे आगे तो ज्यादा सुहावना मालूम पड़नेवाला वह राजनय मिते कुशल कारीगरोंने बनाया था, ठीक उसी भौंति जगमगाने लगा जैसे रात्रिके समय चन्द्र एवं मितारोंसे विभूषित निर्मल आकाश सुन्दर दिग्याई देने हि० ८ (अयोध्या, उ.)

एकाशीतितमः सर्गः ।

ततो नान्दीमुखीं रात्रिं भरतं सूतमागधाः ।	
तुष्टुबुः सविशेषज्ञाः स्तवैर्मङ्गलसंस्तवैः	१
सुवर्णकोणाभिहतः प्राणदद्यामदुन्दुभिः ।	
दध्मुः शङ्खाश्च शतशो बाद्यांश्चोश्चावचस्वरान्	२
स तूर्यघोषः सुमहान्दिवमापूरयन्निव ।	
भरतं शोकसन्तप्तं भूयः शोकैररन्धयत्	३
ततः प्रबुद्धो भरतस्तं घोषं संनिवर्त्य च ।	
नाहं राजेति चोक्त्वा तं शत्रुघ्नमिदमब्रवीत्	४
पश्य शत्रुघ्न कैकेय्या लोकस्यापकृतं महत् ।	
विसृज्य मयि दुःखानि राजा दशरथो गतः	५
तस्यैषा धर्मराजस्य धर्ममूला महात्मनः ।	
परिभ्रमति राजश्रीर्नारिवाकर्णिका जले	६
यो हि नः सुमहाघातः सोऽपि प्रवाजितो वने ।	
अनया धर्ममुत्सृज्य मात्रा मे राघवः स्वयम्	७
इत्येवं भरतं वीक्ष्य विलपन्तमचेतनम् ।	

लगता है । ( १७-२२ )

यहाँ अस्मीचीं सर्ग समाप्त हुआ ।

जय वह रात्रि बीती तो प्रातः बन्दीजन नाना म्नोंमें, भरत की स्तुति करने लगे । सुवर्ण के दण्ड से दुन्दुभि और अनेक शंखादि बजाये गये । वह बाजोंका शब्द आकाश में व्याप्त हो गया । उसने शोकसन्तप्त भरत को और व्यथित कर डाला । उन शब्दोंको सुन भरत जागे और वे बाजे उन्होंने बन्द करवा कहा कि 'मैं राजा नहीं हूँ ।' इतना कह शत्रुघ्नसे बोले, 'हे शत्रुघ्न ! देखो, कैकेयीने संसार भरका अपकार किया, जिस मे राजा मुझको दुःखों में डाल स्वर्गको चले गये । उस महामा धर्मराजकी राज्यश्री समुद्रमें बिना केवटकी नाव तुल्य इधर उधर भ्रमण करती है । हा ! राजाकी तो यह दशा हुई और रामको कैकेयी ने वनको भेज दिया ।' ( १-७ )

कृपैणा रुदुः सर्वाः सुस्वरं योषितस्तदा	८
तथा तस्मिन्विलपति वसिष्ठो राजधर्मवित् ।	
सभामिक्ष्वाकुनाथस्य प्रविवेश महायशाः	९
शातकुम्भमयीं रम्यां मणिहेमसमाकुलाम् ।	
सुधर्माभिश्च धर्मात्मा सगणः प्रत्यपद्यत	१०
स काञ्चनमयं पीठं स्वस्त्यास्तरणसंवृतम्	
अध्यास्त सर्ववेदज्ञो दूताननुशशास् च	११
ब्राह्मणान्क्षत्रियान्योधानमात्यान् गणवल्लभान् ।	
क्षिप्रमानयताव्यग्राः कृत्यमात्यायिकं हि नः	१२
सराजपुत्रं शत्रुघ्नं भरतं च यशस्विनम् ।	
युधाजितं सुमन्त्रं च ये च तत्र हिता जनाः	१३
ततो हलहलाशब्दो महान्समुदपद्यत ।	
रथैरश्वैर्गजैश्चापि जनानामुपगच्छताम्	१४
ततो भरतमायान्तं शतक्रतुमिवामराः ।	
प्रत्यनन्दन्प्रकृतयो यथा दशरथं तथा	१५
हृद इव तिमिनागसंवृतः स्तिमितजलो मणिशङ्खशर्करः ।	

भरत को पूर्व रोदन करते देख सब स्त्रियां दुःखित हो रोने लगीं । इस प्रकार भरत विलाप कर रहे थे कि वसिष्ठ सभा में आये । उस रमणीय सभा में वसिष्ठ अपने साथियों के साथ आये । सभामें गोलाकार एक सुवर्ण-मय स्थान पर बैठ गये और दूतों को आज्ञा देने लगे कि, 'बहुत ही जल्दी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व अन्य अमात्र्यों को बुलाओ । भरत, शत्रुघ्न तथा उनके मामा युधाजित् और सुमन्त्रादि सब सभासदोंको बुलाओ ।' (८-१३)

ततः रथ घोड़े हार्थी आदि पर चढ़ आते हुये लोगों का शब्द सुनाई दिया । उसी समय भरत भी आये, सभायद्गण राजा दशरथकी न्याई भरत को देख आनन्दित हुए । दशरथपुत्र भरत से सुशोभित वह सभा निमिमन्स्य और जलगज पूर्ण समुद्र के समान दीखने लगी और भरत भी

दशरथसुतशोभिता सभा सदशरथेव यभूव सा पुरा १६

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाष्पीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

द्वयशीतितमः सर्गः ।

[ ३१०४ ]

तामार्यगणसंपूर्णा भरतः प्रग्रहां सभाम् ।

ददर्श युद्धिसंपन्नः पूर्णचन्द्रां निशामिव १

आसनानि यथान्यायमार्याणां विशतां तदा ।

वस्त्राङ्गरागप्रभया द्योतिता सा सभोत्तमा २

सा विद्वज्जनसंपूर्णा सभासु रुचिरा तथा ।

अदृश्यत घनापाये पूर्णचन्द्रेव शर्वरी ३

राज्ञस्तु प्रकृतीः सर्वाः स संप्रेक्ष्य च धर्मवित् ।

इदं पुरोहितो वाक्यं भरतं मृदु चाब्रवीत् ४

तात राजा दशरथः स्वर्गतो धर्ममाचरन् ।

धनधान्यवर्ती स्फीतां प्रदाय पृथिवीं तव ५

रामस्तथा सत्यवृत्तिः सतां धर्ममनुसरन् ।

नाजहात्पितुरादेशं शशी ज्योत्स्नामिवोदितः ६

पित्रा भ्रात्रा च ते दत्तं राज्यं निहतकण्टकम् ।

तद्गुड्क्ष्व मुदितामात्यः क्षिप्रमेवाभिषेचय ७

उदीच्याश्च प्रतीच्याश्च दाक्षिणात्याश्च केवलाः ।

पिताके समानही होनेसे वह सभा दशरथ की सभा के समानही नाममान हुई । ( १४-१६ ) यहाँ इक्ष्वाक्यीयों सर्ग समाप्त हुआ ।

भरत ने आर्यगण से भरी उस सभाको पूर्णमासी के चन्द्रनाके तुल्य शोभित देखा । जितने श्रेष्ठ जन आये उन सबों के वस्त्राभरण चन्द्रनाद्या-नुलेपनो से वह सभा प्रकाशित हो रही थी । सभा सब विद्वज्जनों से पूर्ण थी, सो ऐसी शोभायमान होती थी, जैसे नरद्वक्तुमें पूर्णमासी की रात्रि । सब मंत्री आदिकोंको देख परम धर्मज्ञ वसिष्ठ भरतसे बोले, 'तात ! महाराज दशरथ इस पृथिवी को तुम्हें दे स्वर्गको चले गये । चलने से पूर्व रामको जो आज्ञा दी थी, धर्मान्ना राम ने भी पिता की उस आज्ञाका उल्लंघन नहीं किया । सो यह राज्य तुमको तुम्हारे पिता व बड़े नाई रामने भी दिया

कोट्यापरान्ताः समुद्रा रत्नान्युपहरन्तु ते तच्छ्रुत्वा भरतो वाक्यं शोकेनाभिपरिप्लुतः ।	८
जगाम मनसा रामं धर्मज्ञो धर्मकाङ्क्षया सवाष्पकलया वाचा कलहंसस्वरो युवा ।	९
विललाप सभामध्ये जगहँ च पुरोहितम् चरितग्रह्णचर्यस्य विद्यास्नातस्य धीमतः ।	१०
धर्मे प्रयतमानस्य को राज्यं मद्विधो हरेन् कथं दशरथाज्ञातो भवेद्राज्यापहारक ।	११
राज्यं चाहं च रामस्य धर्मं वक्तुमिहार्हसि ज्येष्ठ श्रेष्ठश्च धर्मात्मा दिलीपनहुपोपम ।	१२
लब्धुमर्हति काकुत्स्थो राज्यं दशरथो यथा अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यं कुर्या पापमहं यदि ।	१३
इक्ष्वाकूणामहं लोके भवेयं कुलपांसनः यद्धि मात्रा कृतं पापं नाहं तदपि रोचये ।	१४
इहस्थो वनदुर्गस्थं नमस्यामि कृताञ्जलिः राममेवानुगच्छामि स राजा द्विपदां वरः ।	१५
त्रयाणामपि लोकानां राघवो राज्यमर्हति	१६

है । अब शीघ्र अभिषेक करके इसको भोगो । उत्तर, पश्चिम व दक्षिणके समुद्र तक वगन स्वर्ग पातालादि व मध्य निवासी करोड़ों देशों के मनुष्य, देवता और समुद्रादि सब तुम को उत्तम रत्न देगे ।' ( १-८ )

यह गुरु का वचन सुन भरत शीघ्र में डूब नतमे राम के समीप पहुँचे और सभा के बीच में विलाप करने तथा गुरु की कुछ निन्दा करते बोले कि, 'महा बुद्धिमान् धर्मात्मा रामका राज्य कौन है जो हर ले? मैं दशरथसे उत्पन्न हो गजपापहारी कैसे होऊँ ? यह राज्य राम का है । वे सब भाइयों में ज्येष्ठ श्रेष्ठ दिलीप व नहुष के तुल्य हैं, वेही राज्य पानेके योग्य हैं । यदि यह नरकदायी कर्म करें तो इक्ष्वाकुवंशके दूषक हों । जो पाप कैसी नी किया है, वह मुझको नहीं रुचता । मैं राम के पीछे जाऊँगा । पुरुषोत्तम राम



तद्वाक्यं धर्मसंयुक्तं श्रुत्वा सर्वे सभासदः ।	
हर्षान्मुमुक्षुरश्रूणि रामे निहितचेतसः	१७
यदि त्वार्यं न शक्यामि विनिवर्तयितुं वनात् ।	
वने तत्रैव वत्स्यामि यथार्यो लक्ष्मणस्तथा	१८
सर्वोपायं तु वर्तिष्ये विनिवर्तयितुं वलात् ।	
समक्षमार्यमिध्राणां साधूनां गुणवर्तिनाम्	१९
विष्टिकर्मान्तिकाः सर्वे मार्गशोधकदक्षकाः ।	
प्रस्थापिता मया पूर्वं यात्रा च मम रोचते	२०
एवमुक्त्वा तु धर्मात्मा भरतो धातृवत्सलः ।	
समीपस्थमुवाचेदं सुमन्त्रं मन्त्रकोविदम्	२१
तूर्णमुत्थाय गच्छ त्वं सुमन्त्र मम शासनात् ।	
यात्रामाज्ञापय क्षिप्रं बलं चैव समानय	२२
एवमुक्तः सुमन्त्रस्तु भरतेन महात्मना ।	
प्रहृष्टः सोऽदिशत्सर्वं यथासंदिग्रामिष्टवत्	२३
तां प्रहृष्टा प्रकृतयो बलाध्यक्षा बलस्य च ।	
श्रुत्वा यात्रां समाज्ञतां राघवस्य निवर्तने	२४
ततो योधाङ्गनाः सर्वा भर्तृन्सर्वान् गृहे गृहे ।	

ही राज्य भोगने के योग्य है ।' ( ९-१६ )

भरत के वचन सुन सब सभासद गण राम में चित्त लगा आनन्द के आँसू बहाने लगे । भरत ने कहा, 'यदि वन से रामको लौटा न सकूँगा, तो उनके संग मैं भी वनमें बसूँगा । साधुओं तथा आप लोगोंको संग ले जाकर राम के लौटानेके लिये सब उपाय करूँगा । अतः मुझे वहाँके लिये यात्रा करना ही रुचता है । मार्गादि शोधक लोग प्रथम ही भेजे जा चुके हैं।' (१७-२०)

भरत इतना कह समीपस्थित सुमन्त्रसे बोले, 'हे सुमन्त्र ! शीघ्र यहाँसे जाओ, सब से राम के पास चलने की बात कहो ।' इस तरह भरत ने जो सुमन्त्रसे कहा तो सुमन्त्र ने जाकर सबको आज्ञा सुनाई । रामके लौटानेके

यात्रागमनमाज्ञाय त्वरयन्ति स्म हर्षिताः २५

ते हयैर्गौरथैः शीघ्रं स्यन्दनैश्च मनोजवैः ।

सहयोपिद्वलाध्यक्षा बलं सर्वमचोदयन् २६

सजं तु तद्वलं दृष्ट्वा भरतो गुरुसंनिधौ ।

रथं मे त्वरयस्वेति सुमन्त्रं पार्श्वतोऽब्रवीत् २७

भरतस्य तु तस्याज्ञां परिगृह्य प्रहर्षितः ।

रथं गृहीत्वोपययौ युक्तं परमवाजिभिः २८

स राघवः सत्यधृतिः प्रतापवान्द्रुवन्सुयुक्तं दृढसत्यविक्रमः ।

गुरुं महारण्यगतं यशस्विनं प्रसादयिष्यन्भरतोऽब्रवीत्तदा २९

तूर्णं त्वमुत्थाय सुमन्त्रं गच्छ बलस्य योगाय बलप्रधानान् ।

आनेतुमिच्छामि हितं वनस्थं प्रसाद्य रामं जगतो हिताय ३०

स सूतपुत्रो भरतेन सम्यगाज्ञापितः संपरिपूर्णकामः ।

शशास सर्वान्प्रकृतिप्रधानान्बलस्य मुख्यांश्च सुहृज्जनं च ३१

लिये आज्ञा की सुन सब अत्यानन्दित हुए । सब घोड़ाओंकी खियां घर घरमें सब मनुष्यों को यात्रा के लिये जल्दी कराने लगीं । सब घोड़ा लोग बैलों, घोड़ों, रथों पर सवार हो, सब सेनाको आज्ञा देने लगे । भरतने सब लोगोंको तैयार हुआ देख सुमन्त्रको रथ तैयार कराने की आज्ञा दी । भरत की आज्ञा पाकर परमहर्षित हो सुमन्त्र घोड़े जोत रथ लाया । (२१-२८)

तब सत्यनिष्ठ, प्रतापवान्, बिलकुल ठीक भाषण करनेवाला, दृढ़ एवं कभी निष्फल न होनेवाले पराक्रमको कर दिखलानेवाला भरतजी, जिसके मनमें एकही ख्याल उठ खड़ा होता था कि बड़े भारी जंगलमें गये हुए पितातुल्य यशस्वी रामको फिर नगर लौट आनेके लिए प्रवृत्त किया जाय, सुमन्त्रसे कहने लगा- 'हे सुमन्त्र ! तू शीघ्र उठकर चला जा और सेनापतियोंको आज्ञा दे कि वे मेनाओंका मंगडन करना शुरु करे, क्योंकि मैं चाहता कि वनमें घाम करनेहारें रामको प्रसन्न बनाकर संसारके हितके लिए वापिस बुला लूं ।' इस भाँति भरतकी स्पष्ट आज्ञा सुनकर, अपनी लालसा पूर्ण होनेके कारण सुमन्त्रने सभी प्रमुख अमात्य, सेनापति एवं सुहृद्

ततः समुत्थाय कुले कुले ते राजन्यवैश्या धृपलाश्च विप्राः ।

अयूयुजन्नुष्टरथान् खरांश्च नागान्द्वयांश्चैव कुलप्रसूतान् ३९

इत्यार्षे श्रामद्रामायणे वान्मीकीये आदिकाण्डेऽथोष्वाकाण्डे व्यशतितमः सर्गः ॥८२॥

श्रयशीलितमः सर्गः ।

[ ३१३६ ]

ततः समुत्थितः कल्यमास्थाय स्यन्दनोत्तमम् ।

प्रययौ भरतः शीघ्रं रामदर्शनकाम्यया १

अग्नतः प्रययुस्तस्य सर्वे मन्त्रिपुरोहिताः ।

अधिरुह्य हयैर्युक्तान् रथान् सर्वैरथोपमान् २

नवनागसद्वन्त्राणि कल्पितानि यथाविधि ।

अन्वयुर्भरतं यान्तमिक्ष्वाकुकुलनन्दनम् ३

पट्टीरथसद्वन्त्राणि धन्विनो विविधायुधाः ।

अन्वयुर्भरतं यान्तं राजपुत्रं यशस्विनम् ४

शतं सहस्राण्यश्वानां समारुढानि राघवम् ।

अन्वयुर्भरतं यान्तं राजपुत्रं यशस्विनम् ५

कैकेयी च मुमित्रा च कौसल्या च यशस्विनी ।

रामानयनसंतुष्टा ययुर्यानेन भास्वता ६

प्रयाताश्चार्यसंघाता रामं द्रष्टुं सलक्ष्मणम् ।

जनौको वह आज्ञा बतला दी । उस समय क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं ब्राह्मण उठने लगे और उन्होंने घरघर जाकर ऊँदोकी गौड़ियों, गदहे, हाथी एवं कुलीन घोड़ोंको यात्राके लिए प्रस्थान करना पड़गा, अतः तैयार कर रखा ।

(२९-३२) यहाँ वयाप्तोर्वी सर्ग समाप्त हुआ ।

प्रातः होते ही भरत रथपर चढ़ राम के दर्शन की इच्छासे शीघ्र ही चले । भरत के आते मन्त्री पुरोहित गण उत्तम उत्तम रथों पर चढ़ चले । जब भरतके ९००० हाथी, ६०००० रथ, आद्युध धारे धनुर्धर लोग अमल्य चले तथा एक लाख मवार भी पीछे पीछे चले । रामके आगमन में सन्तुष्ट हो कैकेयी, मुमित्रा व कौसल्या पालकियों में चढ़ चलीं । जब यह श्रेष्ठ लोगोका समुदाय राम के बुढ़ाने की चला, तो प्रसन्न हो उन्हीं राम की

तस्यैव च कथाश्चित्राः कुर्वाणा हृष्टमानसाः	७
मेघदयामं महाबाहुं स्थिरसत्त्वं दृढव्रतम् ।	
कदा द्रक्ष्यामहे रामं जगतः शोकनाशनम्	८
दृष्ट एव हि नः शोकमपनेप्यति राघवः ।	
तमः सर्वस्य लोकस्य समुद्यन्निव भास्करः	९
इत्येवं कथयन्तस्ते संप्रहृष्टाः कथाः शुभाः ।	
परिष्वजानाश्चान्योन्यं ययुर्नागरिकास्तदा	१०
ये च तत्रापरे सर्वे संमता ये च नैगमाः ।	
रामं प्रतिययुर्हृष्टाः सर्वाः प्रकृतयः शुभाः	११
मणिकाराश्च ये केचित्कुम्भकाराश्च शोभनाः ।	
सूत्रकर्मविशेषज्ञा ये च शास्त्रोपजीविनः	१२
मायूरकाः क्राकचिका वेधका रोचकास्तथा ।	
दन्तकाराः सुधाकारा ये च गन्धोपजीविनः	१३
सुवर्णकाराः प्रत्यातास्तथा कम्बलकारकाः ।	
स्नापकोष्णोदका वैद्या धूपकाः शौण्डिकास्तथा	१४
रजकास्तुन्नवायाश्च ग्रामघोषमहत्तराः ।	
शैलूपाश्च सह स्त्रीभिर्यान्ति कैवर्तकास्तथा	१५

ही विविध बाने करते जाते थे । ( १-७ )

मद यही कहने कि 'महाबाहु, स्थिरपराक्रम, दृढव्रत रामको कथ देखेंगे ? हम लोगों को देखते ही राम हमारा शोक दूर करेंगे ।' एवं प्रसन्न हो रामकी कथा कहते सुनते सब अयोध्यानिवासी जाते थे । बणिक्जन भी जिनको आज्ञा दी थी और जिनको नहीं मी दी थी, वे सब तथा प्रजागण हृष्टमन हो रामको देखने चले । मणियों में छेद करने-वाले, खरीदनेवाले, कुन्हार, गवई सब चले । पक्षी पकड़नेवाले, क्राकचिक, विशोचक, सुधाकार तथा गन्धी, स्वर्णकार, कम्बलकार, स्नापक, उष्णोदक, धूपक तथा मद्यकार सब चले । धोबी, दर्जी, ग्रामके बूढ़े, नट तथा कैवर्तक आदि अपनी अपनी क्षियोंको साथ लेकर चले । ( ८-१५ )

समाहिता वेदविदो ब्राह्मणा वृत्तसंमताः ।	
गोरथैर्भरतं यान्तमनुजग्मुः सहस्रशः	१६
सुवेपाः शुद्धवसनास्ताम्रमृष्टानुलेपिनः ।	
सर्वे ते विमलैर्यानैः शनैर्भरतमन्वयुः	१७
प्रहृष्टमुदिता सेना सान्वयात्कैकर्यासुतम् ।	
आतुरानयने यान्तं भरतं आतृवत्सलम्	१८
ते गत्वा दूरमध्वानं रथयानाश्वकुञ्जरैः ।	
समासेदुस्ततो गङ्गां शृङ्गवेरपुरं प्रति	१९
यत्र रामसखा वीरो गुहो ज्ञातिगणैर्वृतः ।	
निवसत्यप्रमादेन देशं तं पणिपालयन्	२०
उपेत्य तीरं गङ्गायाश्चक्रवाकैरलंकृतम् ।	
व्यवातिष्ठत सा सेना भरतस्यानुयायिनी	२१
निरीक्ष्यानुत्थितां सेनां तां च गङ्गां शिवोदकाम् ।	
भरतः सन्धिवान्सर्वानग्रहीद्वाक्यकोविदः	२२
निवेशयत मे सैन्यमभिप्रायेण सर्वतः ।	
विश्रान्ताः प्रतरिष्यामः श्व इमां सागरंगमाम्	२३
दातुं च तावदिच्छामि स्वर्गतस्य महीपतेः ।	
और्ध्वदेहनिमित्तार्थमवतीर्योदकं नदीम्	२४
तस्यैवं द्रुवतोऽमात्यास्तथेत्युक्त्वा समाहिताः ।	

एवं सहस्रों वेदवक्ता ब्राह्मण रथों पर चढ़ भरत के पीछे चले । सहस्रों अयोध्यावासी पालकी रथादि सवारियों पर चढ़ भरतके पीछे चले । आतृवत्सल भरत के पीछे पीछे अति प्रहृष्ट व आनन्दित सेना जा रही थी । सब घोड़े रथ हाथी आदि सवारियों पर चढ़े शृङ्गवेरपुरके पास गङ्गा पर पहुँचे । वहाँ रामका मित्र निपाद गुह राज्य करता था । गङ्गातटपर पहुँच भरत की सेना स्थित हुई ( १६-२१ )

सेना को गंगा तटपर उतरी देख भरत मंत्रियोंसे बोले कि, 'आज सब सेना यहीं ठहरे, प्रातः इस नदी को पार करेंगे । क्योंकि स्वर्गवासी महा-

न्यवेशयंस्तां छन्देन स्वेन स्वेन पृथक्पृथक् २५

निवेद्य गङ्गामनु तां महानदीं चमूं निधानंः परिवर्हशोमिनीम् ।

उवाच रामस्य तदा महात्मनो विचिन्तमानो भरतो निवर्तनम् २६

इत्यपि श्रीम०वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे व्यञ्जीतितमः सर्गः ॥८३॥ [३१६२]

चतुरञ्जीतितमः सर्गः ।

ततो निविष्टां ध्वजिनीं गङ्गामन्याश्रितां नदीम् ।

निपादराजो दृष्ट्वैव ज्ञातीन्स परितोऽब्रवीत् १

महतीयमितः सेना सागराभा प्रदृश्यते ।

नास्यान्तमथगच्छामि मनसापि विचिन्तयन् २

यदा नु खलु दुर्बुद्धिर्भरतः मथ्यमागतः ।

स एष हि महाकायः कोविदारध्वजो रथे ३

वन्धयिष्यति वा पाशैरथमा स्मान्वधिष्यति ।

अनु दाशरथिं रामं पित्रा राज्याद्विवासितम् ४

संपन्नां श्रियमन्विच्छंस्तस्य राज्ञः मुदुर्लभाम् ।

भरतः कैकयीपुत्रो हन्तुं समधिगच्छति ५

भर्ता चैव सखा चैव रामो दाशरथिर्मम ।

तस्यार्थकामाः सन्नद्धा गङ्गानूपेऽत्र निष्ठत ६

राज को यहाँ जलदान करना चाहते हैं, प्रातः तर्पण करेंगे ।' भरतका ऐसा बचन सुन सब लोग उतरने लगे। तब उम मेनाकी वहाँ गंगा तटपर रहनेकी कोशिश करके भरत महामा रामके लौटानेके विषयमें चिन्ता करने लगा । ( २०-२६ )

यहाँ तिरयासीवौ सर्ग समाप्त हुआ ।

गंगातीर पर भरतकी सेनाको देख गुह ने स्वजातियोंमें कहा कि 'यह बड़ी सेना जो दूर तक फैली हुई है, साथ ले यदि यदि भरत दुर्बुद्धि धारण कर यहाँ आये हैं और राम से वैरभाव रखने हुए निवर्तित राम को मार निष्कण्टक राज्य अवश्य करना चाहते होंगे । मैं ममप्रता हूं, भरत अपने पिता का राज्य राम को मार कर भोगना चाहते हैं । पर राम मेरे

तिष्ठन्तु सर्वदाशाश्च गङ्गामन्वाश्रिता नदीम् ।  
 वलयुक्ता नदीरक्षा मांसमूलफलाशनाः ७  
 नावां शतानां पञ्चानां कैवर्तानां शतं शतम् ।  
 संनडानां तथा यूनां तिष्ठन्त्वित्यभ्यचोदयत् ८  
 यदि तुष्टस्तु भरतो रामस्येह भविष्यति ।  
 इयं स्वस्तिमती सेना गङ्गामद्य तरिष्यति ९  
 इत्युक्त्योपायनं गृह्य मत्स्यमांसमधूनि च ।  
 अभिचक्राम भरतं निपादाधिपतिर्गुहः १०  
 तमायान्तं तु संप्रेक्ष्य सूतपुत्रः प्रतापवान् ।  
 भरतायाचचक्षेऽथ समयज्ञो विनीतवत् ११  
 एष ज्ञातिसहस्रेण स्थपतिः परिवारितः ।  
 कुशलो दण्डकारण्ये वृद्धो भ्रानुश्च ते सखा १२  
 तस्मात्पश्यतु काकुत्स्थ त्वां निपादाधिपो गुहः ।  
 असंशयं विजानीते यत्र तौ रामलक्ष्मणा १३  
 एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुमन्त्राद्भरतः शुभम् ।  
 उवाच वचनं शीघ्रं गुहः पश्यतु मामिति १४  
 लब्ध्यानुज्ञां संप्रहृष्टो ज्ञातिभिः परिवारितः ।

स्वामी और मत्वा हैं, उन के प्रयोजन के लिये अपने अपने आयुध ले गङ्गा की तराई में बैठो । तुम मय गंगा के घाट स्थित रहो । पांच सौ नावे यहाँ लगाई जायें, हरेक में सौ सौ जवान लड़ाई करने में कुशल तत्पर बैठे रहें । यदि भरत राम से सन्तुष्ट होंगे, तो यह उनकी सेना सकुशल गंगा के पार उतर जायगा ।' इतना कह भरत की भेंट के लिये वन की बीजे ले गुह चला । ( १-१० )

उस को आते देख सुमन्त्र नम्रनामे भरत से बोले कि, ' यह जो ज्ञातियों सहित आता है, दण्डकारण्यनिवासी यहाँ का राजा है और राम का सखा है । यह निश्चय ही जहाँ राम लक्ष्मण होंगे, जानता होगा ।' सुमन्त्र की बात सुन भरतने आज्ञा दी कि 'गुह को सामने आने दो ।' ( ११-१४ )

आगम्य भरतं प्रहो गृहो वचनमब्रवीत् १५

निष्कुटश्चैव देशोऽयं वञ्चिताश्चापि ते वयम् ।

निवेदयाम ते सर्वं स्वके दाशगृहे वस १६

अस्ति मूलफलं चैतन्निपादः स्वयमर्जितम् ।

आर्द्रं शुष्कं यथा मांसं वन्यं चोच्चावचं तथा १७

आशंसे स्वाशिता सेना वत्सल्येनां विभावरीम् ।

अर्चितो विविधैः कामैः श्वः ससैन्यो गमिष्यसि १८

इत्यार्षे श्री० बा० आदिराव्येऽयोध्याकाण्डे चतुरशीतितमः सर्गः ॥८४॥ [३१८०]

पञ्चाशीतितमः सर्गः ।

एवमुक्तस्तु भरतो निपादाधिपतिं गृहम् ।

प्रत्युवाच महाभाहो वाक्यं हेत्वर्थसंहितम् १

ऊर्जितः खलु ते कामः कृतो मम गुरोः सखे ।

यो मे त्वमीदृशो सेनामभ्यर्चयितुमिच्छसि २

इत्युक्त्वा स महातेजा गृहं वचनमुत्तमम् ।

अब्रवीद्भरतः श्रीमान्पन्थानं दर्शयन्पुनः ३

कतरेण गमिष्यामि भरद्वाजाश्रमं पथा ।

गहनोऽयं भृशं देशो गङ्गानूपो दुरत्ययः ४

यह सुन स्वजातियों के साथ हाथ जोड़ सामने आ गृह भरत से बोला, 'आपने निज आगमन से सावधान न कर मुझे छला है, तथापि इस अपने दाम के घरमें रहिये । ये निपाद लोग मूल फलादि और शुष्क आर्द्र मांस तथा वन के अन्य पदार्थ लाये हैं, ग्रहण कीजिये । इस प्रकार अच्छा भोजन करके इस रात्र तुम यहीं रहो और कल मेरी पूजा लेकर जागे चलो।' (१५-१९)

यहाँ चान्यामीवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

जब गृह ने भरत से ऐसा कहा तो भरत उस में बोले कि, 'तुम मेरे परम गुरु राम की सेवा कर हो चुके हो और अब मेरी सेना को निमन्त्रण देते हो, उस में मानों सब कुठ कर चुके ।' यह कह भरत गृह से फिर बोले कि 'यहाँ से किस मार्ग हो भरद्वाज के आश्रम पर पहुँचेंगे ? क्योंकि यह



तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः ।	
अब्रवीत्प्राञ्जलिभूत्वा गुहो गहनगोचरः	५
दाशास्वनुगमिष्यन्ति देशज्ञाः सुसमाहिताः ।	
अहं चानुगमिष्यामि राजपुत्र महाबल	६
कश्चिन्न दुष्टो ब्रजसि रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।	
इयं ते महती सेना शङ्कां जनयतीव मे	७
तमेवमभिभाषन्तमाकाश इव निर्मलः ।	
भरतः श्लक्ष्णया वाचा गुहं वचनमब्रवीत्	८
मा भूत्स कालो यत्कष्टं न मां शङ्कितुमर्हसि ।	
राघवः स हि मे भ्राता ज्येष्ठः पितृसमो मतः	९
तं निवर्तयितुं यामि काकुत्स्थं वनवासिनम् ।	
बुद्धिरन्या न मे कार्या गुह सत्यं ब्रवीमि ते	१०
स तु संहृष्टवदनः श्रुत्वा भरतभाषितम् ।	
पुनरेवाब्रवीद्वाक्यं भरतं प्रति हर्षितः	११
धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगतीतले ।	
अयत्नादागतं राज्यं यस्त्वं त्यक्तुमिहेच्छसि	१२
शाश्वती खलु ते कीर्तिलोकाननु चरिष्यति ।	
यस्त्वं कृच्छ्रगतं रामं प्रत्यानयितुमिच्छसि	१३

गंगा का तटदेश बड़ा दुरन्त्य ज्ञात होता है।' भरत के ऐसे वचन सुन गुह हाथ जोड़ बोला- 'इस देश के वृत्तान्तज्ञ मनुष्य व हम आपके पीछे पीछे चलेंगे। पर आप की इस बड़ी सेना को देख चित्त में शंका होती है कि राम के अनिष्ट के लिये तो नहीं जाते हो?' ( १-७ )

ऐसा कहते हुये गुह मे मधुर वाणी से भरत बोले कि 'ऐसा दुष्ट समय न आवे कि तुम ऐसी आशंका करो। श्रीराम मेरे बड़े भाई हैं। श्रीराम को मैं वनसे लौटाने के किये जाना हूँ, अन्य बुद्धि से नहीं।' भरत के ऐसे वचन सुन गुह बड़ा आनंदित हुआ और बोला- 'हे भरत ! तुम धन्य हो, क्यों कि बिना यन्न राज्यको पाकर फिर छोड़ना चाहते हो। आपकी यह कीर्ति

एवं संभाषमाणस्य गुहस्य भरतं तदा ।	
यमौ नष्टप्रभः सूर्यो रजनी चाभ्यवर्तत	१४
संनिवेश्य स तां सेनां गुहेन परितोषितः ।	
शत्रुघ्नेन समं श्रीमाञ्छयनं पुनरागमत्	१५
रामचिन्तामयः शोको भरतस्य महात्मनः ।	
उपस्थितो ह्यनर्हस्य धर्मप्रेक्षस्य तादृशः	१६
अन्तर्दाहेन दहनः संतापयति राघवम् ।	
वनदाहान्निसंतप्तं गूढोऽग्निरिव पादपम्	१७
प्रसृतः सर्वगात्रेभ्यः स्वेदं शोकाग्निसंभवम् ।	
यथा सूर्याग्निसंतप्तो हिमवान्प्रसृतो हिमम्	१८
ध्याननिर्दरशैलेन विनिःश्वसितघातुना ।	
दैन्यपादपसङ्गेन शोकायासाधिगृह्णिणा	१९
प्रमोहानन्तसत्त्वेन संतापौषधिवेणुना ।	
आक्रान्तो दुःखशैलेन महता कैकयीसुतः	२०
विनिःश्वसन्नैव भृशदुर्मनास्ततः प्रमूढसंज्ञः परमापदं गतः ।	
शमं न लेभे हृदयज्वरार्दितो नरर्वभो यूथदतो यथर्षभः २१	
गुहेन सार्धं भरतः समागतो महानुभावः सजनः समाहितः ।	

निरन्तर बनी रद्देगी कि तुम वन में राम को लौटाने के लिये जाते हो ।  
एवं भरत से गुह बातों कर रहा था कि रात हो गई । ( ८-१४ )

गुह द्वारा सत्कारित सेना सन्नुष्ट हो ठौर ठौर मोने लगी और भरत शत्रुघ्न एक आसन पर स्थित हुए । उस समय श्रीराम के विषयका चिन्ता-रूपी शोक भरत को हुआ । भरत के अन्तःकरणको शोकाग्नि जलाने लगा । शोकसन्तप्त होने से भरत के सब अंगों से पसीना निकलने लगा । भरत ऐसे शोक रूपी पर्वत से दबाये गये जिस में ध्यानही शिला है, मोहही अनन्त जीव, शोक ही सन्ताप, औषधि बांस हैं । चिन्तासे व्याकुल, अत्यन्त विव्र और अतिशय मूर्च्छित होकर दुःखसे निश्वास करनेवाले उस पुरुषश्रेष्ठ भरतको यूथश्रेष्ठ वृषभ के समान चैन न पड़ा । सारांश सपरिवार, एकाग्र-

सुदुर्मनास्तं भरतं तदा पुनः शनैः समाश्वासयदग्रजं प्रति २१  
 इत्यार्षे श्री० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे पञ्चाशीतितमः सर्गः ॥८५॥[३२०२]  
 पङ्क्तिशतितमः सर्गः ।

आचक्षेऽथ सद्भावं लक्ष्मणस्य महात्मनः ।	
भरतायाग्रमेयाय गुहो गहनगोचरः	१
तं जाग्रतं गुणैर्युक्तं वरचापेपुधारिणम् ।	
भ्रातृगुप्त्यर्थमत्यन्तमहं लक्ष्मणमब्रुवम्	२
इयं तात सुखा शय्या त्वदर्थमुपकल्पिता ।	
प्रत्याश्वसिहि शेष्वास्यां सुखं राघवनन्दन	३
उचितोऽयं जनः सर्वो दुःस्वानां त्वं सुखोचितः ।	
धर्मात्मस्तस्य गुप्त्यर्थं जागरिष्यामहे वयम्	४
न हि रामात्प्रियतरो ममास्ति भुवि कश्चन ।	
मोत्सुको भूर्ध्रवीभ्येतदथ सत्यं तवाग्रतः	५
अस्य प्रसादादाशंसे लोकेऽस्मिन्सुमहद्यशः ।	
धर्मावाप्तिं च विपुलामर्थकामौ च केवलौ	६
सोऽहं प्रियसखं रामं शयानं सह सीतया ।	
रक्षिष्यामि धनुष्पाणिः सर्वैः स्वैर्ज्ञातिभिः सह	७

चित्त और महापराक्रमी भरत की गुह से मुलाकात होनेपर वह राम के विषयमें अतिशय खिन्न हुआ और उसकी गुहने मांत्वना की । (१५-२२)  
 यहाँ पचासीवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

भरत को व्याकुल देख गुह महात्मा लक्ष्मण का रामकी ओर सद्भाव बखान करने लगा । 'हे भरत ! जय राम सो रहे और लक्ष्मण भाईकी रक्षा करनेके लिये बैठे, तब मैंने उनसे कहा कि 'तात ! यह सुख शय्या तुम्हारे लिये बना कर बिठाई गई है, अतः इस पर सोइये । आप सदा सुख योग्य हैं, राम की रक्षा हम लोग बराबर जागकर करेंगे । रामसे अधिक प्यारा हमें इस संसारमें निःसंदेह कोई नहीं है । आपके आगे मैं सत्यही कहता हूँ । रामहीके प्रसाद से इस लोकमें यश धर्म, तथा अर्थ काम चाहता हूँ । सोते

न हि मेऽविदितं किञ्चिद्वनेऽस्मिन्धारितः सदा ।

चतुरङ्गं तपि बलं प्रसहेम वयं युधि ८

एवमस्माभिरुक्तेन लक्ष्मणेन महात्मना ।

अनुनीता वयं सर्वे धर्ममेवानुपदयता ९

कथं दाशरथौ भूमौ शयाने सह सीतया ।

शक्या निद्रा मया लब्धुं जीवितानि सुखानि वा १०

यो न देवामुरैः सर्वैः शक्यः प्रसहितुं युधि ।

न पश्य गुह संविष्टं तृणेषु सह सीतया ११

महता तपसा लब्धो विविधैश्च परिश्रमैः ।

एको दशरथस्यैव पुत्रः सदृशलक्षणः १२

अस्मिन्प्रव्राजिते राजा न चिरं वर्तयिष्यति ।

विधवा मेदिनी नूनं क्षिप्रमेव भविष्यति १३

विनश्य सुमहानादं श्रमेणोपरताः स्त्रियः ।

निर्योपो विरतो नूनमद्य राजनिवेशने १४

कांसल्या चैव राजा च तथैव जननी मम ।

नाशंसे यदि ते सर्वे जीवियुः शर्वरीमिमाम् १५

हुए राम की रक्षा मैं धनुर्बाण ग्रहण कर अपने सजातियों समेत करना रहूँगा । हम इस वनके प्रत्येक चोर व अन्यान्य जीव से परिचित हूँ, अतः चतुरङ्गिनी सेना भी आवे, तो उसको भी मैं सह सकता हूँ ।' ( १-८ )

‘जब मैंने ऐसा कहा, तो लक्ष्मणने धर्म ही की बात कहके मुझ को शिक्षा दी कि- ‘ सीता सहित राम भूमिमें शयन करते हैं, तो मुझको नोंद कैसे आवेगी ? हे गुह ! जिन राम के आगे सभ्राम में देवता देव्यादि कोई खड़े नहीं हो सकते, वे आज तृणकी शय्यापर सोते हैं । इन रामको दशरथ वटी तपस्यासे सदृशलक्षणयुक्त पुत्र पाया है । इन के यहां चले आने के पीछे महाराज बहुत दिनों तक न जीवेंगे । सब स्त्रियां जोरसे वहां रो रो कर चुप हो गई थीं, किसी को अधिक रोनेका गामर्थ्य नहीं था, सो राजमन्दिर में आज सन्नाटा होगा । कांसल्या, राजा व मेरी माता ये तीनों इस रात्रिमें

हि० ९ (अयोध्या. उ.)

उपवासकृशा दीना भर्तृव्यसनकर्षिताः	६
ताश्च तं पतितं भूमौ रुदत्यः पर्यवारयन् ।	
कौसल्या त्वनुसृत्यैनं दुर्मनाः परिपस्वजे	७
वत्सला स्वं यथा वत्समुपगुह्य तपस्विनी ।	
परिपप्रच्छ भरतं रुदती शोकलालसा	८
पुत्र व्याधिर्न ते कश्चिच्छरीरं प्रति बाधते ।	
अस्य राजकुलस्याद्य त्वदधीनं हि जीयितम्	९
त्वां दृष्ट्वा पुत्र जीवामि रामे सभ्रातृकं गते ।	
वृत्ते दशरथे राशि नाथ एकम्वमद्य नः	१०
कश्चिन्न लक्ष्मणे पुत्र श्रुतं ते किञ्चिदप्रियम् ।	
पुत्रे वा हेकपुत्रायाः सहभार्ये वनं गते	११
स मुहूर्तं समाश्वस्य रुदन्नेव महायशाः ।	
कौसल्यां परिसान्त्वयेदं गुहं वचनमब्रवीत्	१२
भ्राता मे कावसद्रात्रि क सीता क च लक्ष्मणः ।	
अस्वपच्छयने कस्मिन् किं भुक्त्वा गुह शंस मे	१३

और शोकसे मूर्च्छित हो गिर पड़े । तब भरतकी सब माताएं जो उपवास करनेसे दीन हो गई थीं, उनके निकट आईं । कौसल्याने पास पहुंच कर भरतको उठा हृदयसे लगा लिया । तपस्विनी कौसल्या शोकसे व्याकुल हो भरतसे पूछने लगी । ( १-८ )

‘हे पुत्र ! इस समय तुम्हारे शरीरमें कोई रोग तो उत्पन्न नहीं हुआ है? ऐसा न हो, क्योंकि इस कुलके जीवन तुम्हा हो। हे पुत्र ! भाई सहित राम तो वनको चले गये, तथा राजा स्वर्गको गये । अब तुम्हीं हमारे नाथ हो । हे पुत्र ! लक्ष्मणके विषयमें कोई अप्रिय तो नहीं सुना अथवा रामके विषयमें तो कोई अप्रिय वचन नहीं सुना ?’ भरत मुहूर्त भर तक निःसंज्ञ रहे, पुनः सावधान हो कौसल्याको समझा कर गुहमे बोले कि, ‘उम रातको राम, लक्ष्मण तथा सीता कहां ठहरी थीं, ये सब किस स्थानपर सोये थे तथा उन्होंने क्या क्या भोजन किया था ?’ ( ९-१३ )

सोऽब्रवीद्भरतं हृष्टो निपादाधिपतिगुहः ।	
यद्धिधं प्रतिपेदे च रामे प्रियहिते तिथी	१४
अन्नमुच्चायचं भक्ष्याः फलानि विविधानि च ।	
रामायाभ्यवहारार्थं बहुशोऽपहृतं मया	१५
तत्सर्वं प्रत्यनुज्ञासीद्रामः सत्यपराक्रमः ।	
न हि तत्प्रत्यगृह्णात्स क्षत्रधर्ममनुस्मरन्	१६
नह्यस्माभिः प्रतिग्राह्यं सखे देयं तु सर्वदा ।	
इति तेन वयं सर्वे अनुनीता महात्मना	१७
लक्ष्मणेन यदानीतं पीतं वारि महात्मना ।	
औपवास्यं तदाकार्पाद्राघवः सह सीतया	१८
ततस्तु जलशेषेण लक्ष्मणोऽप्यकरोत्तदा ।	
वाग्यतास्ते त्रयः संध्यां समुपासन्त संहिताः	१९
सौमित्रिस्तु तत् पश्चादकरोत्स्वास्तरं शुभम् ।	
स्वयमानीय वहींषि क्षिप्रं राघवकारणात्	२०
तस्मिन्समाविशद्रामः स्वास्तरे सहसीतया ।	
प्रक्षाल्य च तयोः पादौ व्यपाक्रामत्स लक्ष्मणः	२१
एतत्तदिङ्गुदीमूलमिदमेव च तत्तृणम् ।	

यह सुन हर्षित हो गुहने रामके साथ जैसा कुछ व्यवहार किया था, कहने लगा कि 'रामके भोजनके लिये नाना पदार्थ मैं लाया था, पर रामने क्षत्रियोंका धर्म विचार कर कुछ न लिया। और कहा कि 'हे मित्र ! हम लोग मन्दा मक्खो कुछ देने हैं, पर किसीका दान नहीं लेते।' केवल लक्ष्मण अपने हाथोंसे राजाजल भर लाये, वही रामने पान किया। आप व सीता दोनों उपवास ही करके रह गये। शेष जल पान कर लक्ष्मण भी रह गये। इसी स्थानपर तीनोंने सन्ध्योपामन किया। ( १४-१९ )

‘तदनु लक्ष्मण अपने हाथसे कुश लाये और सुन्दर आसन बना दिया। उसके ऊपर राम सीता सहित बैठे। लक्ष्मण दोनोंके पैर धो वहांसे चले आये। इस इंगुदी वृक्षके नीचे यह जो तृण पड़ा है, इसी पर राम जानकी

अस्मिन् रामश्च सीता च रात्रिं तां शयिताबुभौ २२,  
 नियम्य पृष्ठे तु तलांगुलित्रवाञ्छरैः सुपूर्णाविपुधी परंतपः ।  
 महद्भुतः सज्जमुपोह्य लक्ष्मणो निशामतिष्ठत्परितोऽस्य केवलम् २३  
 ततस्त्वहं चोत्तमबाणचापभृत्स्थितोऽभवं तत्र स यत्र लक्ष्मणः ।  
 अतन्द्रितैर्ज्ञातिभिरात्तकार्मुकैर्महेन्द्रकल्पं परिपालयं तदा २४  
 इत्यापे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽथोप्याकाण्डे सप्ताशीतितमः सर्गः ॥८७॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ।

[ १२५१ ]

तच्छ्रुत्वा निपुणं सर्वं भरतः सह मन्त्रिभिः ।	
इंगुदीमूलमागम्य रामशय्यामवैक्षत	१
अग्रवीज्जननीः सर्वा इह तस्य महात्मनः ।	
शर्वरी शयिता भूमाविदमस्य विमर्दितम्	२
महाराजकुलीनेन महाभागेन धीमता ।	
जातो दशरथेनोप्या न रामः स्वप्तुमर्हति	३
अजिनोत्तरसंस्तीर्णं वरास्तरणसंचये ।	
शयित्वा पुरुषव्याघ्रः कथं शेते महीतले	४
प्रासादाग्रविमानेषु चलभीषु च सर्वदा ।	
हैमराजतभौमेषु वरास्तरणशालिषु	५

सहित सोये थे । जब वे शयन करने लगे, तो धनुषपर प्रत्यंचा चढाये, लक्ष्मण रात्रिभर चारों ओर घूमते रहे । तब जहाँ लक्ष्मण था, वहाँ जाकर उत्तम बाण और धनुष लेकर मैंभी खड़ा रहा और मेरे रक्षण कार्यमें दक्ष ज्ञातियों सहित उस इन्द्रतुल्य रामका रक्षण करता रहा ।' ( २०-२४ )

यहाँ सप्तासीवीं सर्ग समाप्त हुआ ।

भरत अपने मन्त्रियोंके साथ उस इंगुदी वृक्षके नीचे जा रामकी शय्याको देखने लगे और माताओंसे बोले कि ' यहाँ पूर श्रीरामने उस रात्रिको शयन किया था । ये कुक्ष उन्हींके आसनके हैं । महाराजाधिराज दशरथके पुत्र हो ऐसे आसनपर सोनेके योग्य नहीं । अति कोमल बिछौने पर शयन कर अब इस भूमिपर पुरुषसिंह राम कैसे सोते हैं ? जो राम धवरहरोंके ऊपर,

पुष्पसन्नयचित्रेषु चन्दनागुरुगन्धिषु ।	
पाण्डुराभप्रकाशेषु शुक्लसङ्गरुतेषु च	६
प्रासादधरवर्येषु शीतवत्सु सुगन्धिषु ।	
उपित्वा मेरुकल्पेषु कृतकाञ्चनभित्तिषु	७
गीतवादित्रनिर्घोषपर्वराभरणनिःस्वनैः ।	
सृदङ्गवरशब्दैश्च सततं प्रतियोधितः	८
वन्दिभिर्वन्दितः काले बहुभिः सूतमागधैः ।	
गाथाभिरनुरूपाभिः स्तुतिभिश्च परंतपः	९
अश्रद्धेयमिदं लोके न सत्यं प्रतिभाति मा ।	
मुह्यते खलु मे भावः स्वप्नोऽयमिति मे मतिः	१०
न नूनं दैवतं किञ्चित्कालेन बलवत्तरम् ।	
यत्र दाशरथी रामो भूमावेवमशेत सः	११
यस्मिन्निदेहराजस्य सुता च प्रियदर्शना ।	
दयिता शयिता भूमौ स्नुषा दशरथस्य च	१२
इयं शय्या नभ आदुरिदमाजर्जितं दुर्भगम् ।	
स्थण्डिले कठिने सर्वे गात्रैर्विमृदितं तृणम्	१३

विमानोंपर तथा कुलागारोंपर जहाँ कि पलंगादिपर नाना उत्तम बिछौने बिछाये जाते थे, उन पर सोते थे, जिनके ऊपर पुष्प पुन दिये जाते व चन्दनादि सुगन्धित वस्तु धरी जातीं और झुंक, सारिका आदि शुभ पक्षी बोलते थे । श्रेष्ठ धरहरों पर जहाँ शीतल सुगन्धित वस्तु धरी जाती थीं, उनमें शयन करते थे, नाना प्रकारका गाना उत्तम उत्तम भूषणोंका शब्द सुनके जागते थे, प्रातः सुन मागध वन्दी गण वन्दना तथा स्तुति करते थे, उन रामवा इस तृणमय भाग्यन पर शयन करना मुझे सत्य प्रतीत नहीं होता । मेरा यह मोह तो नहीं है अथवा यह स्वप्नकी बात तो नहीं है ? ( १-१० )

निश्चय ही कालसे बलवत्तर कोई नहीं है, जिसके वश हो राम भी भूमि में सोये । जिस कालकी गतिमें पंड जनकपुत्री दशरथकी पतोह सीता भी



मन्ये साभरणा सुप्ता सीतास्मिञ्शयने शुभा ।	
तत्र तत्र हि दृश्यन्ते सक्ताः कनकविन्दवः ।	१४
उत्तरीयमिहासक्तं सुव्यक्तं सीतया तदा ।	
तथा ह्येते प्रकाशन्ते सक्ताः कौशेयतन्तवः ।	१५
मन्ये भर्तुः सुखा शय्या येन बाला तपस्विनी ।	
सुकुमारी सती दुःखं न विजानाति मैथिली ।	१६
हा हतोऽस्मि नृशंसोऽस्मि यत्सभार्यः कृते मम ।	
ईदृशी राघवः शय्यामधिशेते ह्यनाधवत् ।	१७
सार्वभौमकुले जातः सर्वलोकसुखावहः ।	
सर्वप्रियकरस्त्यक्त्वा राज्यं प्रियमनुत्तमम् ।	१८
कथमिन्दीवरश्यामो रक्षाक्षः प्रियदर्शनः ।	
सुखभागी न दुःखार्हः शयितो भुवि राघवः ।	१९
धन्यः खलु महाभागो लक्ष्मणः शुभलक्षणः ।	
भ्रातरं विपमे काले यो राममनुवर्तते ।	२०
सिद्धार्था खलु वैदेही पतिं यानुगता वनम् ।	
वयं संशयिताः सर्वे हीनास्तेन महात्मना ।	२१

भूमिमें सोई । यह शय्या मेरे भाईकी है। देखो, जैसे जैसे करवटें उन्होने ली हैं । विदित होता है कि इस शय्यापर सीता सब भूषण पहने ही सो गई है, उनके गहनोंसे सुवर्णचिन्दु ठौर ठौर गिर पड़े । इस स्थानपर सीताने अपनी साडी रख दी थी, क्योंकि उसीके रेशमी डेरि कुशोंमें लगे हुए दीख पड़ते हैं । पतिको स्थान शय्या सुव्यक्तर लगी हो, क्योंकि जो ऐसा न होता तो सुकुमारी, तपस्विनी सीता दुःखको विचार इस पर शयन न करता । हा ! मैं बड़ा निर्लज्ज हूँ जिसके लिये श्री सहित राम अनाथके समान ऐसी शय्यापर सोये । हा ! सार्वभौम कुलमें उत्पन्न हो सबके प्रिय उत्तम व प्रिय राज्य छोड़, अरुणनयन प्रियदर्शन दुःखके अयोग्य राम भूमिमें सोते हैं । महाभाग लक्ष्मण धन्य है, जो ऐसे कुम्भमयमें श्रीरामके पीछे पीछे जाने है । ( ११-२० )

अकर्णधारा पृथिवीं शून्येव प्रतिभाति मे ।	
गते दशरथे स्वर्गे रामे चारण्यमाश्रिते	२२
न च प्रार्थयते कश्चिन्मनसापि वसुंधराम् ।	
वने निवसतस्तस्य बाहुवीर्याभिरक्षिताम्	२३
शून्यसंवरणारक्षामयन्त्रितद्वयद्विषाम् ।	
अनावृतपुरद्वारां राजधानीमरक्षिताम्	२४
अप्रहृष्टयलां शून्यां विषमस्थामनावृताम् ।	
शत्रवो नाभिमन्यन्ते मध्यान्विषकृतानिव	२५
अद्यप्रभृति भूर्मा तु शयिष्येऽहं तृणेषु वा ।	
फलमूलाशनां निन्यं जटाचीराणि धारयन्	२६
तस्याहमुत्तरं कालं निवन्स्यामि सुखं वने ।	
तत्प्रतिश्रुतमार्यस्य नैव मिथ्या भविष्यति	२७
वसन्तं भ्रातुरर्थाय शत्रुघ्नो मानुवन्स्यति ।	
लक्ष्मणेन सहायोध्यामार्यो मे पालयिष्यति	२८
अभिषेक्ष्यन्ति काकुत्स्थमयोध्यायां द्विजातयः ।	
अपि मे देवताः कुर्युरिमं सन्य मनोरथम्	२९

‘पति के पीछे जानके कारण सीता के भी सब कार्य मिट्ट हो गये । राजा के स्वर्ग जाने से तथा राम के वन जाने से यह पृथिवी बिना मेवट की नाव के गमन हो गई । हम में कोई भी इस पृथिवी की मनसे भी ह्छा नहीं करता, क्योंकि यह राम ही के पगक्रम से रहित थी । यह अयोध्या अब शून्य पड़ी है, रक्षक कोई नहीं है, फाटकोर भी कोई रक्षक नहीं है। सब लोग अनवस्थितचिन् हैं, इसीसे बाहरसे कोई रक्षा नहीं करता । अब आज से मैं भी फल मूल ही खाऊंगा, जटा चीरादि धारण करूंगा, तथा भूमि में तृण ही बिछा कर सोऊंगा । चाइह वर्ष वन में रहने की प्रतिज्ञा जो बड़े भाई ने की है, उसको पूर्ण करने के लिये मैं १४ वर्ष तक वन में रहूंगा । जब तक मैं वन में रहूंगा, तब तक शत्रुघ्न मेरे साथ रहेंगे और लक्ष्मण सहित राम अयोध्या का शासन करेंगे । ब्राह्मणगण अयोध्या में

आवासमादीपयतां तीर्थे आप्यवगाहताम् ।  
 भाण्डानि चाददानानां घोपस्तु दिवमस्पृशत् १५  
 पताकिन्यस्तु ता नावः स्वयं दाशैरधिष्ठिताः ।  
 वहन्त्यो जनमारूढं तदा संपेतुःशुगाः १६  
 नारीणामभिपूर्णास्तु काश्चित्काश्चित् वाजिनाम् ।  
 काश्चित्तत्र वहन्ति स्म यानयुग्यं महाधनम् १७  
 तास्तु गत्वा परं तीरमधरोप्य च तं जनम् ।  
 निवृत्ताः काण्डचित्राणि क्रियन्ते दाशवन्धुभिः १८  
 सर्वजघन्तास्तु गजा गजारोहैः प्रचोदिताः ।  
 तरन्तः स्म प्रकाशन्ते सपक्षा इव पर्वताः १९  
 नाचध्वावरुहुस्तत्रन्ये प्लवैस्तेरुस्तथापरे ।  
 अन्ये कुम्भघटैस्तेरुन्ये तेरुश्च बाहुभिः २०  
 सा पुण्या ध्वजिनी गङ्गा दाशैः संतारिता स्वयम् ।  
 मैत्रे मुहूर्ते प्रययौ प्रयागवनमुत्तमम् २१

आश्वासयित्वा च चभूं महात्मा निवेशयित्वा च यथोपजोषम् ।

द्रष्टुं भरद्वाजसृष्टिप्रवर्युं क्षत्विक्सदस्यैर्भरतः प्रतस्थे २२

कामत्याके चटनेके पीछे और जो स्त्रियां थीं, सबके चटनेके बाद गाई आदि और मामग्री चढ़ाई गई । ( ८-१४ )

चलनेके समय कोलाहल ऐसा हुआ कि अन्तरिक्ष तक जा पहुंचा । नावोंमें ऐसी पताकाएं लगाई गई थीं कि जिससे भरी हुई नावें उड़ो चली जाती थीं । कोई कोई नावें खियोंसे, कोई घोड़ोंसे, किनी पर पालकी आदि तथा किसी पर धन लदा था । वे सब नावें उस पार पहुंचीं और यात्रियोंको उतारा । इन सबके पीछे महावर्तोंने अपने अपने हाथी ध्वजा सहित जलमें उतारे । कोई कोई बड़ी बड़ी नावों पर चढ़ कर, कोई कोई पतवारसे और घसहियों पर चढ़ कर तथा कोई तैर हाँकर पार उतर गये । भरतकी वह दाम्प्योसे उतारी हुई पुण्यरूपिणी सेना मैत्र मुहूर्तमें प्रयागके उत्तम वनकी गई । तब उस सेनाको मुखसे विधांति देकर उसे प्रयागवनमें

स ब्राह्मणस्याश्रममभ्युपेत्य महात्मनो देवपुरोहितस्य ।

ददर्श रम्योदजवृक्षदेशं महद्वनं विप्रवरस्य रम्यम् २३

इत्यपि श्रीम० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकोनवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥ [ ३३०४ ]

नवतितमः सर्गः ।

भरद्वाजाश्रमं गत्वा क्रोशादेव नरर्पभः ।

जनं सर्वमवस्थाप्य जगाम सह मन्त्रिभिः १

पट्टवामेव तु धर्मज्ञो न्यस्तशस्त्रपरिच्छदः ।

वसानो वाससी क्षामे पुरोधाय पुरोहितम् २

ततः संदर्शने तस्य भरद्वाजस्य राघवः ।

मन्त्रिणस्तानवस्थाप्य जगामानुपुरोहितम् ३

वसिष्ठमथ दृष्ट्वैव भरद्वाजो महात्तपाः ।

संचचालासनात्तूर्णं शिष्यानर्घ्यामिति ब्रुवन् ४

समागम्य वसिष्ठेन भरतेनाभिवादिनः ।

अबुध्यत महातेजाः सुतं दशरथस्य तम् ५

ताभ्यामर्घ्यं च पाद्यं च दत्त्वा पश्चात्फलानि च ।

आनुपूर्व्याच्च धर्मज्ञः पप्रच्छ कुशलं कुले ६

रत्ना तथा कृत्विज्ञ और मदस्योंको साथ लेकर मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजका दर्शन लेनेके लिये महात्मा भरत आगे चला और उस देवपुरोहितके आश्रममें जाकर उसका रम्य महावन उसने देर लिया । (१५-२३)

यहाँ सर्ग उनानवौवाँ समाप्त हुआ ।

आश्रममें एक कोम दूर सेनाको गहरा भरद्वाजक आश्रम पर भरत गये वसिष्ठको आगे कर रेशमी वस्त्र धारे भरत पैदल गये । कथ्यंत ममीप पहुंच मन्त्रियोंको वहीं छोड केवल वसिष्ठको आगे कर उनके पीछे पीछे भरत गये । भरद्वाज वसिष्ठको आते देर अर्घ्यके लिये जल लानेका आदेश कर स्वयं आगे मिलनेको बडे । आगे बट वसिष्ठमें परस्पर अभिवादन किया, भरतने प्रणाम किया, भरद्वाजने जान लिया यह दशरथपुत्र हैं । सबको अर्घ्यादिके लिये जल दिया, तदनु प्रथम वसिष्ठमें फिर भरतसे कुशल पूछा ।

ततस्तथेत्येवमुदारदर्शनः प्रतीतिरूपो भरतोऽब्रवीद्विचः ।

चकार युद्धि च तदाश्रमे तदा निशानिवासाय नराधिपात्मजः २४  
इत्यार्ये श्री० वा० आदिशब्देऽर्थोऽप्याद्याण्डे नवतितमः सर्गः ॥१०॥ [३३२८]

एकतवतितमः सर्गः ।

कृतयुद्धि निवासाय तत्रैव स मुनिस्तदा ।

भरतं कैकयीपुत्रमातिथ्येन न्यमन्वयत् १

अब्रवीद्भरतस्त्वेनं नन्विदं भवता कृतम् ।

पाद्यमर्घ्यमथातिथ्यं वने यदुपपद्यते २

अथोवाच भरद्वाजो भरतं प्रहसन्निव ।

जाने त्वां प्रीतिसंयुक्तं तुष्यस्त्वं येनकेनचित् ३

सेनायास्तु तवैवास्याः कर्तुमिच्छामि भोजनम् ।

मम प्रीतिर्यथारूपा त्वमर्हो मनुजर्षभ ४

किमर्थं चापि निक्षिप्य दूरे बलमिहागतः ।

कस्मान्नहोपयातोऽसि सवलः पुरुषर्षभ ५

रहते हैं। वहाँ प्रातः जाना, आज इस कुटीपर रहिये।' भरतने यह सुन कर कहा, बहुत अच्छा, और सब सेना सहित मुनिके आश्रममें रहनेका निश्चय किया ( १९-२५ ) यहाँ नब्बौवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

उस रात्रिको वही आश्रममेंही ठहरनेका निश्चय किये हुए भरतको भरद्वाज मुनिवरने आदरसत्कार करनेके लिए भोजनका न्योता दिया और जब भरतने कहा कि ' वनमें जो यह अर्घ्य एवं पैर धोनेका जल वगैरह मिल सकता है, उसके आधारमें आपने मेरी आवभगत कर डाला है। तो मुस्कराकर मुनिने कहा ' मैं जानता हूँ कि तुम्हारा मुझपर प्रेम है, इस लिए तू किसीभी ढंगकी सेवा की जाए, अवश्य प्रसन्न रहेगा, इस संबंधमें मुझको सन्देह नहीं, लेकिन मैं चाहता कि तुम्हारी इस सेनाके भोजनका प्रबंध मैं कर दूँ। अतः मेरी इच्छाका अनुमोदन तुम्हें करनाही होगा। तुम मानवोंमें श्रेष्ठ हो। भला तू किमलिए सेनाको दूर रखकर इधर आ पहुँचा है ? साथमें सेना चली आती तो क्या बिगड़ता ? ' ( १-५ )

भरतः प्रत्युवाचेद् प्राञ्जलिस्तं तपोधनम् ।	
न सैन्येनोपयातोऽस्मि भगवन्भगवद्भयात्	६
राक्षा हि भगवन्नित्यं राजपुत्रेण वा तथा ।	
यत्नतः परिहर्तव्या विषयेषु तपस्विनः	७
वाजिमुख्य! मनुष्याश्च मत्ताश्च वरवारणाः ।	
प्रच्छाद्य भगवन्भूमिं महतीमनुयान्ति माम्	८
ते वृक्षानुदकं भूमिमाश्रमेपूटजांस्तथा ।	
न हिंस्युरिति तेनाहमेक एवागतस्ततः	९
आनीयतामितः सेनेत्यागतः परमर्षिणा ।	
तथानुचक्रे भरतः सेनायाः समुपागमम्	१०
अग्निशालां प्रविश्याथ पान्थापः परिमृज्य च ।	
आतिथ्यस्य क्रियाहेतोर्विश्वकर्माणमाह्वयत्	११
आह्वये विश्वकर्माणगृहं त्वष्टारमेव च ।	
आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि तत्र मे संविधीयताम्	१२

ऐसा पूछनेपर हाथ जोड़कर तपस्वी धन रखनेवाले मुनिसे भरत बोला, 'हे भगवन्! आपके आश्रमको कष्ट न पहुँचे, इस आशंकासे मारे मैं अपने साथ सेना लेकर यहाँ नहीं आया, क्योंकि नरेश तथा राजकुमारको चाहिए कि वह अपने देशमें निवास करनेवाले तपस्वी जनको पीडा न हो इसलिए सचेष्ट रहे। मुनियर! बड़िया घोड़े, मानव तथा मतवाले हाथी बड़े भारी भूभागको व्याप्त करके मेरे पीछेपीछे चले आ रहे हैं। इस कारण, ये कहाँ पेड़, जल, भूमिभाग तथा आश्रममें मौजूद पर्णकुटियोंका विध्वंस न करने लगे, उन्हें उधरही रोककर अकेलाही मैं इधर आ पहुँचा।" जब महर्षिने आज्ञा दे डाली कि 'सेनाको इधर ले आ.' तुरन्त भरतने मारी सेनाको उधर बुला लिया। (६-१०)

पश्चात् अग्निशालामें घुसकर हाँठ धौनेके साथही आचमन करके भगद्वाजजी ने अनिधि-संस्कारका प्रबंध करनेके लिए विश्वकर्माजीको पुकारा- "मैं चाहता कि इस सैन्यका डीक संस्कार मुझमें हो जाए, इसलिए मैं विश्वकर्मा तथा

हि० १० (अयोध्या उ.)

आह्वये लोकपालांस्त्रीन्देवाश्शक्रपुरोगमान् ।	
आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि तत्र मे संविधीयताम्	१३
प्राक्स्नोतसश्च या नद्यस्तिर्यक्स्नोतस एव च ।	
पृथिव्यामन्तरिक्षे च समायान्त्वद्य सर्वशः	१४
अन्याः श्रवन्तु मैरेयं सुरामन्याः सुनिष्ठिताम् ।	
अपराश्वोदकं शीतमिश्रुकाण्डरसोपमम्	१५
आह्वये देवगन्धर्वान्विश्वावसुहृद्वाहुहन् ।	
तथैवाप्सरसो देवगन्धर्वैश्चापि सर्वशः	१६
घृताक्षीमथ विश्वार्ची मिश्रकेशीमलम्बुषाम् ।	
नागदत्तां च हेमां च सोमामद्रिकृतस्थलीम्	१७
शक्रं याश्चोपतिष्ठन्ति ब्रह्माणं याश्च भामिनीः ।	
सर्वास्तुम्बुरुणा सार्धमाह्वये सपरिच्छदाः	१८
घनं कुरुषु यदिव्यं वासोभूषणपत्रवत् ।	
दिव्यनारीफलं शश्वत्तत्कौवेरमिहैव तु	१९

स्वष्टासे इधर पधारने के लिए कहता हूँ, इस आतिथ्यकी पूरी तैयारी मैं कर सकूँ; वैसेही यम, वरुण, कुबेर, तीनों दिक्पाल और इन्द्र जैसे देवोंको मैं बुलाता हूँ; मेनाका अतिथिसत्कार करनेकी इच्छा होती है, इसलिए मैं उसकी अच्छी तैयारी कर लूँ, ऐसी व्यवस्था हो । इस भूमंडलपर तथा ध्रुलोक में भी उत्तरकी ओर बहनेवाली और पूरवकी तरफ जानेवाली जो कोईभी नदियो हों, वे सभी इधर पधारें । उनमेंसे कोई नदियाँ मैरेय नामक मघका प्रवाह बहाना शुरु कर दें, तो कुछ भली प्रकार तैयार की हुई सुराका ओघ प्रारंभ करें और नदियाँ गन्धके रसकी भोंति मिठासभरा एवं ठंडा पानी बहाना शुरु कर लें । (११-१५)

‘देवगन्धर्वों तथा उनके साथ रहनेवाली सभी अप्सराओंको मैं पुकारता हूँ । ऊपर लिखे नामवाली अप्सराओं और पहाड़पर रहनेवाली सोमासे तथा इन्द्र एवं ब्रह्मदेवकी सेवा करनेवाली अलंकृत देवांगनाओंसे मैं कहता हूँ कि वे तुम्बुरुके साथ इधर जली आयें । उत्तर कुरुदेशमें बसा हुआ कुबेर-

इह मे भगवान्सोमो विधत्तामन्नमुत्तमम् ।	
भक्ष्यं भोज्यं च चोष्यं च लेह्यं च विविधं बहु	२०
विचित्राणि च माल्यानि पादपप्रच्युतानि च ।	
सुरादीनि च पेयानि मांसानि विविधानि च	२१
पयं समाधिना युक्तस्तेजसाप्रतिमेन च ।	
शिक्षास्वरसमायुक्तं सुधतश्चावधीन्मुनिः	२२
मनसा ध्यायतस्तस्य प्राङ्मुखस्य कृताञ्जलेः ।	
आजग्मुस्तानि सर्वाणि दैवतानि पृथक्पृथक्	२३
मलयं ददुरं चैव ततः स्येदनुदोऽनिलः ।	
उपस्पृश्य चवौ युक्त्या सुप्रियात्मा सुखं शिवः	२४
ततोऽभ्यवर्पन्त घना दिव्याः कुसुमवृष्टयः ।	
देवदुन्दुभिघोषश्च दिक्षु सर्वासु शुश्रुवे	२५
प्रचबुधोत्तमा वाता ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।	
प्रजगुर्देवगन्धर्वा घीणाः प्रमुमुचुः स्वरान्	२६

का वह दिव्य और शाश्वत चंद्ररथ वन जहाँपर वस्त्र तथा भूषण पैडके पत्ते बन जाने हैं, दिव्य महिलाएँ फल बन जाती हैं, इधर उपस्थित हो । भौतिभौतिका बहिया प्रचुर अन्न जैसे भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य, सुरा मदश पेय और तरह तरहके मांसान्न भगवान् सोम तैयार कर ले तथा पैडोंपर स्वयमेव अनूटे फूल खिलने लग जायें ।” (१६-२१)

इस भौति अद्वितीय तेजसे पूर्ण और समाधि लगाये बैठे व्रतानुचरण ठीक तरह करनेवाले भरद्वाजजीने शिक्षामे कहे दंगपरसे वर्णोच्चारसंपन्न निमंत्रण किया । जब कि वे मुनि हाथ जोड़े हुए पूरवकी ओर मुँह करके मनमें ध्यानाविष्ट हो चुके तो वे सभी देवता एकके पीछे एक उनके निकट आने लगे । मलय तथा ददुर नामक चन्दनयुक्त पहाड़ोंको छूकर पर्याना हटानेवाला हिनकारक तथा मनको खूब प्रमत्त करनेवाला पवन उचित प्रकारसे सुन्दरायक हो बहने लगा । मेघोंसे दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी और सभी दिशाओंमें देवदुन्दुभिनाइ सुनाई देने लगा । दूसरे



स शब्दो द्यां च भूमिं च प्राणिनां श्रवणानि च ।	
विवेशोच्चावचः शृङ्गः समो लयगुणान्वितः	२७
तस्मिन्नेवं गते शब्दे दिव्ये श्रोत्रसुखे नृणाम् ।	
ददर्श भारतं सैन्यं विधानं विश्वकर्मणः	२८
वभूव हि समा भूमिः समन्तात्पञ्चयोजनम् ।	
शाद्वलैर्वहुभिद्भृता नीलवैदूर्यसंनिभैः	२९
तस्मिन्विल्लाः कपित्थाश्च पनसा वीजपूरकाः ।	
आमलक्यो वभूवुश्च चूताश्च फलभूषिताः	३०
उत्तरेभ्यः कुरुभ्यश्च वनं दिव्योपभोगवत् ।	
आजगाम नदी सौम्या तीरजैर्वहुभिर्वृता	३१
चतुःशालानि शुभ्राणि शालाश्च गजवाजिनाम् ।	
हर्म्यप्रासादसंयुक्ततोरणानि शुभानि च	३२
सितमेघनिभं चापि राजवेदम सुतोरणम् ।	

भी बटिया पवनके झकोरे बहने लगे, अप्सराओंके झुंड नाचने लगा, देव एवं गन्धर्व गाने लगे और वीनकी सुमधुर ध्वनि उठने लगी । (२२-२६)

मधुर, सम और लय युक्त वाद्यध्वनि स्वर्ग, भूमि एवं प्राणिमात्रके कानोंमें गूँजने लगी । एक ओर तो मानवके कानोंको सुखद प्रतीत होने-वाला दिव्य शब्द जारी था, तो दूसरी ओर भरतकी सेना विश्वकर्माकी वह तैयारी देखने लगी । लगभग पाँच योजनोतक भूमि साफ सुथरी दीख पड़ी तथा वह नीलम एवं वैदूर्य रत्नोंके तुल्य मुलायम घातसे ढक गयी । उस भूभागमें विल्व, कपित्थ, पनस, वीजपूरक, आँवला और आम्र वृक्ष फलोंसे लदे सुहाने लगे । ऐसा दीख पड़ा कि उत्तर कुरु प्रांतसे मानों दिव्य और भोग्य चीजोंसे परिपूर्ण वन उधर आया हो तथा तटपर विविध पेड़ोंसे युक्त सौम्य नदीकाभी दर्शन हुआ । (२७-३१)

सफेद रंगवाले, चार कमरोंसे युक्त मञ्जान, हाथी और घोड़ोंके अस्त-बल, महल तथा बड़ी अट्टालिका एवं शुभ तोरण अस्तित्वमें आ गये । उस जगह एक राजमहल पैदा हुआ जो शुभ्र, मेघरत्न नारंग जगमगाते

शुक्लमाल्यकृताकारं दिव्यगन्धसमुक्षितम्	३३
चतुरस्रमसंवाधं शयनासनयानवत् ।	
दिव्यैः सर्वरसैर्युक्तं दिव्यभोजनधत्नवत्	३४
उपकल्पितसर्वान्नं धौतनिर्मलभाजनम् ।	
फलितसर्वासनं श्रीमत्स्वास्तीर्णशयनोत्तमम्	३५
प्रविधेश महाबाहुरनुज्ञातो महर्षिणा ।	
वेदम तद्रत्नसंपूर्णं भरतः कैकयीसुतः	३६
अनुजगमुच्च ते सर्वे मन्त्रिणः सपुरोहिताः ।	
यभूवुश्च मुदा युक्तास्तं दृष्ट्वा वेदमसंधिधिम्	३७
तत्र राजासनं दिव्यं व्यजनं छत्रमेव च ।	
भरतो मन्त्रिभिः सार्धमभ्यवर्तत राजवत्	३८
आसनं पूजयामास रामायाभिप्रणम्य च ।	
वालव्यजनमादाय न्यपीदत्सचिवासने	३९

लगा, जिसपर बढिया तोरण लगाये थे, सफेद पुष्पोंसे जो सजाया गया था और जिसमें दिव्य चन्दन-जलका छिड़काव किया था । वह चतुष्कोण शान्त बिस्तर, आसन एवं वाहनोंमें युक्त था; सब तरहके दिव्य रस मौजूद थे और दिव्य भोग्य वस्तु एवं कपड़ोंका भी अभाव न था । हर तरह का अन्न उधर तैयार था, भीतर धोये हुए साफसुधरे बर्तन थे, हर किस्मके आसन तैयार थे और वह महल सुहाने लगा जब कि उत्कृष्ट बिस्तर फैलाये गये । (३२-३५)

इस भौतिके रत्नसंपूर्ण उस महलमें पराक्रमी भरत ऋषि भरद्वाजकी आज्ञा लेकर प्रविष्ट हुआ, तब पुरोहितोंके साथ सभी सचिवभी उनके पीछे जाने लगे और मकान घँघवानेका वह ढंग देखकर बड़े खुश हुए । वहाँपर राजाके लिए उचित दिव्य सिंहासन, छत्र चामर विद्यमान था जिसकी प्रशिक्षणा मंत्रिमंडलके माध भरतने की । यह तो प्रभु रामचंद्रजी का ही है, ऐसी धारणा करके रामके प्रणामके उपरान्त सिंहासनकी पूजा करके नीचे सचिवोंके लिए तैयार किए आसनपर चँवर लेकर भरत बैठे । योग्यताके

आनुपूर्व्यान्निपेदुश्च सर्वे मन्त्रिपुरोहिताः ।	
ततः सेनापतिः पश्चात्प्रशास्ता च न्यपीदत	४०
ततस्तत्र मुहूर्तेन नद्यः पायसकर्दमाः ।	
उपातिष्ठन्त भरतं भरद्वाजस्य शासनात्	४१
आसामुभयतः कूलं पाण्डुमुत्तिकलेपनाः ।	
रम्याश्चावसथा दिव्या ब्राह्मणस्य प्रसादजाः	४२
तेनैव च मुहूर्तेन दिव्याभरणभूषिताः ।	
आगुर्विंशतिसाहस्रा ब्रह्मणा प्रहिताः स्त्रियः	४३
सुवर्णमणिमुक्तेन प्रचालेन च शोभिताः ।	
आगुर्विंशतिसाहस्राः कुवेरप्रहिताः स्त्रियः	४४
याभिर्गृहीतः पुरुषः सोन्माद इव लक्ष्यते ।	
आगुर्विंशतिसाहस्रा नन्दनादप्सरोरणाः	४५
नारदस्तुम्बुरुर्गोपः प्रभया सूर्यवर्चसः ।	
एते गन्धर्वराजानो भरतस्याग्रतो जगुः	४६
अलम्बुषा मिश्रकेशी पुण्डरीकाथ वामना ।	

अनुसार सभी मंत्री और पुरोहित वहाँ बैठ गये; पश्चात् सेनापति और शिबिरके संरक्षकभी वहाँ आ बैठे (३६-४०)

एक मुहूर्तके बीत जानेपर भरद्वाजकी आज्ञासे पायसरूप कीचटसे भरी नदियाँ भरतके समीप आ खड़ी हुईं। इन नदियोंके दोनों तटोंपर ब्राह्मण भरद्वाजके प्रसादसे पैदा हुए दिव्य तथा रम्य निवासस्थल मौजूद थे जिनपर सफेद चूना लीपा था। उसी वक्त ब्रह्मदेवकी भोजी और दिव्य गहनें पहनीं बीस हजार नारियाँ उधर उपस्थित हुईं। कुवेरकी भोजी बीस सहस्र महिलाएँ भी सुवर्ण, रत्न, मोती, मूंगा धारण कर सुहाती हुईं आ खड़ी हुईं। नन्दन वनमेंसे बीस हजार ऐसी अप्सराओंका संघ आ पहुँचा कि जिनके चंगुलमें फँस जानेपर पुरुषको उन्माद हुआसा प्रतीत होता है। (४१-४५)

भरतके सम्मुख सूर्यतुल्य कान्तिसे चमकनेवाले गन्धर्वराज नारद

उपानृत्यन्त भरतं भरद्वाजस्य शासनात्	४७
यानि माल्यानि देवेषु यानि चैत्ररथे वने ।	
प्रयागे तान्यहृदयन्त भरद्वाजस्य तेजसा	४८
विल्वा मार्दङ्गिका आसञ्जम्पाग्राहा विभीतकाः ।	
अश्वत्था नर्तकाश्चासन्भरद्वाजस्य तेजसा	४९
ततः सरलतालाश्च तिलकाः सतमालकाः ।	
प्रहृष्टास्तत्र संपेतुः कुब्जा भूत्वाथ वामनाः	५०
शिशुपामलकी जम्बूयाश्चान्याः कानने लताः ।	
प्रमदाधिग्रहं कृत्वा भरद्वाजाश्रमेऽवसन्	५१
सुरां सुरापाः पियत पायसं च बुभुक्षिताः ।	
मांसानि च सुमेध्यानि भक्ष्यन्तां यो यदिच्छति	५२
उच्छेद्य स्नापयन्ति स नदीतीरेषु बल्लुपु ।	
अप्येकमेकं पुरुषं प्रमदाः सप्त चाष्ट च	५३
संवाहन्त्यः समापेतुर्नार्यो विपुललोचनाः ।	
परिमृज्य तदान्योऽन्यं पाययन्ति वराङ्गनाः	५४

तुंगुरु एवं गोप गाने लगे । भरद्वाजकी आज्ञासे चार अप्परार्ण भरतके सामने नाचने लगीं । देवोंके समीप तथा चैत्ररथ वनमें जो फूल खिलने हैं, वे भरद्वाजके तप-सामर्थ्यसे प्रयागमें दीख पड़े । इतनाही क्यों अपितु भरद्वाजके तप-प्रभावसे विल्ववृक्ष मृदंग बजाने लगे, विभीतक पेड़ ताल धरने लगे और अश्वत्थवृक्ष नाचने लगे । उस समय देवदार, तमालक वगैरह पेड़भी खुशीसे बौने और कुबड़ेके रूपमें यहाँ आ गिरे । (४६-५०)

शिशुपा, औवली, जंबू तथा अन्य भी कुछ जंगलकी लताएँ नारीरूप धारण करके भरद्वाजाश्रममें रहने लगीं । वे कहने लगीं कि 'सुरा पीनेवाले सुरापान करने लगे, भूरे खीर खाना शुरू करें और मांसाहारके आदी हो तो अच्छे पवित्र मांस खा लें ।' मतलब यही है कि जिनकी जमी इच्छा हो वे बैसीही खानेपीनेकी चीजें ले लें । सुन्दर नदीतटपर सात सात और कभी आठआठ युवतियाँ एक एक पुरुषको देहपर तेल लगाकर नहलाने लगीं ।

हयान्गजान्खरानुप्रांस्तथैव सुरभेः सुतान् ।	
अभोजयन्वाहनपास्तेषां भोज्यं यथाविधि	५५
इक्षुंश्च मधुलाजांश्च भोजयन्ति स्म वाहनान् ।	
इक्ष्वाकुवरयोधानां चोदयन्तो महाबलाः	५६
नाश्वबन्धोऽश्वमाजानन्न गजं कुक्षरग्रहः ।	
मत्तप्रमत्तमुदिता सा चमूस्तत्र संवभौ	५७
तर्पिताः सर्वकामैश्च रक्तचन्दनरूपिताः ।	
अप्सरोगणसंगुक्ताः सैन्या वाचमुदीरयन्	५८
नैवायोध्यां गमिष्यामो न गमिष्याम दण्डकान् ।	
कुशलं भरतस्यास्तु रामस्यास्तु तथा सुखम्	५९
इति पादातयोध्याश्च हस्त्यश्वारोहवन्धकाः ।	
अन्नाथास्तं विधिं लब्ध्वा वाचमेतामुदीरयन्	६०

अन्य नेत्रवाली महिलाएँ पुरुषोंके पैर दवानेके लिए आने लगीं और ३ सन्भ्रान्त महिलाएँ नहलानेसे गीले हुए शरीरोंको वस्त्र आदिसे विभूषित कर एक दूसरेको मद्य आदि पिलाने लगीं । वाहनोंकी रक्षाके लिए नियुक्त पुरुष घोड़ों, हाथियों, गदहों, ऊँटों तथा बैलोंको उनकी खानेकी चीजें रीत तरह देने लगे । (५१-५५)

इक्ष्वाकुओंके जो उच्च कोटिके योद्धा थे, उनके वाहनोंको खिलानेके लिए हाँकते हुए बलिष्ठ संरक्षक उन्हें गधे, शहद तथा भूने दाने खिलाने लगे घोड़ेकी और साईंसर्रा ध्यान न गया और पीलवानने हाथीकी सुघ लेन छोड़ दिया । बात ऐसी हुई कि सेनाके सभी लोक मतवाले, नशाले और सुस्त हो गये । जब सारी इच्छाएँ पूर्ण हुईं, लाल चन्दनका लेप किया और अप्सराओंके झुंड साथमें खड़े हुए तो सैनिक कहने लगे 'हम न तो अयोध्यामेंही जायेंगे और नाही दण्डकावनमें घुसेंगे; भरत सकुशल रहे तथा रामचंद्रजीभी सुखी रहें ।' इस भाँति, पैदल चलनेवाले, घुड़सवार, पीलवान तथा घोड़ोंकी देखभाल करनेवाले लोग उस आवभगतका तरीका देखकर मानों स्वतंत्रसे होकर वैसे कहने लगे । (५६-६०)

ददृशुर्विसितास्तत्र नरा लौहीः सहस्रशः	६८
वभूवुर्वनपार्श्वेषु कृपाः पायसकंदमाः ।	
ताश्च कामदुघा गावो वृमाश्चासन्मधुश्च्युतः	६९
वाप्यो मैरेयपूर्णाश्च मृष्टमांसचयैर्वृताः ।	
प्रतप्तपैठरैश्चापि मार्गमायूरकौक्कुटैः	७०
पार्त्राणां च सहस्राणि स्थालीनां नियुतानि च ।	
न्यर्वुदानि च पात्राणि शतकुम्भमयानि च	७१
स्थाल्यः कुम्भ्यः करम्भ्यश्च दधिपूर्णाः सुसंस्कृताः ।	
यौवनस्थस्य गौरस्य कपित्थस्य सुगन्धिनः	७२
हृदाः पूर्णाः रसालस्य दध्नः श्वेतस्य चापरे ।	
वभूवुः पयसश्चान्ये शर्कराणां च संचयाः	७३
कल्कांश्चूर्णकपायांश्च स्नानानि विविधानि च ।	
ददृशुर्भाजनस्थानि तीर्थेषु सरितां नराः	७४
शुक्लानंशुमतश्चापि दन्तधावनसंचयान् ।	

हुण् तथा मिठास, रसीलापनसे लबालब भरे हुण् दाल तथा सफेद भातके चारों ओर और ऊपर फूल रखे हुण् सुवर्ण बगैरहके बर्तन सैनिक लोग अचम्भेमें आकर देखने लगे। उस जंगलमेंभी मंगल कैसे हुआ सो देखो, खीरसे भरे हुण् कुएं, चाहे उतना दूध दुहकर देनेवाली गौएँ तथा मीठा रस चूनेवाले पेड़ पैदा हुए। मैरेय नामक मधुसे भरी वावडियाँ दिखाई देने लगीं और गर्म तवेपर भूनकर तैयार किये मृग, मयूर एवं मुर्गोंके लच्छेदार मांसोंके ब्रोह्मसे चें बेरी थीं। (६६-७०)

भातसे पूर्ण सुनहली हजारों पत्तलें, भार्जा एवं रायतेसे पूर्ण सोनेकी बनायी लुटियाँ और सुनहली करोड़ों थालियाँ दीख पड़ीं। पीले रंगवाले तथा महकभरे ताजे छाछ एवं मट्ठेसे भरे और खूब अच्छी तरह सजाए हुए बर्तन छोटे थे; दहीके बर्तनभी थे। जल पीनेके प्याले मौजूद थे। जीरा डाले हुए मट्ठेके झील पाये जाते थे, सफेद दहीके तालाब थे, दूधके झरने शरते थे और चीनीके भाण्डारभी थे। सिपाही देख रहे थे कि किस भाँति

शुक्लांश्चन्दनकल्पांश्च समुद्रेष्ववतिष्ठतः	७५
दर्पणान्परिमृष्टांश्च वाससां चापि संचयान् ।	
पादुकोपानहं चैव युग्मान्यत्र सहस्रशः	७६
आञ्जनीः कङ्कतान्कूर्चाश्चित्राणि च धनूपि च ।	
मर्मत्राणानि चित्राणि शयनान्यासनानि च	७७
प्रतिपानहृदान्पूर्णान्खरोपूगजवाजिनाम् ।	
अवगाह्य सुतीर्थाश्च हृदान्सोत्पलपुष्करान्	७८
आकाशवर्णप्रतिमान्स्वच्छतोयान्सुखाप्लवान्	७९
नीलवैदूर्यवर्णांश्च मृदून्यवससंचयान् ।	
निर्वापार्थं पशूनां ते ददशुस्तत्र सर्वशः	८०
व्यस्मयन्त मनुष्यास्ते स्वप्नकल्पं तदद्भुतम् ।	
दृष्ट्वाऽऽतिथ्यं कृतं तावद्भारद्वाजमहापिणा	८१
इत्थयं रममाणानां देवानामिव नन्दने ।	
भरद्वाजाथमे रम्ये सा रात्रिर्व्यत्यवर्तत	८२
प्रतिजग्मुश्च ताः सर्वा गन्धर्वाश्च यथागतम् ।	

कल्क, चूर्ण एवं कपाय और महानेक पानीसे भरे बरतन नदीतीर्थोंपर रखे थे; शुभ्र तथा नुकीले दतीनके झुड थे, निर्मल गन्धके पूडे थे । (७१-७५)

साफ आईने, कपडोंका धान, हजारों जूते, काजलके डब्बे, कैदियों, बुरादा, छाते, धनुष्य, अनूठे वस्त्र, विस्तर, आमन सब कुछ थे । पानीसे भरे झील देखे जाते थे, जहाँ कि गवह, ऊँट, हाथी, घोडे घुसकर सुगमतासे जा सकते थे; वे आस्मानकी नाई नीले, निर्मल जलसे पूर्ण और सुखपूर्ण ढंगसे स्नान करने योग्य सरोवर थे । वे देखते थे कि जानवरोंके खानेके, नीलवैदूर्य रत्नतुल्य घासके हजारों मुलायम गडरे पड़े थे । (७६-८०)

इस ढंगकी आचमगत जो अतिअनोखी, स्वप्नकी भाँति तथा भरद्वाजकी बभायी थी, उसे देखकर लोग दीर्घांतल उँगली दधाने लगे । भरद्वाजके रमणीय आधममे मानों नन्दन बरनमें बिहार करते हुए देवोंके तुल्य वे रात काटने लगे । वादमे मुनिकी आज्ञा लेकर सभी गंधर्व, दिव्य ललनाएँ

हित्वा यानानि यानार्हा ब्राह्मणं पर्यचारयन् ।	
वेपमाना कृशा दीना सह देव्या सुमित्रया	१५
कौसल्या तत्र जग्राह कराभ्यां चरणौ मुनेः ।	
असमृद्धेन कामेन सर्वलोकस्य गर्हिता	१६
कैकेयी तत्र जग्राह चरणौ सव्यपत्रपा ।	
तं प्रदक्षिणमागम्य भगवन्तं महामुनिम्	१७
अदूराद्भरतस्यैव तस्थौ दीनमनास्तदा ।	
तत्र पप्रच्छ भरतं भरद्वाजो महामुनिः	१८
विशेषं ज्ञातुमिच्छामि मातृणां तव राघव ।	
एवमुक्तस्तु भरतो भरद्वाजेन धार्मिकः	१९
उवाच प्राञ्जलिभूत्वा वाक्यं चचनकोविदः ।	
यामिमां भगवन्दीनां शोकानशनकर्शिताम्	२०
पितुर्हि महिषीं देवीं देवतामिष पश्यसि ।	
एषा तं पुरुषव्याघ्रं सिंहविक्रान्तगामिनम्	२१
कौसल्या सुपुत्रे रामं धातारमदितिर्यथा ।	
अस्या धामभुजं श्लिष्टा या सा तिष्ठति दुर्मनाः	२२
इयं सुमित्रा दुःस्वार्ता देवी राक्षश्च मध्यमा ।	
कर्णिकारस्य शाखेव शीर्णपुष्पा वनान्तरे	२३

भरत व भरद्वाजकी बातचीत सुन राजखियोंने जाना कि यात्रा होगी । यद्यपि दशरथरानियां पैदल नहीं चलती थीं, तो भी पैदल ही भरद्वाजकी प्रदक्षिण करने लगीं । कौसल्याने सुमित्राके साथ प्रदक्षिणा कर भरद्वाजके चरण छुए, कैकेयीने भी लज्जासे कपिकी प्रदक्षिणा कर उनके चरण छुए । उस समय भरद्वाज भरतसे बोले, 'हे राघव ! मैं तुम्हारी माताओंका विशेष वृत्तान्त जानना चाहता हूँ ।' (१४-१९)

इसपर वाक्यकोविद भरत हाथ जोड़ बोले, 'हे भगवन् ! जो यह बहुत दीन, शोक व उपवासोंसे दुर्बल हो गई हैं, पिताकी सयसे बड़ी पटरानी हैं । पुरुषसिंह श्रीरामको इन्हीं कौसल्याने जन्म दिया है और उनकी बाई



एतस्यास्तौ मुतौ देव्याः कुमारौ देववर्णिनौ ।

उभौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ वीरौ सत्यपराक्रमौ २४

यस्याः कृते नरव्याघ्रौ जीवनाशमितो गतौ ।

राजा पुत्रविहीनश्च स्वर्गं दशरथो गतः २५

क्रोधनामकृतप्रज्ञां हृतां सुभगमानिनीम् ।

ऐश्वर्यकामां कैकेयीमनार्याभार्यरूपिणीम् २६

ममैतां मातरं विद्धि नृशंसां पापनिश्चयाम् ।

यतो मूलं हि पश्यामि व्यसनं महदात्मनः २७

इत्युक्त्वा नरशार्दूलो बाष्पगद्गदया गिरा ।

विनिःश्वस्य स ताम्राक्षः क्रुद्धो नाग इव श्वसन् २८

भरद्वाजो महापिंस्तं ब्रुवन्तं भरतं तदा ।

प्रत्युवाच महाबुद्धिरिदं वचनमर्थवित् २९

न दोषेणावगन्तव्या कैकेयी भरत त्वया ।

रामप्रव्राजनं ह्येतत्सुखोदकं भविष्यति ३०

देवानां दानवानां च क्रूपाणां भायितात्मनाम् ।

हितमेव भविष्यद्भि रामप्रव्राजनादिह ३१

अभिवाद्य तु संसिद्धः कृत्वा चेनं प्रदक्षिणम् ।

आमन्त्र्य भरतः संभ्यं युज्यतामिति चाब्रवीत् ३२

भुजामें लिपटी उदात्तचित्त पड़ी है, ये सुमित्रा राजाकी बिचली रानी हैं । इन्हींके सत्यपराक्रमी रूपवान् लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न दो पुत्र हैं । जिसके कारण राम लक्ष्मण वनको गये व पुत्रसे हीन हो राजा स्वर्गको सिधारे, जो सदा क्रोधवती निबुद्धि अहङ्कारभरी अपनको सदा सुभगा माननेवाली तथा ऐश्वर्यकी इच्छुक है, इसका कैकेयी नाम है । इस पापनिश्चया 'निलंजाको भरी माता जानिये ।' यह कह भरतकी बाणी गद्गद् हो क्रोधसे आंख लाल हो गई । (१९-२८)

ऐसा कहते हुए भरतये तपोवन भरद्वाज बोले, 'हे भरत ! कैके दो । रामवनवास वडे सुखका कारण होगा । रामवनवासमे देव

गिरेः सानूनि रम्याणि चित्रकूटस्य संप्रति ।	
धारणैरवमृद्यन्ते मामकैः पर्वतोपमैः	९
मुञ्चन्ति कुसुमान्येते नगाः पर्वतसानुषु ।	
नीला इवातपापाये तोयं तोयधरा घनाः	१०
किंनराचरितं देशं पश्य शत्रुघ्न पर्वते ।	
ह्रयैः समन्तादाकीर्णं मकरैरिव सागरम्	११
एते मृगगणा भान्ति शीघ्रवेगाः प्रचोदिताः ।	
वायुप्रविद्धाः शरदि मेघजाला इवाम्वरे	१२
कुर्वन्ति कुसुमार्पणञ्जिरःसु सुरभीनमी ।	
मेघप्रकाशैः फलकैर्दाक्षिणात्या नरा यथा	१३
निष्कूजमिव भून्वेदं वनं घोरप्रदर्शनम् ।	
अयोध्येव जनाकीर्णा संप्रति प्रतिभाति मे	१४
खुरैरुदीरितो रेणुर्दिवं प्रच्छाद्य तिष्ठति ।	
तं चहत्यनिलः शीघ्रं कुर्वन्निव मम प्रियम्	१५
स्पन्दनांस्तुरगोपेतान्सूतमुख्यैरधिष्ठितान् ।	
एतान्संपततः शीघ्रं पश्य शत्रुघ्न कानने	१६
एतान्चित्रासितान्पश्य बर्हिणः प्रियदर्शनान् ।	

निश्चय यही चित्रकूट गिरि तथा यही मन्दाकिनी नदी है, नील रंग  
वन भी यही है जो दोख पड़ता है । इस चित्रकूट गिरिके रमणीक शृंगोंको  
हमारे हाथी तोड़ रहे हैं । वृक्ष पर्वतके कंगूरोंपर फूल बरसाते हैं । (१-१०)

‘हे शत्रुघ्न ! इस पर्वत पर देखो, उसके चारों ओरसे घोड़े चले जाते हैं ।  
भागते हुए मृगगण ऐसी जोभा देते हैं जैसे शरद्व्रतुमें आकाशमें बादल ।  
हमारे सैनिकगण शिरोंपर सुगंधित काले फूलोंके गुच्छे ऐसे रखे हैं जैसे  
दाक्षिणात्य मेघोंके नमान नीली ढालें शिरपर रखते हैं । यह वन पक्षी व  
मृगोंके शब्दोंसे ऐसा रहित भयावह लगता है मानों आज कलसी  
अयोध्या ही है । घोड़े आदि पशुओंके खुरोंसे उठी हुई धूलि आकाशको  
आच्छादित कर रहा है । हे शत्रुघ्न ! घोड़े उते इन रथोंको देखो, वनों

एवमापततः शैलमधिवासं पतत्रिणाम्	१७
अतिमात्रमयं देशो मनोज्ञः प्रतिभाति मे ।	
तापसानां निवासोऽयं व्यक्तं स्वर्गपथोऽनघ	१८
मृगा मृगीभिः सहिता बहवः पृषता बने ।	
मनोहरा लक्ष्यन्ते कुसुमैरिव चित्रिताः	१९
साधु सैन्याः प्रतिष्ठन्तां विचिन्वन्तु च काननम् ।	
यथा तौ पुरुषव्याघ्रौ दृश्येते रामलक्ष्मणौ	२०
भरतस्य वचः श्रुत्वा पुरुषाः शस्त्रपाणयः ।	
विविशुस्तद्वनं शूरा धूमाग्रं बृहदुस्ततः	२१
तं समालोक्य धूमाग्रमूचुर्भरतमागताः ।	
नामनुष्यं भवत्यग्निर्व्यक्तमत्रैव राघवौ	२२
अथ नात्र नरव्याघ्रौ राजपुत्रौ परंतपौ ।	
अन्ये रामोपमाः सन्ति व्यक्तमत्र तपस्विनः	२३
तच्छ्रुत्वा भरतस्तेषां वचनं साधुसंमतम् ।	
सैन्यानुवाच सर्वास्ता नमित्रबलमर्दनः	२४
यत्ता भयन्नस्तिष्ठन्तु नेतो गन्तव्यमग्रतः ।	
अहमेव गमिष्यामि सुमन्त्रां धृतिरेव च	२५

कैसे चले जाते हैं । इन सत्ताये प्रियदर्शन मोरोंको देखो, डरसे कैसे उड़े चले जाते हैं । यह देश तपोवन होनेसे सुखे स्वर्गके समान प्रिय व सुन्दर लगता है । इस वनमें बहुत मृग मृगियोंके साथ चले जाते हैं, उनके ऊपर बिन्दु बने होनेके कारण ऐसे जान पड़ते हैं मानों फलोंसे ही चित्रित हैं। अब सैनिक वनमें घूमघूम कर ढूँढे जिससे राम लक्ष्मण मिल जायें।' (११-२०)

भरतके के ऐसे वचन सुन शस्त्रधारी पुरुष वनमें प्रवेश कर गये । उन्हें भागे हुआ उठता दिखाई दिया, वे लोग धुआं देख लौट आये और भरतसे बोले कि 'यिना मनुष्यके हुआ नहीं हो सकता । अतएव निश्चय ही राम लक्ष्मण यहीं हैं । यदि राजपुत्र दोनों भाई यहाँ न होंगे तो उनके समान कोई और ही तपस्वी रहते होंगे ।' उन लोगोंके ऐसे वचन सुन भरत

एवमुक्तास्ततः सैन्यास्तत्र तस्थुः समन्ततः ।

भरतो यत्र धूमाग्रं तत्र दृष्टिं समादधत् २६

व्यवस्थिता या भरतेन सा चमूर्निरीक्षमाणापि च भूमिमग्रतः ।

वभूव हृष्टा न चिरेण जानती प्रियस्य रामस्य समागमं तदा २७  
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽव्योधाकाण्डे त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमः सर्गः ।

[ ३४७९ ]

दीर्घकालोपितस्तस्मिन्निरौ गिरिवरप्रियः ।

वैदेह्याः प्रियमाकाङ्क्षन्स्वं च चित्तं विलोभयन् १

अथ दाशरथिश्चित्रं चित्रकूटमदर्शयत् ।

भार्याममरसकाशः शचीमिव पुरंदरः २

न राज्यभ्रंशनं भद्रे न सुहृद्भिर्विनाभवः ।

मनो मे बाधते दृष्ट्वा रमणीयमिमं गिरिम् ३

पश्येममचलं भद्रे नानाद्विजगणायुतम् ।

शिखरैः खमिवोद्विद्धैर्धातुमद्विर्विभूषितम् ४

केचिद्रजतसंकाशाः केचिन्क्षतजसंनिभाः ।

पीतमाञ्जिष्टवर्णाश्च केचिन्मणिवरप्रभाः ५

पुष्पाककेतकाभाश्च केचिज्ज्योतीरसप्रभाः ।

बोले कि 'तुम लोग यहीं ठहरो, मैं सुमन्त्रके साथ अकेला ही जाऊंगा।' भरत जहां धुआं दिखाई पड़ता था उसी ओर को चले। अस्तु। भरतके द्वारा खड़ी की गयी वह सेना निवासके लिए स्थान देखने लगी और प्रिय रामके साथ भरतकी भेट शीघ्र होगी, ऐसा जानकर आनंदप्रसन्न हुई। (२१-२७)

यहाँ तिरयात्राओं सर्ग समाप्त हुआ ।

चित्रकूट पर राम सीताका प्रिय करने तथा अपने चित्तको प्रसन्न करनेके लिये रहते रहे और सीताको चित्रकूट दिखाने लगे। राम जानकीसे बोले 'हे प्रिये ! इस सुन्दर गिरि को देख। राज्य त्याग करना तथा मित्रोत्ते रहित यहां रहना तुझको दुःख नहीं देता। हे भद्रे ! नाना पक्षिगणसेवित धातु सहित, शृंगोसे शोभित यह गिरि देखो। इस गिरिके कोई कोई

विराजन्तेऽचलेन्द्रस्य देशा धातुविभूषिताः	६
नानामृगगणैर्द्वीपितरक्षवृक्षगणैर्वृतः ।	
अदुष्टैर्भात्ययं शैलो बहुपक्षिसमाकुलः	७
आम्रजम्बवसनैर्लोध्रैः प्रियालैः पनसधैवैः ।	
अङ्गोलेर्भव्यतिनिशैर्विल्वतिन्दुकत्रेणुभिः	८
काश्मर्यारिष्टवरणैर्मधुकैस्तिलकैरपि ।	
यदर्यामलकैर्नोपैर्वैत्रधन्वनवीजकैः	९
पुष्पवद्भिः फलोपेतैश्छायावद्भिर्मनोरमैः ।	
एवमादिभिराकीर्णः ध्रियं पुष्पत्ययं गिरिः	१०
शैलप्रस्थेषु रम्येषु पश्येमान्कामहर्षणान् ।	
किन्नरान्द्वन्द्वशो भद्रे रममाणान्मनस्विनः	११
शाखावसक्तान्खड्गांश्च प्रवराण्यम्बराणि च ।	
पश्य विद्याधरस्त्रीणां क्रीडादेशान्मनोरमान्	१२
जलप्रपातैरुद्धेदैर्निष्पन्दैश्च क्वचित्क्वचित् ।	
स्नवद्भिर्भात्ययं शैलः स्नवन्मद इव द्विपः	१३
गुहासमीरणो गन्धात्तानांपुष्पभवान्वहन् ।	
व्राणतर्पणमभ्येत्य कं सरं न प्रहर्षयेत्	१४
यदीह शरदोऽनेकास्त्वया सार्धमनिन्दिते ।	

स्थान तो चाँदीके समान मफेद, कोई कोई रक्तके समान लाल हैं, कोई पुष्प-  
राग व स्फटिकमणिके रङ्गके, कोई केतकीके रंगके कोई नक्षत्रों व पाराके रंगके  
हैं। इन सब नाना प्रकारकी धातुओंके कारण नाना रंगके स्थान भासित  
होते हैं। आम, जामुन, असना, लोध, चिरईजी, अड़हर, शबेल, तेंदुआ, बांस,  
काश्मर, नीब, तिलक अमला, येतवजौरा आदि और माना फलित सुन्दर  
छायायुक्त वृक्षोंसे शोभित यह पर्वत आभाको बढ़ाता है। (१-१०)

‘हे भद्रे! इसके कैंग्रोंपर अपनी अपनी जाँडीके संग विहरते हुए किल्लरोंको  
देखो, वृक्षोंकी डालोंपर विद्याधरोंकी स्त्रियोंके वस्त्र व उनके खड्ग टँगे हैं।  
ठौर ठौर झरने व जल मार्ग बने हैं, कहीं अर झरने रहे हैं। इसको गुहासे

लक्ष्मणेन च यत्स्यामि न मां शोकः प्रघर्षति	१५
बहुपुष्पफले रम्ये नानाद्विजगणायुते ।	
विचित्रशिखरे ह्यसिन्नतवानसि भामिनि	१६
अनेन वनवासेन मम प्राप्तं फलद्वयम् ।	
पितृश्चानृण्यता धर्मे भरतस्य प्रियं तथा	१७
वैदेहि रमसे कच्चिच्चित्रकूटे मया सह ।	
पश्यन्ती विविधान्भावान्मनोवाक्कायसंमतान्	१८
इदमेवानृतं प्राहू राशि राजर्षयः परे ।	
वनवासं भवार्थाय प्रेत्य मे प्रपितामहाः	१९
शिलाः शैलस्य शोभन्ते विशालाः शतशोऽभितः ।	
बहुला बहुलैर्धर्णेर्नलिपीतसितारुणैः	२०
निशि भान्त्यचलेन्द्रस्य हुताशनशिखा इव ।	
ओषध्यः स्वप्रभालक्ष्म्या भ्राजमानाः सहस्रशः	२१
केचित्क्षयनिभा देशाः केचिदुद्यानसंनिभाः ।	
केचिदेकशिला भान्ति पर्वतस्यास्य भामिनि	२२
भित्त्वेव यमुधां भाति चित्रकूटः समुत्थितः ।	

निकला पवन नाना पुष्पोंका रस ले प्राणोंको तृप्त करता है । यदि यहां अनेक वपौतक रहूं तो भी मुझको शोक न होगा । फलित वृक्ष लगे हुए, नाना पक्षियोंसे सेवित इस पर्वतपर रहनेको मेरी इच्छा होती है । इस वनमें रह कर मैंने एक पितासे उर्कणता तथा भरतप्रियता रूप दो फल पाये । हे सीते ! मन, वचन, कर्मोंके विविध भांति भावकों देखती दिखाती मेरे सँग यहाँ बिहार करो । मनुप्रभृतिने लोकके कल्याणार्थ प्रवृत्त नियम-पूर्वक वनवास करनेको अमृत कहा है । इस पर्वतकी सैंकड़ों चित्र विचित्र नोल, पीत श्वेत, अरुण रंगोंकी शिलाएँ चारों ओरसे शोभित होती हैं । (११-२०)

‘रात्रिको इस पर्वतकी औषध अपनी प्रभाकी लक्ष्मीसे अग्निकी शिखाके समान सुहाती हैं । इस पर्वतके कोई कोई स्थान गृहोंके समान,

चित्रकूटस्य कूटोऽयं दृश्यते सर्वतः शुभः २३

कुण्डस्थगरपुंनागभूर्जपत्रोत्तरच्छदान् ।

कामिनां स्वास्तरान्पश्य कुशेशयदलायुतान् २४

मृदिताश्चापविद्धाश्च दृश्यन्ते कमलस्रजः ।

कामिभिर्वनिते पश्य फलानि विविधानि च २५

यस्यांकसारां तलिनीमतीत्यैवोत्तरान्कुरुन् ।

पर्यतश्चित्रकूटोऽसौ बहुमूलफलोदकः २६

इमं तु कालं वनिते विजह्मिवांस्वया च सीते सह लक्ष्मणेन ।

रतिं प्रपत्स्य कुलधर्मवर्धिनीं सतां पथि स्वैनिर्यमः परैः स्थितः २७

इत्यार्षे श्रीमदा० वा० आदि काव्येऽयोध्याकाण्डे चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ १६ ॥ [३५०६]

पद्यनर्नितमः सर्गः ।

अथ शीलाहिनिष्कम्य मैथिलीं कोसलेश्वरः ।

अदर्शयच्छुभजलां रम्यां मन्दाकिनीं नदीम् १

कोई कोई कुलवादियोंके समान है । यह चित्रकूट ऐसा जाल होता है कि मानों पृथिवीको निर्दिष्ट कर निकल आया है । ये सब गिरि जो नजर आ रहे हैं, चित्रकूट ही के हैं । तू इन तिलाग्री लोगोंकी ये ऊँची शर्याएँ देख ले, तिनपर कमलफूलके पत्ते पड़े हुए और भूर्ज, पुष्पाग, स्थगर तथा कुण्ड पेड़ोंकी पत्तियाँ बिछी हुई हैं । हे नारी ! इधर कमलफूलोंकी ये मालाएँ कुचली जाकर जगह जगह बिलरी पड़ी हैं और उसी तरह भोगनिरत लोगोंके साथे ये भौतिभौतिके फल अगूर छेंडे हुए दीस पड़ते हैं । कुबेरकी राजधानी तथा इन्द्रकी नगरी और उत्तर कुरुप्रदेशसे भी सब बड़ाबड़ा एवं प्रपुर मूल फल और जलसे युक्त यह चित्रकूट पहाड़ सुहाता है । हे कामिनी सीते ! श्रेष्ठ निजी नियमोंके आधारसे मन्त्रनोंके मार्गका अनुसरण करता हुआ मैं तेरे एवं भाई लक्ष्मणके साथ चौदह वर्षोंतक इस वनमें आनन्दपूर्वक विहार कर सकूँ तो मुझको वह सुख मिलेगा जो कुलधर्मकी वृद्धि करनेमें सहायक होगा । (२१-२७)

चौराश्रव्यों संग समाप्त हुआ ।

अग्रवीक्ष्य धरारोहां चन्द्रचारुनिभाननाम् ।	
विदेहराजस्य सुतां रामो राजीवलोचनः	२
विचित्रपुलिनां रम्यां हंससारससेविताम् ।	
कुसुमैरुपसंपन्नां पश्य मन्दाकिनीं नदीम्	३
नानाविधैस्तीररुहैर्वृतां पुष्पफलद्रुमैः ।	
राजन्तीं राजराजस्य नलिनीमिव सर्वतः	४
मृगयूथनिपीतानि कलुषाम्भांसि सांप्रतम् ।	
तीर्थानि रमणीयानि रतिं संजनयन्ति मे	५
जटाजिनधराः काले बल्कलोत्तरवाससः ।	
ऋपयस्त्वचनाहन्ते नदीं मन्दाकिनीं प्रिये	६
आदित्यमुपतिष्ठन्ते नियमादूर्ध्ववाहवः ।	
एते परे विशालाक्षि मुनयः संशितव्रताः	७
मारुतोद्भूतशिखरैः प्रनृत्त इव पर्वतः ।	
पादैः पुष्पपत्राणि सृजद्भिरभितो नदीम्	८
कचिन्मणितिकाशोदां कचित्पुलिनशालिनीम् ।	
कचित्सिद्धजनाकीर्णो पश्य मन्दाकिनीं नदीम्	९
निर्धृतान्वायुना पश्य विततान्पुष्पसंचयान् ।	

राम जानकीको गिरिकी शोभा दिखा अतिरमणीक मन्दाकिनी नदी दिखाने लगे । राजीवलोचन राम चारुचन्द्रमुखी सीतासे कहने लगे, 'हे प्रिये! अति रमणीय हंस सारसोंसे सेवित पुष्पोंमें युक्त मन्दाकिनी नदीको देखो । नाना फूल फल वृक्षयुक्त नदी कुवेरकी पुरीके तुल्य शोभा देती है । मृगोंके झुण्डोंके पीनेसे इसका जल कलुषित हो गया है, पर घाट अति रमणीय हैं । हे प्रिये ! प्रातः ही इस मन्दाकिनी नदीमें वृक्षोंके बल्कल पहिने ऋषिगण स्नान करते हैं । हे विशालाक्षि ! वे लोग जाम्बोक्त नियमोंके पालनके लिये ऊपरको भुजा उठाये सूर्योपस्थान करते हैं । इस नदीके दोनों तटोंपर लगे वृक्षोंके पवनसे कांपनेसे ऐसा ज्ञान होता है मानों यह गिरि नाच करनेका आरम्भही कर रहा है । कहीं निर्मल जल बह रहा है, कहीं सुन्दर तराई



पोप्लूयमानानपरान्पश्य त्वं तनुमध्यमे	१०
पश्यैतद्वल्गुवचसो रथाङ्गाद्वयना द्विजाः ।	
अधिरोहन्ति कल्याणि निष्कूजन्तः शुभा गिरः	११
दर्शने चित्रकूटस्य मन्दाकिन्याश्च शोभने ।	
अधिकं पुरघासाच्च मन्ये तव च दर्शनात्	१२
विधूतकल्मषैः सिद्धैस्तपोदमशमान्वितैः ।	
नित्यविक्षोभितजलां विगाहस्त्व मया सह	१३
सखीवच्च विगाहस्य सीते मन्दाकिनीं नदीम् ।	
कमलान्यवमज्जन्ती पुष्कराणि च भामिनि	१४
त्वं पौरजनवद्व्यालानयोध्यामिव पर्वतम् ।	
मन्यस्व चनिते नित्यं सरयूवदिमां नदीम्	१५
लक्ष्मणश्चैव धर्मात्मा मन्निदेशे व्यवस्थितः ।	
त्वं चानुकूला वैदेहि प्रीतिं जनयती मम	१६
उपस्पृशंस्त्रिपवणं मधुमूलफलाशनः ।	
नायोध्यायै न राज्याय स्पृहये च त्वया सह	१७

इमां हि स्म्यां गजयूथलोडितां निर्पाततायां गजसिंहवानरैः ।

सुपुष्पितां पुष्पभरैरलंकृतां न सोऽस्ति य स्यान्न गतकृमः सुखी १८

आनन्दित कर रही है, कहीं भिन्न गण तप कर रहे हैं, ऐसी मन्दाकिनीको देखो । पवनसे वृक्षोसे गिरे फूलोंके ढेर पड़े हैं । (१-१०)

‘हे कल्याणी ! अतिप्रिय मधुरभाषी पक्षिगण कैसी सुन्दर बोली बोलते हैं । मैं चित्रकूट, इस नदी तथा तुमको देख अयोध्यानिवाससे अधिक सुख मानता हूँ । पापरहित, नित्य चलायमान मन्दाकिनीमे मेरे सङ्ग स्नान करो । हे सीते ! कमलोंको जलमें डुवाती हुई मर्यादे तुल्य इस नदीमें स्नान करो । अयोध्यानिवासियोंको तो यहांके ब्यालोंके तुल्य और जयोध्याके तुल्य इस गिरिको तथा सरयूवत् इस नदीको जानो, मदा अनुरक्त धर्मात्मा लक्ष्मण और प्रिया तुम्हारे साथ स्नान करते मधु, फूलमूल गाते मुझे अयोध्या तथा राज्याकी चाह नहीं है । गज, सिंह और वानरोंने इसका जल सेवन

इतीव रामो बहुसंगतं वचः प्रियासहायः सरितं प्रति ब्रुवन् ।

चत्वार रम्यं नयनाञ्जनप्रभं स चित्रकूटं रघुवंशवर्धनः १९

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० अ० दिकाव्येऽयोध्याकाण्डे पञ्चनवतितमः सर्गः ॥ १५ ॥ [ १५२५ ]

पण्णवतितमः सर्गः ।

रामस्तु नलिनीं रम्यां चित्रकूटं च पर्वतम् ।

उत्तरे तु गिरेः पादे चित्रकूटस्य राघवः । १

ददर्श कन्दरं रम्यं शिलाघातुसमन्वितम् ।

सुखप्रसेकैस्तरुभिः पुष्पमारावलम्बिभिः २

संवृतं च रहस्यं च भक्तद्विजगणाद्युतम् ।

तद् दृष्ट्वा सर्वभूतानां मनोदृष्टिहरं वनम् ३

उवाच सीतां काकुत्स्थो वनदर्शनावसितः ।

वैदेहि रमते चक्षुस्तवास्मिन्नगिरिकन्दरे ४

परिश्रमविघातार्थं साधु तावदिहास्यताम् ।

किया है, हाथियोंसे इसका जल क्षुब्ध किया गया है, पुष्पयुक्त इस नदीमें स्नान कर सुखी नहीं, ऐसा पुरुषही नहीं है । ' इस प्रकार प्रियाराम मित्रसे युक्त रघुवंशवर्धक रामचन्द्र, मन्दाकिनी नदीके संबंधमें भाष करता हुआ, कज्जलगुल्य, नीलवर्ण और रम्य चित्रकूट पर्वतपर संचार कर लगा । (११-१९)

यहाँ पंचाक्षरों सर्ग समाप्त हुआ ।

चित्रकूट पर्वत और रमणीय नदीका दर्शन सीताजीको करा चुकनेपर रघुवंशमें पैदा होनेवाले रामचंद्रजीने चित्रकूटकी तलहटीमें विद्यमान गुफाको देख लिया जो कि रमणीय होती हुई चट्टानों तथा धातुओं अं सुखद मकरन्द चूनेवाले एवं पुष्पभारसे लदे पेड़ोंसे भरी थी । वह गु बिलकुल एकान्त स्थानमें थी और वहाँपर मतवाले पंछी यथेष्ट मौजूद थे सभी प्राणियोंके दिल और दृष्टिको आकर्षित करनेहारे उस वनविभागको देखकर रामचंद्रजी अचम्भेमें आ गये और सीतासे कहने लगे- ' हे विदे राजकन्ये ! क्या इस पर्वतकन्दगपर तेरी निगाह ठहरी है ? यदि हो, '

त्वदर्थमिह विन्यस्ता त्विर्यं श्लक्ष्णसमा शिला	५
यस्याः पार्श्वे तरुः पुष्पैः प्रविष्ट इव केसरैः ।	
राघवेणैवमुक्ता सा भीता प्रकृतिदक्षिणा	६
उवाच प्रणयस्त्रिगुणमिदं श्लक्ष्णतरं वचः ।	
अवश्यकार्यं वचनं तव मे रघुनन्दन	७
बहुशो भ्रमितश्चाद्य तव चैवं मनोरथः ।	
एवमुक्त्वा वरारोहा शिलां तामुपसर्प ह	८
सह भर्त्रानयद्याहो रन्तुकामा मनस्विनी ।	
तामेवं वृवर्ती सीतां रामो वचनमब्रवीत्	९
रम्यं पश्यसि भूतार्थं वनं पुष्पितपादपम् ।	
पश्य देवि गिरौ रम्ये रम्यपुष्पाङ्कितानिमान्	१०
गजदन्तक्षतान्वृक्षान्यस्य निर्यासवर्षिणः ।	
शिखिकाविरुतैर्दार्ढ्यं रुदतीव समन्ततः	११

तनिक इस स्थानपर थकावट दूर करनेके लिए बैठ तो जा । देख, यह सुलायम तथा अखंड चट्टान तेरे लिए यहाँ रखी है और इसकी एक ओर यह पेड़ है जिसपर परागभरे फूल खिल रहे हैं ।' (१-६)

रामचन्द्रजीके ऐसे कहनेपर निसर्गसेही सीधीसादी सीताने प्रेमके कारण अधिक रसीली और खूब मिठास भरी घाणीसे यूँ कहा 'हे राम ! जो तू रघुपरिवारको प्रसन्न करनेवाला है, तेरा कथन मुझे जरूर मानना चाहिये; आज यह ब्याल अपने अन्तस्तलमें बारबार उठकर खलबली मचाता है ।' निर्दोष अंगोवाली सीताने, ऐसा कहकर उस चट्टानके निकट जाना प्रारंभ किया, क्योंकि वह सोचविचार करनेवाली थी और मन बहलाव करना उसका उद्देश्य था । उस तरह सीताका उत्तर सुनतेही रामचन्द्रजीने उससे कहा । (६-९)

'प्रचुर वन्यसामग्रीसे तथा फूलोंसे लदे पेड़ोंके कारण भी परिपूर्ण प्रतीत होनेवाले इस रमणीय वनको तू देख रही है; किन्तु देवीजी ! इस लुभावने पहाड़पर चेतोहर फूलोंसे ब्याप्त, हाथीके दाँतोंके आघात दर्शाने-

पुत्रप्रियोऽसौ शकुनिः पुत्रपुत्रेति भापते ।	
मधुरां करुणां वार्यं पुरेव जननी मम	१२
विहगो भृङ्गराजोऽयं शालस्कन्धसमास्थितः ।	
संगतिमिव कुर्वाणः कोकिलेनावकूजति	१३
अयं वा चालकः शङ्के कोकिलानां विहंगमः ।	
सुखयत्नमसंयद्धं तथा ह्येष प्रमापते	१४
पद्मा लुसुमिता नूनं पुष्पभारतता लता ।	
दृश्यते भामिवात्यर्थं श्रमादेयि त्वमाश्रिता	१५
पद्ममुक्ता प्रियस्याङ्गे मैथिली प्रियभाषिणी ।	
भूयस्तरां त्वर्निधाङ्गी समारोहत भामिनी	१६
अङ्गे तु परिवर्तन्ती सीता सुरसुतोपमा ।	
हर्षयामास रामस्य मनो मनसिजार्पितम्	१७

पाले और लासा टपकाते हुए इन वृक्षोंकी आवलीको तू अवश्य देख ।  
 चारों ओर जो यह छोटेसे कीड़ोंका झुंड लंबी आवाज निकाल रहा है उससे  
 जान पड़ता है कि मानो यह पहाड़ बिलखने लगा हो । जैसे कुछ समय  
 पहले मेरी माता मुझको मीठी एवं करुणाभरी आवाजमें 'बेटा बेटा' कहके  
 पुकारती थी, ठीक वैसेही यह पंछी जो अपने शिशुसे प्यार करता है,  
 उसे मेरे बेटे, मेरे बेटे कहकर बुलाता है । सालवृक्षके ऊपरी भाग या  
 धड़पर चढ़कर यह भीरोंका राजा, शायद गानेके लिएही हो, कोयलके  
 साथ कूजन करता है । मैं समझता हूँ कि यह पंछी कोयलोंमें अभी बच्चाही  
 है; देखो न, यह उनकी तरह कुछ अँडवँड तो कभी ठीक तौरसे आवाज  
 निकाल रहा है । और देवीजी ! जैसे थक जानेपर तू मुझसे अधिक चिपक  
 जाती है वैसेही यह पुष्पभारसे झुकी हुई लता खूब फलफूलकर सचमुच  
 इस पेड़से मानों पूरी तरह चिपकी हुईसी दीख पड़ती है ।" (१०-१५)

ऐसा रामचंद्रजीका कहना सुनकर प्यारी बात करनेवाली और बबिड़ल  
 बंगवाली सीताने फिर अधिकही आवेगसे प्रियतमकी गोदपर चिपककर  
 बैठना शुरू किया । वह देवकन्यातुल्य सीता जब इस भाँति रामचंद्रजीकी

स निघृण्याङ्गुलिं रामा घौते मनःशिलोच्चये ।	
चकार तिलकं तस्या ललाटे रुचिरं तदा	१८
वालार्कसमवर्णेन तेजसा गिरिधातुना ।	
चक्रासं विनिविष्टेन ससंध्येव निशा सिता	१९
केसरस्य च पुष्पाणि करेणामुच राघवः ।	
अलकं पूरयामास मैथिल्याः प्रतिमानसः	२०
अभिरम्य तदा तस्यां शिलायां रघुनन्दनः ।	
अन्वीयमानो वैश्वेद्या देशमन्यं जगाम ह	२१
विचरन्ती तदा सीता ददर्श हरियूथपम् ।	
वने बहुमुगाकीर्णं विव्रस्ता राममाश्रित्य	२२
रामस्तां परिरब्धाङ्गी परिरम्य महाभुजः ।	
सान्त्वयामास घामोरुमयमन्स्याथ वानरम्	२३
मनःशिलायास्तिलकः सीतायाः सोऽथ वक्षसि ।	
समदृश्यत संक्रान्ता रामस्य विपुलैर्जसः	२४

गोदपर हडतापूरक बैठने लगी, तो अधिक कामानन्द हुए राम मानसको ज्यादा प्रसन्नता होने लगी । तब ऊँची और निर्मल मनःशिला चट्टानपर अपनी उँगली घिसकर रामचन्द्रजीने सीताके माथे या ललाटपर दीक्षा या मुन्दर रोली लगा दी । तिलकके लगा लेनेपर सीता ठाँक बैसैदी मुहाने लगी जैसी रात्री जिसमें मायंकालीन भेय दीख पड़ते हैं जगमगाने लगती है, क्योंकि वह तिलक उदायमान सूर्यकी आभाकी तरह तेजस्वी था । पश्चात् चंपक फलोंको अपने हाथमे तोड़कर रामचन्द्रजी मुदा होकर सीताके जूड़ेपर रखने लगे । इस भाँति उस स्थानमे विहार कर चुकनेपर रामचन्द्रजी दूसरी जगह चले गये और उनके पीछे सीताभी जा रही थी । (१६-२१)

भौतिभौतिके भृगोमे भरे हुए उस वनमें घूमते समय सीताजीने एक बड़ा चन्दर देख लिया, जो कई मुँडोंका मुगिया वन बैठा था तुरन्त डरके मारे वह रामचन्द्रजीसे छिपट गयी । ऐसा आलिंगन पानेपर रामचन्द्रजीने भी उमे गळे उतारा और उन चन्दरको जिडकी देकर सीताको समझी दे दी ।

प्रजहास तदा सीता गते वानरपुंगवे ।	
दृष्ट्वा भर्तारि संक्रान्तमपाङ्गं समनःशिलम्	२५
नातिदूरे त्वशोकानां प्रदीप्तमिव काननम् ।	
ददर्श पुष्पस्तवकैस्तर्जद्गिरिव वानरैः	२६
वैदेहीं त्वद्वीक्षाममशोककुसुमार्थिनी ।	
वयं तदभिगच्छामो वनमिक्ष्वाकुनन्दन	२७
तस्याः प्रिये स्थितो रामो देव्या दिव्यार्थरूपया ।	
सहितस्तदशोकानां विशोकः प्रययौ वनम्	२८
तदशोकवनं रामः सभायौ व्यचरत्तदा ।	
गिरिपुङ्गवा पिनाकीव सह हैमवतं वनम्	२९
तावन्योन्यमशोकस्य पुष्पैः पल्लवधारिभिः ।	
समलंचक्रतुरुभौ कामिनौ नीललोहितौ	३०

इस गडबडीमें सीताके ललाटपर जो रक्तिम तिलक लगाया था, वह वीर रामचन्द्रजीके वक्षपर चिपका हुआ दीख पड़ा। जब बन्दर दूर चला गया तब, मनःशिलाके साथ टेढ़ा बना हुआ वह तिलक पतिके अवयवपर लगा है ऐसा देखकर सीता खिलखिलाकर हँस पड़ी। (२२-२५)

वहाँसे समीपही सीताने एक अशोक वन देख लिया जिसमें डर दशांते हुए या घुडकते बन्दरोंके समान दिखाई देनेवाले गुलदस्तोंके कारण मानों प्रदीप्त बने अशोक पेड़ यत्रतत्र दिखाई देते थे। अशोकके उन फूलोंको लेनेकी इच्छासे सीता रामचन्द्रजीसे बोली 'चलो, उधर चलो' तो उसका प्रिय करनेमें हमेशा तल्लीन होनेवाले राजचन्द्रजी प्रसन्नचेता वनकर देवतारूपिणी और दिव्य संपदावाली सीताके साथ अशोकके वनके दुरमुठमें घुस गये। (२६-२८)

जिस प्रकार शिवजी पार्वतीके साथ हिमालय पर्वतपर घूमते थे, वैसेही सीताके साथ रामचन्द्रजी उस वनमें संचार करने लगे। लालिमा एवं नीलिमासे युक्त सीता और रामचन्द्रजीने अशोकके फूलोंसे जिनमें पत्तियोंभी थीं, एक दूसरेको सँवारा। वनमालाओं तथा कर्णभूषण और मस्तकभूषणोंसे

आवद्धवनमालौ तौ कृतापीडावतंसकौ ।	
भार्यापती तावचलं शोभयांचक्रतुर्भृशम्	३१
एवं स विविधान्देशान्दर्शयित्वा प्रियां प्रियः ।	
आजगामाश्रमपदं सुसंश्लिष्टमलंकृतम्	३२
प्रत्युज्जगाम तं भ्राता लक्ष्मणो गुरुवत्सलः ।	
दर्शयन्विविधं धर्मं सौमित्रिः सुकृतं तदा	३३
शुद्धबाणहतांस्तत्र मेध्यान्कृष्णमृगान्दश ।	
राशीकृताद्गुप्यमाणानन्यान्कांश्चन कांश्चन	३४
तद् दृष्ट्वा कर्म सौमित्रेभ्राता प्रीतोऽभवत्तदा ।	
क्रियन्तां वलयश्चेति रामः सीतामथावशात्	३५
अग्रं प्रदाय भूतेभ्यः सीताऽथ वरवर्णिनी ।	
तयोरुपददद्भ्रात्रोर्मधु मांसं च तद्भृशम्	३६
तयोस्तुष्टिमथोत्पाद्य वीरयोः कृतशौचयोः ।	
विधिवज्ज्ञानकी पश्चाच्चक्रे सा प्राणधारणम्	३७

स्वयं अलंकृत होकर उन पतिपत्नियोंने उस पर्वतको खूब चमका दिया। इस प्रकार वह प्रिय सीताको भोतिभोतिके भूभाग दर्शाकर बिलकुल नजदीक विद्यमान और अच्छी तरह सजाये अपने आश्रममें चला आया। (२९-३२)

तब भाई लक्ष्मण जो गुरुजनोंका प्यारा था और कई धर्म ठीक तौरसे कार्यान्वित करता था, अच्छी तरह निभाये बहुतसे कार्योंको दर्शाता हुआ, सामने जा खड़ा हुआ। रामचन्द्रजीने देखा कि उधर निर्मल बाणोंसे मारे हुए दस हिरन और राशिके रूपमें रखे इधर उधरके मुखाये जानेवाले मृग भी पड़े हुए हैं। भाई लक्ष्मणका वह कार्य देखकर रामचन्द्रजी बड़े संतुष्ट हुए और सीतासे कहने लगे, 'अच्छा, अब बलि तो कीजियेगा!' (३३-३५)

उस सुन्दर सीताने पहले भूतोंको उसका कुछ हिस्सा देकर दोनों भाइयोंको वह मधु पूरे मांस यथेष्ट परोसा। शुचिर्भूत बने दोनों भाइयोंकी नृप्ति होनेपर सीतानेभी कुछ थोड़ासा हिस्सा यथावत् खा लिया ताकि दरीमें प्राण रहें। मुखाकर रखनेके लिए जो बटिया दूजेंका मांस था, उसे

अमोघं कियतामस्त्रमेकमङ्गं परित्यज ।	
किमङ्गं शातयतु ते शरैर्पीका ब्रवीहि मे	५२
एतावद्वि मया शक्यं तव कर्तुं प्रियं खग ।	
एकाङ्गहीनं ह्यस्त्रेण जीवितं मरणाद्वरम्	५३
एवमुक्तस्तु रामेण संप्रधार्य स वायसः ।	
अभ्यगच्छद्वयोरक्षणस्त्यागमेकस्य पण्डितः	५४
सोऽब्रवीद्राघवं काको नैत्रमेकं त्यजाम्यहम् ।	
एकनेत्रोऽपि जीवेऽहं न्यत्रप्रसादान्नराधिप	५५
रामानुज्ञातमस्त्रं तत्काकस्य नयनेऽपतत् ।	
यैदेही विस्मता तत्र काकस्य नयने हते	५६
निपत्य शिरसा काको जगामाशु यधेप्सितम् ।	
लक्ष्मणानुचरो रामश्चकारानन्तरक्रियाः	५७

इत्यार्षे श्री० वा० आदिराव्येऽयोध्याकाण्डे पण्णवतितमः सर्गः ॥९६॥ [३५८२]

अपने एक अंगका त्याग कर ले, ताकि यह अस्त्र निष्फल न हो जावे। अच्छा, कह दे कि इस तिनत्रेस तेरा कौनसा अंग टूट जाए। अरे पंछी, मैं तेरा इतनाही हित कर सकता हूँ, देख, एक किसी अवयवके भग्न हो जानेपर जीवित रहना मरनेकी अपेक्षा तो भला है ही।' (५०-५३)

रामचन्द्रजीके इतना कहनेपर मोच विचारके पश्चात् उस कौण्ठे एक आँखका छोड़ना ठान लिया। उसने रामचन्द्रजीसे कहा 'मैं एक आँख छोड़नेको तैयार हूँ, हे नरपाल ! तेरी कृपासे मैं एकाक्ष होनेपरभी जाता रहूँगा।' रामचन्द्रजीकी आज्ञा होतेही वह अन्ध उस कौण्ठकी आँखपर जा गिरा। इस तरह कौआ एक आँखमे रहित हुआ, सो देव सीता अचम्भेमें आ गयी। पश्चान् मिर नवाकर कौण्ठे रामचन्द्रजीका अभिवादन किया और वह ग्रीष्मही तिथर उसकी इच्छा थी उधर चला गया। इधर भाई लक्ष्मणके साथ रामचन्द्रजीने अपनी आगेकी कार्यवाही जारी रखना शुरू किया। (५४-५७)

जहाँ छिद्राज्ञदौ मर्ग समाप्त हुआ ।



सप्तनवतितमः सर्गः ।

तां तदा दर्शयित्वा तु मैथिलीं गिरिनिम्नगाम् ।  
 निपसाद गिरिप्रस्थे सीतां मांसेन छन्दयन् १  
 इदं मेध्यमिदं स्वादु निष्ठतमिदमग्निना ।  
 एवमास्ते स धर्मात्मा सीतया सह राघवः २  
 तथा तत्रासतस्तस्य भरतस्योपयायिनः ।  
 सैन्यरेणुश्च शब्दश्च प्रादुरास्तां नभस्पृशौ ३  
 एतस्मिन्नन्तरे प्रस्ताः शब्देन महता ततः ।  
 अर्दिता यूथपा मत्ताः स्वयूथाद्बुद्धिर्दिशः ४  
 स तं सैन्यसमुद्भूतं शब्दं शुश्राव राघवः ।  
 तांश्च विप्रद्रुतान्सर्वान्यूथपानन्ववैक्षत ५  
 तांश्च विप्रद्रुतान्द्रष्टुं तं च श्रुत्वा महास्वनम् ।  
 उवाच रामः सौमित्रि लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् ६  
 हन्त लक्ष्मण पश्येह सुमित्रासुप्रजास्तथा ।  
 भीमस्तानितगम्भीर तुमुलः ध्रुयते स्यनः ७  
 गजयूथानिवारण्ये महिषा वा महावने ।  
 वित्रासिता नृगाः सिंहैः सहसा प्रद्रुता दिशः ८  
 राजा वा राजपुत्रो वा मृगयामटते वने ।

सीताको पर्वत तथा नदी दिखा राम एक चट्टानपर बैठ गये और सीताको मान दिखाने कहने लगे कि यह बड़ा शुद्ध है, यह अग्निमें पकाया गया है । यह कहते राम वहाँ बैठे ही थे कि उसी समय आते हुए भरतकी सेनाकी धूल दिखाई दी और बड़ा शब्द हुआ । उस शब्दमें डरे बन्धु जीव दूधर उधर भागते देख पड़े । रामने उस सेना द्वारा उत्थित शब्दको सुना तथा बन्धु जीवोंको चारों ओर भागते देखा । जीवोंको भागते देख तथा उस शब्दको सुन राम लक्ष्मणसे बोले, 'हे लक्ष्मण ! यह बाइलोंकी गर्जनके तुल्य अति भयङ्कर शब्द कहाँसे आ रहा है ? क्या मित्रोंके भयसे बन्धु जीव तो दौड़ते हुए नहीं आते हैं ? या कोई राजा वा राजपुत्र वनमें शिकार खेलता

मोक्ष्यामि शत्रुसैन्येषु कक्षेष्विव हुताशनम् २७  
 अथैव चित्रकूटस्य काननं निशितैः शरैः ।  
 छिन्दच्छत्रुशरीराणि करिष्ये शोणितोक्षितम् २८  
 शरैर्निर्भिन्नहृदयान्कुञ्जरांस्तुरगांस्तथा ।  
 श्वापदाः परिकर्पन्तु नरांश्च निहतान्मया २९  
 शराणां धनुषश्चाहमनृणोऽस्मिन्महावने ।  
 ससैन्यं भरतं हत्वा भविष्यामि न संशयः ३०

इत्यर्थे श्री० वा० आदिनाम्येऽयोध्याकाण्डे पण्णवतितमः सर्गः ॥९॥ [३६१२]

अष्टमवतितमः सर्गः ।

सुसंरब्धं तु भरतं लक्ष्मणं क्रोधमूर्च्छितम्  
 रामस्तु परिसान्ख्याथ वचनं चेदमब्रवीत् १  
 किमत्र धनुषा कार्यमसिना वा सचर्मणा ।  
 महाबले महोत्साहे भरते स्वयमागते २  
 पितुः सत्यं प्रतिश्रुत्य हत्वा भरतमाहवे ।  
 किं करिष्यामि राज्येन सापवादेन लक्ष्मण ३  
 यद् द्रव्यं बान्धवानां वा मित्राणां वा क्षये भवेत् ।  
 नाहं तत्प्रतिगृहीयां भक्ष्यान्विपकृतानिव ४

हुण् वृक्षके समान देखें । आज महापापसे यह संसार छूटे । आज यह बहुत दिनोंका अपमान शत्रुकी सेनापर छोड़ता हूं, आजही चित्रकूटके वनको मैं बाणोंसे शत्रुओंके शरीर काट काट रुधिरसे सींचेंगे । हमारे मारे हुए मनुष्योंको भी कुत्ते घसीटेंगे, इस महावनमें शरों व धनुषसे मैं सैन्य तमेत भरतको मारकर उक्लण हो जाऊंगा ।' (२१-३०)

यहाँ सत्ताबर्षों सर्ग समाप्त हुआ ।

भरतसे युद्धार्थी क्रोधमूर्च्छित लक्ष्मणको समझाते हुए राम यह वचन बोले कि 'महाबली स्वयं भरतके आनेपर धनुष तलवार ढालका क्या काम है ? हे लक्ष्मण ! पितासे वनमें रहनेकी प्रतिज्ञा कर अब भरतको युद्धमें मार सापवाद राज्य ले क्या करेंगे ? जो द्रव्य बन्धुओं तथा मित्रोंके क्षय होनेसे

धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण ।	१
इच्छामि भवतामर्थं एतत्प्रतिशृणोमि ते	५
भ्रातृणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्ष्मण ।	
राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुधमालभे	६
नेयं मम मही सौम्य दुर्लभा सागरान्वरा	
नहींच्छेयमधर्मेण शक्यत्वमपि लक्ष्मण	७
यद्विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं चापि मानद ।	
भवेन्मम सुखं किञ्चिद्भस्म तत्कुर्वतां शिखी	८
मन्येऽहमागतोऽयोध्यां भरतो आतृवत्सलः	
मम प्राणैः प्रियतरः कुलधर्ममनुस्मरन्	९
श्रुत्वा प्रवाजितं मां हि जटाघटकलधारिणम् ।	
जानक्या सहितं वीर न्वया च पुरुषोत्तम	१०
क्षेहेनाक्रान्तहृदयः शोकेनाकुलितेन्द्रियः ।	
द्रष्टुमभ्यागतो ह्यपि भरतो नान्यथाऽऽगतः	११
अभ्यां च केकर्यां रुष्य भरतश्चाप्रियं वदन् ।	
प्रासाद्य पितरं श्रीमान्राज्यं मे दातुमागतः	१२
प्राप्तकालं यथैषोऽस्मान्भरतो द्रष्टुमर्हति ।	

मिले, मैं उसे ग्रहण नहीं कर सकता । हे लक्ष्मण ! धर्म, अर्थ, काम और पृथिवी इन सबकी तुम्हीं लोगोंके अर्थ मैं कामना करता हूँ । मैं तत्पही कहता हूँ कि सब भाइयोंके संग्रह तथा उनके सुखके हो लिये राज्यकी इच्छा किया करता हूँ । हे सौम्य ! सागरांशरा यह मही मुझको दुर्लभ नहीं है, पर अधर्मसे मे इन्द्रपदभी नहीं चाहता । जो सुख मुझको भरत, तुम्हारे तथा शत्रुघ्नेके विना प्राप्त हो, उसे अग्नि नष्टकर डालें, मैं जानता हूँ कि आतृभक्त भरत जब अयोध्यामें आये होंगे और यह सुन कि जटावीर-धारी मैं, जानकी और तुम समेत वनको चला गया, तो शोकसे व्याकुलेन्द्रिय हो वे मुझे देखनेको आये हैं और किसी अभिप्रायसे नहीं । (१-११)

‘अपनी मातामे क्रोधकर तथा उसे अप्रिय वचन कह मुझको राज्य

अस्मासु मनसाप्येष नाहितं किञ्चिदाचरेत्	१३
विप्रियं कृतपूर्वं ते भरतेन कदा नु किम् ।	
ईदृशं वा भयं तेऽद्य भरतं यद्विशङ्कसे	१४
नहि ते निष्ठुरं वाच्यो भरतो नाप्रियं वचः ।	
अहं ह्यप्रियमुक्तः स्यां भरतस्याप्रिये कृते	१५
कथं नु पुत्राः पितरं हन्युः कस्यांचिदापदि ।	
भ्राता वा भ्रातरं हन्यात्सामित्रे प्राणमात्मनः	१६
यदि राज्यस्य हेतोस्त्वमिमां घातं प्रभापसे ।	
वक्ष्यामि भरतं दृष्ट्वा राज्यमस्मै प्रदीयताम्	१७
उच्यमानो हि भरतो मया लक्ष्मण तद्वचः ।	
राज्यमस्मै प्रयच्छेति वाढमित्येव मंस्यते	१८
तथोक्तो धर्मशीलेन भ्रात्रा तस्य हिते रतः ।	
लक्ष्मणः प्रविवेशेव स्थानि गात्राणि लज्जया	१९
तद्वाक्यं लक्ष्मणः श्रुत्वा व्रीडितः प्रत्युवाच ह ।	
त्वां मन्ये द्रष्टुमायातः पिता दशरथः स्वयम्	२०
व्रीडितं लक्ष्मणं दृष्ट्वा राघवः प्रत्युवाच ह ।	

देनेके लिये आये है । हम लोगोके देखनेको भरत आये हैं, सो वे हमारे साथ मनसे भी अप्रिय न करेंगे । क्या कभी भरतने तुम्हारे साथ कोई विप्रिय किया है जिससे तुमको ऐसा भय है ? अब भरतको कुछ कठोर बात वा अप्रिय वचन न कहना । किसी आपदाके समय भी पुत्र प्रिय पिताको तथा भाई भाईको न मारेगा । यदि राज्यके कारण तुम, भरत को ऐसा कहते हो तो भरतसे मिले तो कह दूंगा कि राज्य लक्ष्मणको देदो । हे लक्ष्मण ! मेरे कहतेही कि राज्य इनको देदो तो वे तुरन्तही मेरा वचन मान लेंगे । 'जब धर्मज्ञ श्रीरामने ऐसे वचन कहे तो लक्ष्मण लज्जासे त्रिकुट अरुनेही अंगोंमें लीनसे हो गये । रामके ऐसे वचन सुन लक्ष्मण लज्जित हो बोले कि 'आपको देखनेके लिये पिताजी स्वयं आये हैं ।' (१२-२०)

एष मन्ये महाबाहुर्हिहास्मान्द्रष्टुमागतः	२१
अथवा नौ ध्रुवं मन्ये मन्यमानः सुखोचितौ ।	
वनवासमनुध्याय गृहाय प्रतिनेष्यति	२२
इमां चाप्येष वैदेहीमत्यन्तसुखसेविनीम् ।	
पिता मे राघवः श्रीमान्वनादादाय यास्यति	२३
एतौ तौ संप्रकाशेते गोत्रयन्तौ मनोरमौ ।	
वायुवेगसमौ वीरौ जयनौ तुरगोत्तमौ	२४
स एष सुमहाकायः कम्पते बाहिनीमुखे ।	
नागः शत्रुञ्जयो नाम वृद्धस्तातस्य धामतः	२५
न तु पश्यामि तच्छत्रं पाण्डुरं लोकाविश्रुतम् ।	
पितुर्दिव्यं महाभाग संशयो भवतीह मे	२६
वृक्षाग्रादधरोह त्वं कुरु लक्ष्मण नद्वयः ।	
इतीव रामो धर्मात्मा सौमित्रिं तमुवाच ह	२७
अवतीर्य तु सालाग्रात्तस्मात्स समितिजयः ।	
लक्ष्मणः प्राञ्जलिभूत्वा तस्थौ रामस्य पार्श्वे	८
भरतेनाथ संदिष्टा संमर्दां न भवेदिति ।	
समन्तात्तस्य शैलस्य सेना वासमकल्पयत्	२९
अध्यर्धमिक्ष्वाकुचमूर्योजनं पर्वतस्य ह ।	

लक्ष्मणको लज्जित देख राम बोले कि 'यह मैंभी मानता हूँ कि ये हमको देखनेही को आयें हैं । अथवा हम दोनोंको सुखोचित समझ घरको लौटा ले जायेंगे । या अत्यन्त सुखसेविनी सीताको पिता वनसे घरको लौटा ले जायेंगे । दोनों भाई भरत शत्रुघ्न अति चञ्चल अधोपर सवार चले आते हैं । यह पिताका शत्रुञ्जय हाथी भी सेनाके आगे आगे चला आता है । पिताजीका लग्न नहीं दीख पड़ता, इससे बड़ी शङ्का होती है ।' यह मुन राम सौमित्रिसे बोले ' हे लक्ष्मण ! अब पेड़परसे नीचे उतर आओ ।' लक्ष्मण उस पेड़ परसे उतर हाथ जोड़ श्रीरामके पास आ खड़े हुए । भरतने यह विचार कि इस पर्वतका संमर्दन न होवे सेनाको ठहरने

पाश्वे न्यविशदावृत्य गजवाजिनराकुला ३०

सा चित्रकूटे भरतेन सेना धर्मे पुरस्कृत्य विधूय दर्पम् ।

प्रसादनार्थं रघुनन्दनस्य विरोचते नीतिमता प्रणीता ३१

इत्यार्षे श्रीम० बा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे अष्टमवतितमः सर्गः ॥१८॥ [३६६१]

नवनवतितमः सर्गः ।

निवेद्य सेनां तु विभुः पद्भ्यां पादवतां वरः ।

अभिगन्तुं स काकुत्स्थामियेष गुरुवर्तकम् १

निविष्टमात्रे सैन्ये तु यथोद्देशं विनीतवत् ।

भरतो भ्रातरं वाक्यं शत्रुप्रमिदमप्रणीत् २

क्षिप्रं वनमिदं सौम्य नरसंघैः समन्ततः ।

लुब्धैश्च सहितैरोभिस्त्वमन्वेषितुमर्हसि ३

गुहो ज्ञातिसहस्रेण शरचापासिपाणिना ।

समन्वेषतु काकुत्स्थावसिन्परिवृतः स्वयम् । ४

अमात्यैः सह पौरैश्च गुरुभिश्च द्विजातिभिः ।

सह सर्वं चरिष्यामि पद्भ्यां परिवृतः स्वयम् ५

यावन्न रामं द्रक्ष्यामि लक्ष्मणं वा महाबलम् ।

की आज्ञा दी। हस्ती, अश्व, मनुष्यासे युक्त वह सेना छः कोशतक पहाड़के किनारे किनारे ठहर गई। और अपने धर्मपरही ध्यान देकर नीतिमान् भरतने रामचंद्रजीकी प्रसन्नताके लिये माथ ली हुई वह सेना चित्रकूट पर्वतपर सुहाने लगी। (२१-३१)

यहाँ अष्टाध्यायी सर्ग समाप्त हुआ ।

संचारशील प्राणियोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ प्रभु भरतजीने सेनाको उधरही रखकर गुरुशुभ्रपामें तत्पर तथा काकुत्स्थकुलभूषण श्रीरामचंद्रजीके निरुद्ध जानेको चाहा। इच्छाके अनुकूल सेनाका प्रबंध होतेही वे भाई शत्रुप्रसे विनयपूर्वक कहने लगे ‘प्यारे, लोगोंके झुंड और गुहके इन निपादोंको साथमें लेकर तुम बहुत जल्दही इस वनको ढूँढना शुरु करो। इधर हाथमें धनुष्य, बाण एवं तलवार लिये हजारों अपनेही लोगोंसे घिरे रहकर गुह

वेदैर्ही वा महाभागां न मे शान्तिर्भविष्यति	६
यावन्न चन्द्रसंकाशं तद् द्रक्ष्यामि शुभाननम् ।	
भ्रातुः पद्मविशालाक्षं न मे शान्तिर्भविष्यति	७
सिद्धार्थः खलु सौमित्रिर्यश्चन्द्रविमलोपमम् ।	
मुखं पश्यति रामस्य राजीवाक्षं महाद्युति	८
यावन्न चरणौ भ्रातुः पार्थिवश्चञ्चनान्वितौ ।	
शिरसा प्रग्रहीष्यामि न मे शान्तिर्भविष्यति	९
यावन्न राज्ये राज्याहः पितृपैतामहे स्थितः ।	
अभिषिक्तो जलक्लिन्नो न मे शान्तिर्भविष्यति	१०
कृतकृत्या महाभागा वैदेही जनकात्मजा ।	
भर्तारं सागरान्तायाः पृथिव्या यानुगच्छति	११
सुशुभश्चित्रकूटोऽसौ गिरिराजसमो गिरिः ।	

सुदृढ़ इस वनमें ककुत्स्थपरिवारमें उत्पन्न राम तथा लक्ष्मणको खोजने लगें। मैं स्वयं अमात्य, नागरिक एवं द्विजगण जिनके पीछे चलते हैं ऐसे गुरु जनको साथ लेकर इस मारेही जंगलमें पैदल घूमना रहूंगा। जबतक रामचंद्रजी तथा महायलाध्य भाई लक्ष्मण एवं अति भाग्यशालिनी विदेह-राजकन्या सीताजीको मैं न देख लूं, तबतक मुझको शान्ति तथा सुख-समाधान नहीं मिलेगा। चन्द्रकी नाई आह्लाददायक और कमलपुष्पकी पेंसुडियोंकी तरह विशाल ओंखोवाले भाई रामचंद्रजीके शुभ मुखको जब-तक न देखूँ, मुझे शान्ति नहीं होगी। (१-७)

‘सचमुच सुमित्राके पुत्र भाई लक्ष्मणकी कामना यफल हुई क्योंकि चन्द्रमाके तुल्य निर्मल और कमल जैसे विशाल नेत्रवाले राजचंद्रजीके तेजस्वी मुखमंडलको वे निहार रहे हैं। भाईजीके राजचिह्नोंसे अलंकृत चरणोंपर अपना शीश रखनेतक मेरे दिलको समाधान न होगा, इतनाही नहीं किन्तु राज्यका उपभोग लेनेमें सर्वधन योग्य रामचंद्रजी, पितृपरंपरागत राजगद्दीपर अभिषेकके कारण पानासे तर हो जबतक न बैठेंगे मुझे मानसिक शान्तता मिलनेवाली नहीं। महासागरतक फैली हुई पृथ्वीके नाथके पीछे

यस्मिन्वसति काकुत्स्थः कुबेर इव नन्दने	१२
कृतकार्यमिदं दुर्गवनं व्यालनिपेषितम् ।	
यद्ब्यास्ते महाराजो रामः शस्त्रभृतां वरः	१३
एवमुक्त्वा महाबाहुर्भरतः पुरुषर्षभः ।	
पद्भ्यामेव महातेजाः प्रविवेश महद्गुणम्	१४
स तानि द्रुमजालानि जातानि गिरिसानुषु ।	
पुष्पिताग्राणि मध्येन जगाम वदतां वरः	१५
स गिरेश्चित्रकूटस्य सालमारुह्य सत्वरम् ।	
रामाश्रमगतस्याग्नेर्ददर्श ध्वजमुच्छ्रितम्	१६
तं दृष्ट्वा भरतः श्रीमान्मुमोद सहयांधवः ।	
अत्र राम इति ज्ञात्वा गतः पारमिवाम्भसः	१७
स चित्रकूटे तु गिरौ निशम्य रामाश्रमं पुण्यजनोपपन्नम् ।	

पीछे जानेवाली महाभाग्यवती जनककन्या बँदेही सीता सचमुच कृतार्थ है। नन्दनवनमें विहार करनेहारे कुबेरके समान जिसपर ऋकुत्स्थ-वंशज राम-चंद्रजी निवास कर रहे हैं, वह चित्रकूट पर्यंतराज हिमालयके समकक्ष और बड़ाही पवित्र है। शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ रामचंद्रजी महाराज जिधर निवास करते हैं, वह सर्पजातिसे भरा हुआ यह घना जंगलभी धन्य धन्य है।' (८-१३)

ऐसा शत्रुघ्नसे कहकर वे बड़े पराक्रमी तथा अति तेजस्वी पुरुषोंमें श्रेष्ठ भरतजी पैदलही उस घने जंगलमें घुस गये। वस्त्राश्रमोंमें श्रेष्ठ भरतजी पहाड़की चोटीपर पैदा हुए और खिले हुए अगले हिस्से जिनपर हिल रहे थे, ऐसे पेड़ोंके झुरमुटमेंसे आगे बढ़ने लगे। पश्चात् चित्रकूट पहाड़परके साल पेड़पर शीघ्र चढ़तेही रामचंद्रजीके आश्रममें मौजूद अग्निका ऊँचा धुआँ भरतको दिखाई दिया। उस धुएँको देखतेही उधर रामचंद्रजीका निवास है ऐसा समझकर, नदीजलको तैरकर परले किनारे पहुँचे मानवके समान, बांधवोंके साथ रहते हुए वैभववाली भरतजीको बड़ा हर्ष हुआ। चित्रकूट पहाड़पर पुण्यवान् लोगोंसे परिपूर्ण रामचंद्रजीका आश्रम है, ऐसा सुनकर



गुह्येन सार्धं त्वरितो जगाम पुनर्निवेद्यैव चमूं महात्मा १८  
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेऽध्याकाण्डे नवमोऽध्यायः ॥ १९ ॥ [ १६६१ ]  
शततमः सर्गः ।

निविष्टायां तु सेनायामुत्सुको भरतस्ततः ।  
जगाम भ्रातरं द्रष्टुं शत्रुघ्नमनुदर्शयन् १  
ऋषिं वसिष्ठं संदिश्य मातृमे शीघ्रमानय ।  
इति त्वरितमग्रे स जगाम गुरुवत्सलः २  
सुमन्त्रस्यपि शत्रुघ्नमदूरादन्वपद्यत ।  
रामदर्शनजस्तपो भरतस्येव तस्य च ३  
गच्छन्नेवाथ भरतस्तापसालयसंस्थिताम् ।  
घ्रातुः पर्णकुटीं श्रीमानुदजं च ददर्श ह ४  
शालायास्तवग्रतस्तस्या ददर्श भरतस्तदा ।  
काष्ठानि चावभग्नानि पुष्पाण्यपचितानि च ५  
स लक्ष्मणस्य रामस्य ददर्शश्रममेयुषः ।  
कृतं वृक्षेष्वभिज्ञानं कुशचीरैः कचित्कचित् ६  
ददर्श भवनं तस्मिन्महतः संचयान्कृतान् ।  
मृगाणां मद्भिषाणां च करीषैः शीतकारणात् ७

वे महात्मा भरतजी रोजनेके लिए भेजी हुई सेनाको उधरही रखकर  
गुह्ये साथ जल्दही उधर चले गये । (१४-१८)

यहाँ निम्नाश्रयों संग समाप्त हुआ ।

जब सब सेना ठहर गई तो भरत भाई शत्रुघ्नको दिखाते हुए चले ।  
ऋषि वसिष्ठको माताओंके लानेकी आज्ञा दे गुरुवत्सल भरत बड़ी जल्दीसे  
आगे बढ़े । सुमन्त्रभी शत्रुघ्नके पीछे ही चले जाते थे, क्योंकि उनको भी  
रामदर्शनोंकी बड़ी अभिलाषा थी । एवं जाते हुए भरतने तपस्वियोंके  
स्थानोंके बीचमें रामकी पर्णशाला देखी । पर्णकुटीके आगे तौड़ी हुई समिधा  
तथा फूल इकट्ठे देखे । फिर रामको लक्ष्मण सनेत कहीं पासहीसे जाया  
हुआ शालामें घुसते हुए देखा । पर्णकुटीके आगे हरिणों भैंसोंके मृगों गौरवरा

गच्छन्नेव महाबाहुर्धुतिमान्भरतस्तदा ।	
शत्रुघ्नं चाब्रवीद्धृष्टानमात्यांश्च सर्वशः	८
मन्य प्राप्ताः स्म तं देशं भरद्वाजो यमवर्चात् ।	
नातिदूरे हि मन्येऽहं नदीं मन्दाकिनीमितः ।	९
उच्चैर्वद्भानि चीराणि लक्ष्मणेन भवेदयम् ।	
अभिज्ञानकृतः पन्था विकाले गन्तुमिच्छता	१०
इतश्चोदात्तदन्तानां कुञ्जराणां तरसिनाम् ।	
शैलपार्श्वे परिकान्तमन्योन्यमभिगर्जताम्	११
यमेवाधातुमिच्छन्ति तापसाः सततं यने ।	
तस्यासौ दृश्यते धूमः संकुलः कृष्णचर्मनः	१२
अग्राहं पुरुषव्याघ्रं गुरुस्तत्कारकारिणम् ।	
आर्यं द्रक्ष्यामि संहृष्टं महर्षिमिव राघवम्	१३
अथ गत्वा सुहृते तु चित्रकूटं स राघवः ।	
मन्दाकिनीमनु प्राप्तस्तं जनं चेदमवर्चात्	१४
जगत्यां पुरुषव्याघ्र आस्ते वीरासने रतः ।	
जनेन्द्रौ निर्जनं प्राप्य धिञ्जे जन्म सजीवितम्	१५
मत्कृते व्यसनं प्राप्तो लोकनाथो महाधुतिः ।	
सर्वान्कामान्परित्यज्य यने वसति राघवः	१६

देर लग रहा था । चलतेही चलते श्रीमान् भरतजी हर्षित हो शत्रुघ्न व मन्त्रियोंसे बोले, 'मैं समझता हूँ कि हम लोग भरद्वाजके बताये स्थानपर आगये, क्योंकि मन्दाकिनी नदी अब पासही है । ये जंग पेड़को शाखाओंमें कपड़े बंधे हैं लक्ष्मणेने विकालमें जानेआनेके कारण बांधे हैं ।' (१-१०).

'यह बड़े बड़े दन्तवाले शीघ्रगामी हाथियोंके चलनेका मार्ग है । यह उसी अग्निका धुआं है जिने तपस्विनग्न सर्वदा वनमें रखना चाहते हैं । आज यहां पुरुषसिंह, पिताकी आज्ञाका अनुवर्तन करनेवाले श्रीरामको देखेंगे ।' चित्रकूट पहुंचनेके एक सुहृत्के बाद मन्दाकिनीके पाम पहुंच सब लोगोंसे भरत बोले कि । 'पुरुषसिंह श्रीराम निर्जन वनमें पड़े हैं

इति लोकसमाकृष्टः पादेष्वद्य प्रसादयन् ।	
रामं तस्य पतिष्यामि सीताया लक्ष्मणस्य च	१७
एवं स विलपंस्तस्मिन्वने दशरथात्मजः ।	
ददर्श महतीं पुण्यां पर्णशालां मनोरमाम्	१८
सालतालाभ्यकर्णानां पर्णैर्वहुभिरावृताम् ।	
विशालां मृदुविस्तीर्णां कुशैर्वेदिमिवाध्वरे	१९
शक्रायुधनिकाशैश्च कार्मुकैर्भारसाधनैः ।	
रत्नमण्डपैर्महासारैः शोभितां शत्रुवाधकैः ।	२०
अर्करश्मिप्रतीकाशैर्घोरैस्तूणगतैः शरैः ।	
शोभितां दीप्तवदनैः सपैर्भोगवतीमिव	२१
महारजतघाम्नाभ्यामसिभ्यां च विराजिताम् ।	
रत्नमविन्दुविचित्राभ्यां चर्मभ्यां चापि शोभिताम्	२२
गोधाङ्गलित्रैरासकैश्चित्रकाञ्चनभूषितैः ।	
अरिसंघैरनाधृष्यां मृगैः सिंहगुहामिव	२३
प्रागुदकप्रवर्णां चेदिं विशालां दीप्तपावकाम् ।	
ददर्श भरतस्तत्र पुण्यां रामनिवेशने	२४

इसमे हमारे जानिको अधिकार है । लोकनाथ राम मेरे कारण बड़े दुःखको प्राप्त हुए वनमें रहते हैं । वह विचार करते करते राम सीता तथा लक्ष्मणके चरणोंपर गिर पड़ंगा । 'तुम तरहसे वनमें रोदन करने हुए भरतने महापुण्यदायक पर्णशाला देनी । वह सालताल तथा अश्वकर्ण आदि वृक्षोंके पत्तोंसे बनी हुई थी और अति विशाल, कामल तथा विस्तीर्ण थी । चत्रकी दीप्तिके समान सूरजके पंख उगे बाणोंसे वह कुटी शोभित थी । दीप्तिमान, तरङ्गल में प्राप्त, प्रकाशित मुखवाले बाणोंसे वह कुटी वैसे शोभाप्रमान थी जैसे भोगवती । सुनहरा कब्जा तथा मिथानोंवाली तलवारों तथा छालोंसे वह कुटी शोभित थी । चित्रविचित्र सुवर्ण-भूषित गोदागुलित्वागुलु होनेसे उन कुटीमें शत्रु प्रवेष्ट नहीं कर सकते थे । (११-२३)

निरीक्ष्य स मुहूर्तं तु ददर्श भरतो गुरुम् ।	
उटजे राममासीनिं जटामण्डलधारिणम्	२५
कृष्णाजिनधरं तं तु चीरवल्कलवाससम् ।	
ददर्श राममासीनमभितः पावकोपमम्	२६
सिंहस्कन्धं महाबाहुं पुण्डरीकनिभेक्षणम् ।	
पृथिव्याः सागरान्ताया भर्तारं धर्मचारिणम्	२७
उपविष्टं महाबाहुं ब्रह्माणमिव शाश्वतम् ।	
स्थण्डिले दर्भसंस्तीर्णे सीतया लक्ष्मणेन च	२८
तं दृष्ट्वा भरतः श्रीमान्दुःखमोहपरिप्लुतः ।	
अभ्यधावत धर्मात्मा भरतः केकयीसुतः	२९
दृष्ट्वैव विललापार्तो वाप्पसंदिग्धया गिरा ।	
अशक्नुदन्वारयितुं धैर्याद्वचनमब्रुवन्	३०
यः संसदि प्रकृतिभिर्भवेद्युक्त उपासितुम् ।	
वन्धैर्मृगैरुपासीनः सोऽयमास्ते ममाग्रजः	३१
वासोभिर्वहुसाहस्रैर्यो महात्मा पुरोचितः ।	
मृगाजिने सोऽयमिह प्रवस्ते धर्ममाचरन्	३२

भरतने रामकी उस कुटीमें ईशान कोणकी ओर झुकी हुई विशाल व प्रज्वलिताग्नियुक्त बेदी देखी । पर्णशालाको मुहूर्तभरतक देखनेके पीछे जटा धारण किये रामको पर्णकुटीमें बैठे देखा । मृगचर्म धारण किये चीर, वल्कल पहिने अग्निके समान राम तेजवान् हो रहे थे । सिंह-स्कन्ध, आजानुबाहु कमलनयन, सागरपर्यन्त पृथिवीके जो स्वामी थे, निरन्तर रहनेवाले ब्रह्माजीके तुल्य एक चौतरापर सीता व लक्ष्मणके साथ राम बैठे थे । उन रामको देख मोहसे व्याकुल धर्मात्मा भरत सामने दौड़े । (२४-२९)

और अति दुःखित हो विलाप करने लगे, कुछ देरमें धैर्य धार गद्गद-वाणीसे बोले, 'जो राम सदा प्रजा, मन्त्रियों आदिसे सेवा करने योग्य है वही आज मृगादिकोंसे सेवित हूँ । जो महात्मा अनेक प्रकारके वस्त्रोंके

अधारयद्यो विविधाश्चित्राः सुमनसः सदा ।	
सोऽयं जटाभारमिमं सहते राघवः कथम्	३३
यस्य यज्ञैर्यथादिष्टैर्युक्तो धर्मस्य संचयः ।	
शरीरक्लेशसंभूतं स धर्मं परिमार्गते	३४
चन्दनेन महाह्रण यस्याङ्गमुपसेवितम् ।	
मलेन तस्याङ्गमिदं कथमायस्य सेव्यते	३५
मन्निमित्तमिदं दुःखं प्राप्नो रामः मुखोचितः ।	
धिग्जीवितं नृशंसस्य मम लोकविगर्हितम्	३६
इत्येवं विलपन्दीनः प्रस्विन्नमुखपङ्कजः ।	
पादावप्राप्य रामस्य पपात भरतो रुदन्	३७
दुःखाभितप्तो भरतो राजपुत्रो महाबलः ।	
उक्त्वायेति सकृदीनं पुनर्नोवाच किञ्चन	३८
याप्यैः पिहितकण्ठश्च प्रेक्ष्य रामं यशस्विनम् ।	
आयेत्येवाभिसंक्रुश्य व्याहर्तुं नाशकत्ततः	३९
शत्रुघ्नश्चापि रामस्य ववन्दे चरणौ रुदन् ।	
तावुभौ च समालिङ्ग्य रामोऽप्यथृण्यवर्तयत्	४०

धारण करने योग्य है, वही राम आज भृगुचर्म धारे हुए है। जो राम नाना पुष्पोंकी मालाओंको धारण करते थे, वही आज जटाका भार सह रहे हैं। जिन रामके यज्ञोंके करनेसे धर्मराशि इकट्ठी हो गई थी, वेही राम शरीरक्लेशसे उत्पन्न धर्मोंको ढूंढते हैं। जिस रामके शरीरपर चन्दन लगाये जाते थे, उसने अब धूल लगी है। जिस मेरे कारणसे सदा सुखोचित रामको दुःख मिला, उस निर्लज्ज मुक्तको धिक्कार है।' (३०-३६)

एवं विलाप करते भरतने स्विन्नमुख हो रामके चरण छूनेकी हाथ बढ़ाया, पर नृच्छिन्त हो गिर पड़े। नरानली राजकुमार भरतने दुःखसे दीन हो "हे आर्य!" यह तो कहा फिर कुछ न बोल सकें। शत्रुघ्नेने भी रोते हुए रामके चरणोंमें प्रणाम किया। दोनोंको आलिंगन कर श्रीरामने भी अभ्युपनिषत् किया। तथा इसी तरह श्रीराम व उशनस सुमन्त्र और गृहसे ऐले

ततः सुमन्वेण गुहेन चैव समीयतू राजसुतावरण्ये ।

दिवाकरश्चैव निशाकरश्च यथाम्वरे शुक्रवृहस्पतिभ्याम् ४१  
तान्पार्थिवान्वारणयूथपार्हान्समागतांस्तत्र महत्यरण्ये ।

वनौकसस्तेऽभिसमीक्ष्य सर्वे न्वश्रूयन्मुञ्चन्प्रविहाय हर्षम् ४२

इत्यर्थे श्रीमद्रा० वा० आदिकाव्येऽव्योधाकाण्डे शततमः सर्गः ॥ १०० ॥ [ १७०३ ]

एकोत्तरशततमः सर्गः ।

जटिलं चीरवसनं प्राञ्जलिं पतितं भुवि ।

ददर्श रामो दुर्दर्शं युगान्ते भास्करं यथा १

कथंचिद्भिविज्ञाय विवर्णवदनं कृशम् ।

भ्रातरं भरतं रामः परिजग्राह पाणिना २

आघ्राय रामस्तं मूर्ध्नि परिप्वज्य च राघवम् ।

अङ्गे भरतमारोप्य पर्यपृच्छत सादरम् ३

क नु तेऽभूत्पिता तात यदरण्यं त्वमागतः ।

न हि त्वं जीवतस्तस्य वनमागन्तुमर्हसि ४

चिरस्य यत पश्यामि दूराद्भरतमागतम् ।

दुष्प्रतीकमरण्येऽस्मिन्कि तात वनमागतः ५

कञ्चिन्नुद्धरते तात राजा यत्त्यमिहागतः ।

कञ्चिन्न दीनः सहसा राजा लोकान्तरं गतः ६

मिले जैसे कि सूर्य व चन्द्रमा गगनमें शुक्र व बृहस्पतिमें मिले । उस समय उन राजकुमारोंको वहाँ उस महावनमें एकत्रित हुए देखकर उस वनमें बसनेवाले लोग भी हर्षको त्यागकर अध्रुपात करने लगे । (१७-४१)

यहाँ १०० सर्ग समाप्त हुआ ।

जटाधारी चीरवसन पहरे प्राञ्जलि हो भूमिमें पड़े भरतको युगान्त सूर्यके तुल्य रामने देखा । शोकमें विवर्णवदन भरतको रामने कठिनतासे पहिचाना और भरतको हाथोंसे ग्रहण किया । मस्तक मूँध छातीसे लगा गोदमें बिठा आदरसे राम पूछने लगे— 'हे तात ! तुम्हारे पिता कहा गये जो तुम वनको आये ? हे तात ! वनमाल चले जानेके कारण बहुत दिनोंके पीछे तुम्हें देखा, इससे बड़ा हर्ष हुआ । इस वनमें तुम कैसे आये हो ? हे तात ! क्या राजा

कच्चित्सौम्य न ते राज्यं भ्रष्टं बालस्य शाश्वतम् ।	
कच्चिच्छूयसे तात पितुः सत्यपराक्रम	७
कच्चिद्दशरथो राजा कुशली सत्यसंगरः ।	
राजसूयाभ्यमेधानामाहर्ता धर्मनिश्चितः	८
स कच्चिद्ब्राह्मणो विद्वान्धर्मनित्यो महाद्युतिः ।	
इक्ष्वाकूणामुपाध्यायो यथावत्तात पूज्यते	९
तात कच्चिच्च कौसल्या सुमित्रः च प्रजावती ।	
सुखिनी कच्चिदार्या च देवी मन्दति कैकयी	१०
कच्चिद्विनयसंपन्नः कुलपुत्रो बहुश्रुतः ।	
अनसूयुरनुद्रष्टा सत्कृतस्ते पुरोहितः	११
कच्चिदग्निपु ते युक्तो विधिज्ञो मतिमानृजुः ।	
हुतं च द्वोप्यमाणं च काले घेदयते सदा	१२
कच्चिद्देवान्पितॄन्भृत्यान्गुरुन्पितृसमानपि ।	
वृद्धांश्च तात वैद्यांश्च ब्राह्मणांश्चाभिमन्यसे	१३
इष्यस्त्रयरसंपन्नमर्थशास्त्रविशारदम् ।	
सुधन्वानमुपाध्यायं कच्चिच्छर्वं नात मन्यसे	१४

जीवित है, जो उनको छोड़ यहाँ चले आवे? या राजा स्वर्गको सिंधार गये? तुम बालकोंके रह जानेसे वह अक्षय राज्य नष्ट तो नहीं हो गया? यदि पिता जीवित है तो उनकी सेवा भली प्रकार करने हो! राजा दशरथ कुशलपूर्वक तो हैं? राजा अधमेधादि यज्ञ करनेका विचार तो करते हैं? इक्ष्वाकुवंशके पुरोहित विद्वान् वेदज्ञ महातजस्वी वसिष्ठकी पूजा तो तुम करते हो? हे तात! माता कौसल्या व सुमित्रा तथा परमश्रेष्ठ कैकेयी आनन्दित तो हैं? (१-१०)

‘नियमसम्पन्न, सुकृतमें उत्पन्न वेदज्ञ मन्त्रमंनिपुण वसिष्ठके पुत्र पुरोहित का आदर तो करते? अग्निहोत्र आदि कर्मोंमें तुमने मतिमान् ऋत्विजोंको नियत किया है, वे मन्त्रपर अग्निहोत्र तो करते हैं? हे नात! देवता, पितर, मन्त्री, नेयर, महान् गुरु, वृद्धजन, वैद्य राज व ब्राह्मणोंकी तुम संमानना तो

कच्चिदात्मसमाः शूराः श्रुतवन्तो जितेन्द्रियाः ।	
कुलीनाश्चेद्वितज्ञाश्च कृतास्ते तात मन्त्रिणः	१५
मन्त्रो विजयमूलं हि राज्ञां भवति राघव ।	
सुसंवृतो मन्त्रिधुरैरमात्यैः शास्त्रकोविदैः	१६
कच्चिन्निद्रावशं नैपि कच्चित्कालेऽवबुध्यसे ।	
कच्चिच्चापररात्रेषु चिन्तयस्वर्थनैपुणम्	१७
कच्चिन्मन्त्रयसे नैकः कच्चिन्न बहुभिः सह ।	
कच्चित्ते मन्त्रितो मन्त्रो राष्ट्रं न परिधावति	१८
कच्चिदर्थं विनिश्चित्य लघुमूलं महोदयम् ।	
क्षिप्रमारभसे कर्म न दीर्घयसि राघव	१९
कच्चिन्नु तुकृतान्येव कृतरूपाणि वा पुनः ।	
विदुस्ते सर्वकार्याणि न कर्तव्यानि पार्थिवाः	२०
कच्चिन्न तर्कैर्युक्त्या वा ये चाप्यपरिकीर्तिताः ।	
त्वया वा तव वामात्यैर्बुध्यते तात मन्त्रितम्	२१
कच्चित्सहस्रैर्मूर्खाणामेकमिच्छसि पण्डितम् ।	
पण्डितो ह्यर्थकृच्छ्रेषु कुर्यान्निःश्रयसं नदत्	२२

करते रहते हो ? हे तात ! बाणविद्या तथा अन्य शस्त्रास्त्रोंमें अति निपुण, सुधन्वानाम उपाध्यायका सत्कार तो करते हो ? तुमने अपने तुल्य वेदज्ञ जितेन्द्रिय मन्त्री तो नियत किये हैं ? हे राघव राजाओंको मन्त्रही विजयका मूल होता है, इससे राजाको चाहिये कि श्रेष्ठ मन्त्रीसे सदा सलाह लिया करें। कभी संभ्यादि कालमें सोते तो नहीं हो. समयपर जागते तो हो पहरभर रात्रि रहे उठ कर प्रयोजन मित्रिका विचार तो करते हो ? मन्त्र एकही साथ बैठकर करते हो कि नहीं ? हे भरत ! अल्प व्ययसे बड़ा कार्य पूरे होनेका निश्चय कर जल्दी आरम्भ तो कर देते हो ? तुम्हारे कृत वा भावी कार्यको तुम्हारे अधीन राजा लोग जान तो नहीं लेते ? (११-२०)

‘हे तात ! तुम्हारे बिना कहे अन्य लोग तुम्हारे अभिप्रायको तो नहीं जान लेते, तुम दूसरों की मन्त्रणाको युक्तिसे जान तो लेते हो ? क्या तुम



सहस्राण्यपि मूर्खाणां यद्युपास्ते महीपतिः ।	
अथवाप्ययुतान्येव नास्ति तेषु सहायता	२३
एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूरो दक्षो विचक्षणः ।	
राजानं राजपुत्रं वा प्रापयेन्महतीं श्रियम्	२४
कच्चिन्मुख्या महत्स्वयं मध्यमेषु च मध्यमाः ।	
जघन्याश्च जघन्येषु भृत्यास्ते तात योजिताः	२५
अमात्यानुपधातीतान्पितृपैतामहाञ्जुचीन् ।	
श्रेष्ठाञ्छ्रेष्ठेषु कच्चित्त्वं नियोजयसि कर्मसु	२६
कच्चिन्नोप्रेण दण्डेन भृशमुद्वेजिताः प्रजाः ।	
राष्ट्रे तवावजानन्ति मन्त्रिणः कैकर्यासुत	२७
कच्चित्त्वां नावजानन्ति याजकाः पतितं यथा ।	
उग्रप्रतिग्रहीतारं कामधानमिव स्त्रियः	२८
उपायकुशलं धैर्यं भृत्यं संदूषणे रतम् ।	
शूरमैर्ध्वर्यकामं च यो न हन्ति स हन्यते	२९
कच्चिद्धृष्टश्च शूरश्च धृतिमान्मातृभाञ्जुचिः ।	
कुलीनश्चानुरक्तश्च दक्षः सेनापतिः कृतः	३०

महत्सों मूर्खोंसे एक पण्डितकी तो विशेष इच्छा करते रहते हो ? कठिन समस्याको पण्डितही मुलझा सकता है। राजा यदि सहस्रों मूर्खोंकोभी अपने पास रखे तो भी उससे कोई सहायता नहीं मिल सकती। शूर विचक्षण और दक्ष एरुही मन्त्री राजाको महान् श्री प्राप्त कराता हैं। हे तात ! क्या तुम बड़े कार्यके लिये महत् कर्मण्य संघर्ष नियत करते हो ? सुपरीक्षित पुराने व कपटहीन श्रेष्ठतर अमात्योंको श्रेष्ठ कामोंमें नियुक्त करते हो ? क्या अल्प अपराधमें अति कठोर दण्ड देकर प्रजाधोंको दुःखी तो नहीं करते ? तुमको पक्ष करानेवाले ऋषिगण पतिन तो नहीं समझने ? मन्दूषणमें रत धैर्य वा मन्त्रीको जो राजा नहीं मार डालता, वह आप मार डाला जाता है। क्या तुमने शूर धैर्यवान् कुलीन व स्वामीभक्त सेनापति नियत किया है वा नहीं ? (२१-३०)

बलवन्तश्च कच्चिच्चे मुख्या युद्धविशारदाः ।	
दृष्टापदाना विक्रान्तास्त्वया सत्कृत्य मानिताः	३१
कच्चिद्बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम् ।	
संप्राप्तकालं दातव्यं ददासि न विलम्बसे	३२
कालातिक्रमणे ह्यव भक्तवेतनयोर्भृताः ।	
भर्तुरप्यतिकुप्यन्ति सोऽनर्थः सुमहान्कृतः	३३
कच्चित्सर्वेऽनुरक्तास्त्वां कुलपुत्राः प्रधानतः ।	
कच्चित्प्राणांस्तवार्थेषु संत्यजन्ति समाहिताः	३४
कच्चिज्ज्ञानपदो विद्वान्दक्षिणः प्रतिभानवान् ।	
यथोक्तवादी दूतस्ते कृतो भरत पण्डितः	३५
कच्चिदष्टादशान्येषु स्वपक्षे दश पञ्च च ।	
त्रिभिस्त्रिभिरविज्ञातैर्वैत्सि तीर्थानि चारणैः	३६
कच्चिद्वचपास्तानहितान्प्रतियातांश्च सर्वदा ।	
दुर्वलाननवज्ञाय वर्तसे रिपुसूदन	३७

‘क्या बलवान् लोगोंको जो सब तरहके युद्धमें चतुर है, प्रिय वचनो! तथा वस्त्र भूषणादि दे तुमने प्रसन्न रक्खा है ? क्या सेना आदिके आहमियोंको प्रतिदिन भोजन व समयपर भासिक वेतन चुका देते हो ? नौकरोंको समयपर भोजन व वेतन न मिलनेसे वे अपने स्वामीपर असन्तोष प्रकट करते हैं । क्या तुम्हारे वंशवाले लोग तुमको प्रधान समझ तुममें प्रीति रखते हैं ? क्या राजनीति जाननेवाला, चतुर, यथार्थ सन्देश कहनेवाला, स्वदेशी दूत नियत किया है ? क्या अपने लिये अष्टादश नन्त्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपालक, अन्तःपुरका अधिकारी, जेलखानेका दारोगा, खजांची, राजाज्ञानुसार औरोंको आज्ञा देनेवाला, लेन देन जाननेवाला, धर्माध्यक्ष, व्यवहारोंको निर्णय करनेवाला, फौजको तनख्वाह बांटनेवाला, टेंकदार, नगराध्यक्ष, नगरकी रीतिपर रहनेवाला दुष्टोंको दण्ड देनेका अधिकारी दल, पर्वत, वन कोट इनका रक्षक, इन लोगोंको तुम रखते हो ? क्या शत्रुओंको देशसे निकाल पुनः बिना परीक्षा किये बमने तो नहीं दिया ?

कच्चिन्न लोकायतिकान्ब्राह्मणांस्तात सेवसे ।

अनर्थकुशला ह्येते बालाः पण्डितमानिनः ३८

धर्मशास्त्रेषु मुख्येषु विद्यमानेषु दुर्बुधाः

बुद्धिमान्शिक्षिकां प्राप्य निरर्थं प्रवदन्ति ते ३९

धीरैरध्मुपितां पूर्वमस्माकं तात पूर्वकैः ।

सत्यनामां दृढद्वारां हस्त्यश्वरथसंकुलाम् ४०

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः स्वकर्मनिरतैः सदा ।

जितेन्द्रियैर्महोत्साहैर्वृत्तामार्यैः सहस्रशः ४१

प्रासादैर्विविधाकारैर्वृत्तां वैद्यजनाकुलाम् ।

कच्चित्समुदितां स्फीतामयोध्यां परिरक्षसे ४२

कच्चिच्चैत्यशतैर्जुष्टः सुनिविष्टजनाकुलः ।

देवस्थानैः प्रपाभिश्च तटाकैश्चोपशोभितः ४३

प्रहृष्टनरनारीकः समाजोत्सवशोभितः ।

सुकृष्टसीमापशुमार्गिहसाभिरभिघर्जितः ४४

यदेवमातृको रम्यः श्वापदः परिवर्जितः ।

परित्यक्तो भयैः सर्वैः सनिभिश्चोपशोभितः ४५

विघर्जितो नरैः पापैर्मम पूर्वैः सुरक्षितः ।

कच्चिज्जनपदः स्फीतः सुखं वसति राघव ४६

क्या नास्तिकादि ब्राह्मणोंकी सेवा तो नहीं करते ? ये लोग वेदादि धर्मशास्त्र नहीं मानते और अपनी मन मानी तर्कणाय किया करते हैं । (३१-३९)

‘क्या हमारे पूर्वजोंकी भोगी हुई द्वद्वारवाली जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अपने अपने कर्मोंके करनेमें लगे रहते हैं व जिसमें अनेक प्रकारके मन्दिर हैं, बैद्योंके गृह हैं, ऐसी अयोध्यापुरीकी रक्षा करते हो ? हे भरत ! क्या यज्ञशालाओं देवालय, गौशाला तालाबोंसे शोभित, मनुष्योंसे भरापूरा, उत्सवोंसे शोभित, अच्छे पशुओंसे सेवित, अनेक नदी तडागों से संपुक्त, अति रमणीय, सब भयोंसे हीन, खानोंसे पूर्ण, पापी मनुष्योंसे हीन, हमारे पूर्वजोंसे रक्षित, धनधान्यमय कौमल देश मुत्तसे बसता

कच्चिच्चे दयिताः सर्वे कृपिगोरक्ष्यजीविनः ।  
 वार्तायां सांप्रतं तात लोकोऽयं सुखमेधते २७  
 तेषां गुतिपरीहारैः कच्चिच्चे मरणं कृतम् ।  
 रक्ष्या हि राजा धर्मेण सर्वे विषयवास्तिनः २८  
 कच्चित्स्त्रियः सान्त्वयसे कच्चित्तास्ते सुरक्षिताः ।  
 कच्चिन्न श्रद्धधात्यास्तां कच्चिद्दृष्टं न मापसे २९  
 कच्चिन्नागवनें गुप्तं कच्चिच्चे सन्ति धेनुकाः ।  
 कच्चिन्न गणिकाश्वानां कुञ्जराणां च तृप्यासि ५०  
 कच्चिद्दशयसे नित्यं मानुषाणां विभूषितम् ।  
 उत्थायेत्थाय पूर्वाहिं राजपुत्र महापथे ५१  
 कच्चिन्न सर्वे कर्मान्ताः प्रत्यक्षास्तेऽविशङ्कया ।  
 सर्वे वा पुनरुत्सृष्टा मध्यमे यात्र कारणम् ५२  
 कच्चिद् दुर्गाणि सर्वाणि धनधान्यायधोदकैः ।  
 यन्त्रैश्च प्रतिपूर्णानि तथा शिल्पियनुर्धरैः ५३  
 आपस्ते विपुलः कच्चिन्कच्चिदल्पतरो व्ययः ।  
 अपात्रेषु न ते कच्चित्कोशो गच्छति राघव ५४

है ? क्या कृपक गोपालक वणिज लोग सब आनन्दसे वनते हैं और  
 अपना अपना काम करके लान उठाते हैं ? क्या व्यापारी लोगोंकी  
 रक्षा तत्कर चोरादिकोंसे करते हो ? उनका भरण पोषण होता जात्रा  
 है ? क्या अपनी स्त्रियोंको समझाते रहते हो, उनको बातोंका विश्वास  
 तो नहीं मानते और मनकी गुप्त बात तो उनसे नहीं कह डालते ? क्या  
 जिम वनमें हाथी रहते हैं, उनको रक्षा रखते हो ? गान बैल इत्यादि तो  
 रक्षित हैं । ( ४०-५० )

'क्या अच्छे अच्छे भूपण वस्त्र पहिन नडकोंपर द्रोपहरके पहिले घूमते  
 हैं ? क्या सब कारभारी निश्शङ्क हो तुम्हारे पास तो नहीं चले जाते,  
 या नयसे जति दूर तो नहीं रहते ? क्या तुम्हारे दुर्ग अच्छ, जल शत्रु  
 चन्द्र व धनुर्धारी आदिकोंसे भरे हुए हैं ? क्या तुम्हारे पास आनन्दनोंसे

देवतार्थे च पित्रर्थे ब्राह्मणाभ्यागतेषु च ।	
योधेषु मित्रवर्गेषु कच्चिद्वच्छति ते व्ययः	५५
कच्चिदायौऽपि शुद्धात्मा क्षारितश्चापकर्मणा ।	
अदृष्टः शास्त्रकुशलैर्न लोभाद्वध्यते शुचिः	५६
गृहीतश्चैव पृष्टश्च काले दृष्टः सकारणः ।	
कच्चिन्न मुच्यते चोरो धनलोभान्नरर्पभ	५७
व्यसने कच्चिदाख्यस्य दुर्वलस्य च राघव ।	
अर्थं विरागाः पश्यन्ति तवामात्या बहुधुताः	५८
यानि मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यशूणि राघव ।	
तानि पुत्रपशून्म्रान्ति प्रीत्यर्थमनुशासतः	५९
कच्चिद्वृद्धांश्च बालांश्च वैद्यान्मुख्यांश्च राघव ।	
दानेन मनसा वाचा त्रिभिरेतैर्बुभूषसे	६०
कच्चिद्गुरुंश्च वृद्धांश्च तापसान्देवतातिथीन् ।	
चैत्यांश्च सर्वान्सिद्धार्थान्ब्राह्मणांश्च नमस्यसि	६१
कच्चिदर्थेन वा धर्ममर्थं धर्मेण वा पुनः ।	
उभौ वा प्रीतिलोभेन कामेन न विपाद्यसे	६२

स्वर्च कम है वा नहीं? क्या देवता, पितर, ब्राह्मण, अतिथि, सेना, व मन्त्री के लिये खर्च होता है वा नहीं? क्या शुद्धात्मा पित्र श्रेष्ठ गुण युक्त लोगोंको लोभमें आ बंधनमें तो नहीं डालते? क्या चोर की चोरी प्रमाणित हो जानेपर भी धनके लोभसे बिना दण्ड दिये तो नहीं छोड़ देते? क्या धनाध्य वा रङ्गपर कष्ट पड़नेपर तुम्हारे न्यायाधीशादि निलोभ हो उनका प्रयोजन देखते हैं? निरपराधी लोगोंको जब दण्ड दिया जाता है, तो दण्ड देनेवाले राजा व राजसेवकके पुत्रादि नष्ट हो जाते हैं। क्या बृद्ध, बालक, वैद्य व मुखिया लोगोंको दान मानसे आदर करते हो? (५१-६०)

‘न्या गुरु, वृद्ध, तपस्वी, देवता आदिको अभिपादन करते हो? क्या कभी अर्थसे धर्म व धर्मसे अर्थ व अर्थधर्म दोनोंको लोभ व कामसे तो

कश्चिदर्थं च कामं च धर्मं च जयतां वर ।	
विभज्य काले कालज्ञ सर्वान्वरद सेवसे	६३
कश्चित्ते ब्राह्मणः शर्म सर्वशास्त्रार्थकोविदः ।	
आशंसते महाप्राज्ञ पौरजानपदैः सह	६४
नास्तिक्यमनृतं क्रोधं प्रसादं दीर्घसूत्रताम् ।	
अदर्शनं ज्ञानवतामालस्यं पञ्चवृत्तिताम्	६५
एकचिन्तनमर्थानामनर्थज्ञैश्च मन्त्रणम् ।	
निश्चितानामनारम्भं मन्त्रस्यापरिरक्षणम्	६६
मङ्गलाद्यप्रयोगं च प्रत्युत्थानं च सर्वतः ।	
कश्चित्त्वं चर्ज्यस्येताव्राजदोषांश्चतुर्दश	६७
दशपञ्चचतुर्धर्गान्सप्तवर्गं च तत्त्वतः ।	
अष्टवर्गं त्रिवर्गं च विद्यास्तिस्रश्च राघव	६८
इन्द्रियाणां जयं बुद्ध्या पाङ्गुण्यं दैवमानुषम् ।	
कृत्यं विंशतिवर्गं च तथा प्रकृतिमण्डलम्	६९
यात्रादण्डविधानं च द्वियोनी संधिविग्रहौ ।	
कश्चिदेतान्महाप्राज्ञ यथावदनुमन्यसे	७०

नहीं रोक देने ? क्या अर्थ काम व धर्म अपने अपने समयपर सेवन करते हो ? क्या पुर व देशमें बसनेवाले ब्राह्मणगण तुम्हारा कल्याण चाहते हैं ? क्या नास्तिकता, मिथ्या क्रोध, अहङ्कार, आलस्य, इन्द्रियोके चशीभूत होना, अकेलेही विचार करना, वा अज्ञान लोगोंसे सलाह लेना, गुप्त मन्त्रको प्रकट कर देना, नवीन आरम्भमें मङ्गलाचरण न करना, सब तरहके नीच व छोटे लोगोंको भी देख उठ खड़े होना, क्या राजाओंके इन दोषोंको तुम निवारण करते हो ? हे भरत ! क्या १० वर्ग, ५ वर्ग, ४ वर्ग, ७ वर्ग, ८ वर्ग, ३ वर्ग व तीनों विद्या, इन्द्रियोंका जीतना ६ वर्ग देवता व मनुष्योंसे दुःख, राजकृत्य २० वर्ग ५ प्रकृति १२ मण्डल यात्रा-विधान दण्डविधान मिलाप करना व विरोध करना इनके कर्तव्याकर्तव्यका विचार करते हो ? (६१-७०)

मन्त्रिभिस्त्वं यथोद्दिष्टं चतुर्भिस्त्रिभिरेव वा ।

कच्चित्समस्तैर्व्यस्तैश्च मन्त्रं मन्त्रयसे बुध ७१

कच्चित् सफला वेदाः कच्चित् सफलाः क्रियाः ।

कच्चित् सफला दाराः कच्चित् सफलं श्रुतम् ७२

कच्चिदेषैव ते बुद्धिर्यथोक्ता मम राघव ।

आयुष्या च यशस्या च धर्मकामार्थसंहिता ७३

यां वृत्तिं वर्तते तातो यां च नः प्रपितामहः ।

तां वृत्तिं वर्तसे कच्चिद्या च सत्पथगा शुभा ७४

कच्चित्स्यादुक्तं भोज्यमेको नाश्नासि राघव ।

कच्चिदाशंसमानेभ्यो मित्रेभ्यः नंप्रयच्छसि ७५

राजा तु धर्मेण हि पालयित्वा महीपतिर्दण्डधरः प्रजानाम् ।

अवाप्य कृत्स्नां वसुधां यथावदितदच्युतः स्वर्गमुपैति विद्वान् ७६

इत्यार्षे श्री० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकोत्तरशततमः सर्गः ॥१-१॥

द्व्युत्तरशततमः सर्गः ।

[३७७९]

तं तु रामः समाज्ञाय भ्रातरं गुरुवत्सलम् ।

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा शृष्टुं समुपचक्रमे १

‘हे भरत ! क्या शास्त्रानुसार मन्त्रियोंके साथ बैठके मन्त्रणा करते हो ? हे भरत ! क्या तुम्हारा वेदपाठ और क्रिया सफल है ? क्या तुम्हारी स्त्री और विद्या सफल हुई है ? हे भरत ! क्या आयुर्वर्धक, यशस्कर और धर्मकामानुसारी तुम्हारी बुद्धि है ? पिता तथा अपने पूर्वजोंका वर्तन जैसा था, क्या उसी सत्पथसे तुम जाते हो ? पकाया हुआ अन्न अकेला न खाकर, उसकी इच्छा करनेवाले मित्रोंको देकरही खाते हो ? जो राजा धर्मसे प्रजापालन करता है, वह पृथिवी भरका राज्य भोगता है और अन्तमें स्वर्गको प्राप्त होता है’ । (७१-७६)

यहाँ १०१ सर्ग समाप्त हुआ ।

वह अपना भाई भरत पिताके संबंधमें प्रेमपूर्ण भाव मनमें रखता है वैसे समझकर रामचंद्रजी भाई लक्ष्मणके साथ उससे पूछने लगा—“भैया,

किमेतदिच्छेयमहं धोतुं प्रव्यादृतं त्वया ।	
यत्सात्वमागतो देशमिमं चीरजटाजिनी	२
यन्निमित्तमिमं देशं कृष्णाजिनजटाधरः ।	
हित्वा राज्यं प्रविष्टस्त्वं तत्सर्वं वक्तुमर्हसि	३
इत्युक्तः केकयीपुत्रः काकुत्स्थेन महात्मना ।	
प्रगृह्य बलवद्भूयः प्राञ्जलिरान्यमप्रवात्	४
आर्यं तातः परित्यज्य कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।	
गतः स्वर्गं महाबाहुः पुत्रशोकाभिपीडितः	५
स्त्रिया नियुक्तः कैकेय्या मम मात्रा परंतप ।	
चकार सा महत्पापमिदमात्मयशोहरम्	६
सा राज्यफलमप्राप्य विधवा शोककशिता ।	
पतिप्यति महाधारे नरके जननी मन	७
तस्य मे दासभूतस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ।	
अभिपिञ्चस्त चाद्यैव राज्येन मघवानिव	८

यह क्या है, दत्तात्रेय; तू इधर बल्कल, जटा, तथा अजिन या मृगजला पहनकर आया है, इनका कारण क्या है ? मैं तेरे मुँहमें जल्दही इस वंशमें जानेका कारण सुनना चाहता हूँ । इसलिये, जिस कारणसे राज्यचक्रका त्याग करके और जटाधारी एवं काला मृगचर्म पहनकर ऐसी बगल चला गया है, जो सुनको पुरा तरह बतला दे ।” (१-३)

इमर्नाति महात्मा ककुत्स्थकुलभूषण रामचन्द्रजीने यह प्रसन्न उनके मानने पर किया, तब बड़ी कठिनाईसे फिर उनडले हुए दुःखभारको नगनेही रोककर तथा हाथनी जोड़कर भरत उनमें कहने लगे— “ क्या कहूँ नाई ! मेरी माता कैकेयी उनकी पत्नी बनगयी थी और उसकी प्रेरणासे बड़ा विकट कार्य करके पुत्रके शोकमें दुःखी बनकर पिताजी बड़े भारी पराक्रमी होनेपर भी स्वर्ग निघार गये; इस तरह उस मेरी माताने अपनी कीर्ति को कलंक लग जाये, ऐसा यह बड़ा भारी रासकर्म किया है । अब तो बड़ शोकावेगके मारे दुदली पतली तथा विधवानी यनी मेरी माता राज्यफल



इमाः प्रकृतयः सर्वा विधवा मातरश्च याः ।	
त्वत्सकाशमनुप्राप्ताः प्रसादं कर्तुमर्हसि	९
तथानुपूर्व्या युक्तश्च युक्तं चात्मनि मानद ।	
राज्यं प्राप्नुहि धर्मेण सकामान्सुहृदः कुरु	१०
भवत्वविधवा भूमिः समग्रा पतिना त्वया ।	
शशिना विमलेनेव शारदी रजनी यथा	११
एभिश्च सचिवैः सार्धं शिरसा याचितो मया ।	
भ्रातुः शिष्यस्य दासस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि	१२
तदिदं शाश्वतं पित्र्यं सर्वं सचिवमण्डलम् ।	
पूजितं पुरुषव्याघ्र नातिक्रामितुमर्हसि	१३
एवमुक्त्वा महाबाहुः सवाप्यः कैकर्यासुतः ।	
रामस्य शिरसा पादौ जग्राह भरतः पुनः	१४

पानेके वज्राय अत्यन्त डरावने नरकमें जा गिरेगी । इसलिये, मैं अब दास बनकर आपके पास चला आया हूँ, तो कृपा कीजिये, आजहीके दिन इन्द्रके समान आप अपना निजी राज्याभिषेक संपन्न कर लीजियेगा । देखिए तो, ये सारे सचिव और पतिरहित माताएँ आपके पास चली आयी हैं, इसलिये उनपर कृपा कीजिये । और परंपरागत प्रथाके अनुसार आपही नरेश बननेकी क्षमता रखते हैं, तथा आपकाही राजगद्दीपर बैठकर अभिषिक्त होना सर्वधैर्य उचित है । इसलियेभी धर्मपूर्वक आप राज्यका अंगीकार करके अपने मित्रोंकी कामना पूर्ण कीजिये । जिस तरह शरदऋतुकी रात्रि निष्कलक चन्द्रमाके कारण सनाथगी प्रतीत होती है, ठीक वैसेही यह मारी पृथ्वी आप जैसे पतिदेवको पाकर सनाथ बने । इन सचिवोंके साथ मैं आपके चरणोंपर नाथा टेककर प्रार्थना करता हूँ कि इस भाईपर, शिष्यपर तथा दासपरभी दयापूर्ण दृष्टिसे देखिये । हे पुरुषधेष्ठ ! परंपरासे चल आये एवं पूर्वजोंने नन्मानित इस भोगीमण्डलका अतिक्रमण करना आपसे उचित नहीं ।" (२-१३)

इस तरह आँवोंमें आँसू नरकर महापराक्रमी भरतने प्रार्थना की और फिर रामचंद्रजीके चरणोंपर शोभा रखा । जब भगवाने तारीकी तरह

तं मत्तमिव मातङ्गं निःश्वसन्तं पुनः पुनः ।

आतरं भरतं रामः परिष्वज्येदमब्रवीत् १५

कुलीनः सत्त्वसंपन्नस्तेजस्वी चरितव्रतः ।

राज्यहेतोः कथं पापमाचरेन्मद्विधो जनः १६

न दोषं त्वयि पश्यामि सूक्ष्ममप्यरिसूदन ।

न चापि जननीं बाल्यारवं विगर्हितुमर्हसि १७

कामकारो महाप्राज्ञ गुरुणां सर्वदानव ।

उपपन्नेषु दारेषु पुत्रेषु च विधीयते १८

वयमस्य यथा लोक संख्याताः सौम्य साधुभिः ।

भार्याः पुत्राश्च शिष्याश्च त्वमपि ज्ञातुमर्हसि १९

वने वा चौरवसनं सौम्य कृष्णाजिनान्वरम् ।

राज्ये वाऽपि महाराजो मां वास्तयितुमीश्वरः २०

यावत्पितरि धर्मज्ञ गौरवं लोकसत्कृते ।

तावद्धर्मकृतां श्रेष्ठ जनन्यामपि गौरवम् २१

बारबार माँ लेते हुए भाई भरतसे उसे गले लगाकर वे बोले— “कुलीन, सार्विक गुणशाली, तेजस्वी एवं व्रतधाती मुझ जैसा पुरुष नला राज्यके लिये पाप कैसे करे ? शत्रुओंके विध्वंस करनेवाले हे भरत ! वीरों घटना के बारेमें मुझे तुम्हें दोष लगानेका तनिक भी कारण नहीं दीख पड़ता है और मैं कहना चाहता कि बचनकी बजहसे तू अपनी माताकी निंदा कर रहा है तो वैसा न कर । निरागम और ज्ञानमंपन्न भाई भरत ! अपने नमसे गये पुत्रों तथा पत्नियोंपर चाहे जैसी आज्ञा लादना बुझुग लोगोंके साथवत अधिकारके भीतर आता है । मज्जनोंकी राय है कि संसारमें पत्नी, पुत्र एवं शिष्यकी गिनती उन लोगोंमें करनी चाहिये जिन्हें गुरु या पिता मनचाही आज्ञा कर सकते हैं । स्वर्गवासी दशरथ नरेशमें हमारा भी वही संबंध है, यह बात कभी तुम्हें न भूलनी चाहिये । दशरथमहाराजको पूर्ण अधिकार है कि वे मुझको बलकल और काला नृगचर्म पहनाकर जंगलमें भिजवा दें या राजगद्दीपर बिठला दें । धर्मनिष्ठोंमें श्रेष्ठ एवं धनेश भाई

एताभ्यां धर्मशीलाभ्यां वनं गच्छेति राघव ।

मातापितृभ्यामुक्तोऽहं कथमन्यत्समाचरे २२

त्वया राज्यमयोध्यायां प्राप्तव्यं लोकसत्कृतम् ।

वस्तव्यं दण्डकारण्ये मया वल्कलवाससा २३

एवमुक्त्वा महाराजो विभागं लोकासंनिधौ ।

व्यादिश्य च महाराजो दिवं दशरथो गतः २४

स च प्रमाणं धर्मात्मा राजा लोकगुरुस्तथ ।

पित्रा दत्तं यथाभागमुपभोक्तुं त्वमर्हसि २५

यद्ब्रवीन्मां नरलोकसत्कृतः पिता महात्मा विबुधाधिपोपमः ।

तदेव मन्ये परमात्मनो हितं न सर्वलोकेश्वरभावमव्ययम् २६

इत्योपे श्री० वा० आदिशब्देऽयोध्याकाण्डे द्रुपतराजतनयः सर्गः ॥१०२॥ [३८०५]

द्रुपतराजतनयः सर्गः ।

रामस्य वचनं श्रुत्वा भरतः प्रत्युवाच ह ।

किं मे धर्माद्विहीनस्य राजधर्मः करिष्यति ?

भरत ! जनताके लिये माननीय पिताके तुल्य माताकाँभी गौरव प्रदान करना ठीक है । जब कि दोनोंही धर्मशील मातापिताओंने मुझको “ वनमें जाओ ” यह आज्ञा देदी है तब, रघुवंशनूपण भरत ’ मैं भला किस तरह विपरीत आचरण रावू ? ( १४-२२ )

‘अयोध्यामें जनतानुमोदित राज्यशामनभार तुम्हें उठाना पड़ेगा और मुझे बल्कल पहनकर दण्डक वनमें रहना चाहिये ऐसा मारी जनताके सामने कहकर तथा वैसेही बर्ताव रखनेकी आज्ञा देकर राजा दशरथ स्वर्ग सिधारे । वही जनताकाँ गुरु धर्मनिष्ठ नरेश तुम्हारे लिये प्रमाण है, इसलिये पिताजीके किये विभागानुसार प्राप्त राज्यका उपभोग तुम्हें लेना चाहिये । सभी मानवोंके मान्य बने हुए देवेन्द्रतुल्य पिताने जो मुझसे कहा उसमेंही मेरा सर्वोपरि कल्याण धरा है, नहि अदृष्ट स्वर्गलोक गन्धर्वमें, ऐसी मेरी राय है । ( २३-२६ )

यहाँ १०० सर्ग समाप्त हुआ ।

शाश्वतोऽयं सदा धर्मः स्थितोऽस्मासु नरर्षभ ।

ज्येष्ठे पुत्रे स्थिते राजान कनीयान्भवेन्नृपः २

स समृद्धां मया सार्धमयोध्यां गच्छ राघव ।

अभिषेचय चात्मानं कुलस्यास्य भवाय नः ३

राजानं मानुषं प्राहुर्देवत्वे संमतो मम ।

यस्य धर्मार्थसहितं वृत्तमाहुरमानुषम् ४

केकयस्थे च मयि तु त्वयि चारण्यमाश्रिते ।

धोमान्स्वर्गं गतो राजा यायजूकः सतां मतः ५

निष्क्रान्तमात्रे भवति सहसीते सलक्ष्मणे ।

दुःखशोकाभिभूतस्तु राजा त्रिदिक्षमभ्यगात् ६

उत्तिष्ठ पुरुषव्याघ्र क्रियतामुदकं पितुः ।

अहं चायं च शत्रुघ्नः पूर्वमेव कृतोदकां ७

प्रियेण किल दत्तं द्विपितृलोकेषु राघव ।

अक्षयं भवतीत्याहुर्भवांश्चैव पितुः प्रियः ८

त्वामेव शोचंस्तव दर्शनेऽसुखस्येव सक्तामनिवर्त्य बुद्धिम् ।

त्वया विहीनस्तव शोकरुग्णस्त्वा संस्मरन्नेव गतः पिता ते ९

दत्तापे श्रीम०वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे श्रुतरक्षततमः सर्गः॥१०३॥[३८१८]

रामके वचन सुन भरत बोले कि 'धर्महीन मेरे राजधर्मसे क्या मिद होगा ! यह सदाका धर्म चला जाता है कि ज्येष्ठ पुत्रके स्थितत्वमें छोटा पुत्र राजा नहीं होता । सो अब अयोध्याको मेरे साथ चलो, मेरे तथा इस कुलके कल्याणके लिये अभिषेक करा राजा बना । क्योंकि जिन राजाके सब कर्म धर्म अर्थ सहित देवोंके समान थे, वे मेरे पिता स्वर्गवासी हो गये । मैं केकयदेशमें था और आप यहाँ । इसी बीचमें राजा दशरथ स्वर्गको चले गये । जानकी लक्ष्मण सहित आपके वनको चले आनेके पीछे शोकसे दुःखित हो राजा स्वर्गको सिधार गये । सो हे पुरुषसिंह ! चलिए, पिताको जलदान कीजिये । मैं तथा शत्रुघ्न पूर्वही जलदान कर चुके हैं । धर्मशास्त्रमें कहा गया है कि जो जलादि कोई प्रिय देता है, वह पितरलोकमें सर्वत्र रहता है ।

चतुर्दशतमः सर्गः ।

तां श्रुत्वा करुणां वाचं पितुर्मरणसंहिताम् ।	
राघवो भरतेनोक्तां बभूव गतचेतनः	१
तं तु वज्रमिवोत्सृष्टमाहवे दानवारिणा ।	
वाग्वज्रं भरतेनोक्तममनोशं परंतपः	२
प्रगृह्य रामो यादृ वै पुष्पिताङ्ग इव द्रुमः ।	
वने परशुना कृत्तस्तथा भुवि पपात ह	३
तथा द्वि पतितं रामं जगन्त्यां जगतीपतिम् ।	
कूलघातपरिध्रान्तं प्रसुप्तमिव कुञ्जरम्	४
भ्रातरस्ते महेष्वासं सर्वतः शोककशितम् ।	
रुदन्तः सह वैदेह्या सिपिचुः सलिलेन वै	५
स तु संशं पुनर्लब्ध्वा नेत्राभ्यामथुमुत्सृजन् ।	
उपाक्रामत काकुत्स्थः कृपणं बहु भाषितुम्	६
स रामः स्वर्गतं श्रुत्वा पितरं पृथिवीपतिम् ।	
उवाच भरतं वाक्यं धर्मात्मा धर्मसंहितम्	७
किं करिष्याम्ययोध्यायां तاته दिष्टां गतिं गतं ।	
कस्तां राजवराद्धीनामयोध्यां पालयिष्यति	८

आपके वियोगसे हुए शोकसे जर्जर होकर और दुःख तथा आपका स्मरण करते करते पिता स्वर्गको चले गए ।' (१-९)

यहाँ १०३ सर्ग समाप्त हुआ ।

पिताके मरणकी बात भरतके सुनसे रामने जब सुनी तो मूर्च्छित हो गये । युद्धमें इन्द्रके छोड़े हुए वज्रके तुल्य कठोर भरतका वाक्य सुनकर दोनों हाथ शिरपर रख कुल्हाड़ीसे कट्टे वृक्षके समान राम भूमिमें गिर पड़े । परिध्रांत हाथीके समान रामको भूमिपर मूर्च्छित हो गिरा देख तीनों भाई व सीता शोकमूर्च्छित रामके ऊपर जल छिड़कने लगीं । जब रामकी मूर्च्छा जमी तो वे करजासे भरे वचन कहने लगे । राजाको स्वर्गगत पुन राम धर्म-संयुक्त वचन भरतसे बोले कि 'पिता तो मरणधर्मको प्राप्त हुए, हम

हि० १३ (अयो-पा. उ. )

किं नु तस्य मया कार्यं दुर्जतिन महात्मनः ।  
 यो मृतो मम शोकेन स मया न च संस्कृतः ९  
 ब्रह्मो भरत सिद्धार्यो येन राजा त्वयानघ ।  
 शत्रुघ्नेन च सर्वेषु प्रेतकृत्येषु संस्कृतः १०  
 निष्प्रधानामनेकाग्रां नरेन्द्रेण विना कृताम् ।  
 निवृत्तवनवासोऽपि नायोध्यां गन्तुमुत्सहे ११  
 समाप्तवनवासं मामयोध्यायां परंतप ।  
 कोऽनुशासिष्यति पुनस्ताते लोकान्तरे गते १२  
 पुरा प्रेक्ष्य सुवृत्तं मां पिता यान्याह सान्त्वयन् ।  
 वाक्यानि तानि श्रोष्यामि कुतः कर्णसुखान्यहम् १३  
 एवमुक्त्वाथ भरतं भार्यामभ्येत्य राघवः ।  
 उवाच शोकसंतप्तः पूर्णचन्द्रनिभाननाम् १४  
 सीते मृतस्ते श्वशुरः पितृहीनोऽसि लक्ष्मण ।  
 भरतो दुःखमाचष्टे स्वर्गतिं पृथिवीपतेः १५  
 ततो बहुगुणं तेषां वार्ष्णेज्येष्ठपुत्रजयत ।  
 तथा व्रुवति काकुत्स्थे कुमारानां यशस्विनाम् १६  
 ततस्ते भ्रातरः सर्वे भृशमाभ्यास्य दुःखितम् ।

जयोध्यामें जाकर क्या करेंगे ? श्री दत्तारथकं विना जयोध्याका पालन कौन करेगा ? उन महात्मा राजाका कौन काम मुझ ऐसे कुपूतसे होगा कि उनकी प्रेत-क्रिया भी मैंने न की । हे भरत ! तुम सिद्धार्य हो गये जो पिताके सब प्रेतकार्य तुमने किये ! (१-१०)

'मैं तो वनवान सनाप्त होनेपर भी जनाथ जयोध्याको नहीं जाना चाहता । वनवास सनाप्त कर जयोध्याको भेरे जानेपर बिना पिताके तुमको कौन सिखलावेगा ? मुक्तको जो बातें पिता कहते थे जिनको मुनतही कानोंको सुन्न होता था, जब मैं क्लितसे नुनूंगा ?' भरतसे ऐसा कह राम शोकसन्तप्त हो जानकीसे कहने लगे कि 'हे सीता, तुम्हारे श्वशुर मृतक हो गए, हे लक्ष्मण ! तुम पिताहीन हो गये ।' रामके ऐसा कहनेपर सीता भाई रोदन

मुमोच तुमुलं शब्दं द्यौरिवाभ्रसमागमे	४०
तेन वित्रासिता नागाः करेणुपरिवारिताः ।	
आवासयन्तो गन्धेन जगमुरन्यद्वनं ततः	४१
वराहमृगसिंहाश्च महिषाः स्मरस्तथा ।	
व्याघ्रगोकर्णगवया वित्रेसुः पृषतैः सह	४२
रथाह्वंसा नृत्यूहाः प्लवाः कारण्डवाः परे ।	
तथा पुंस्कोकिलाः क्रौञ्चा विसंज्ञा भेजिरे दिशः	४३
तेन शब्देन वित्रस्तैराकाशं पक्षिभिर्वृतम् ।	
मनुष्यैरावृता भूमिरुभयं प्रवभौ तदा	४४
ततस्तं पुरुषव्याघ्रं यशस्विनमकल्मषम् ।	
आसीनं स्थण्डिले रामं ददर्श सहसा जनः	४५
विगर्हमाणः कैकेयीं मन्थरासहितामपि ।	
अभिगम्य जनो रामं याप्पपूर्णमुखोऽभवत्	४६

गडाहट शुरू होती है वैसेही कई यानों, वाहनों एवं रथोंके पहियोंसे प्रताडित भूमिसे गंभीर गर्जन सुनाई पडा। हथिनीसे घिरे हाथी उससे घबरा गये और अपने मस्तपनसे उत्पन्न जलधाराके सौरभसे दिशाओंको सुगन्धित करते हुए वे उधरसे दूसरी वनभूमिमें घुस गये। सूवर, मृग, सिंह, भैंसे, स्मर, बाघ, गोकर्ण, गवय, पृसत् भी दूसरे जंगलमें चले गये। चरुवा, हंस, पानीके मुर्ग, प्लव नामक बगुले, कारंडव, कोयल, क्रौंच जैसे पंछीभी सुधबुध भूलकर हर दिशामें भागने लगे। उस आवाजसे सहमे हुए पक्षियोंसे भरा आस्मान तथा मानवोंसे व्याप्त भूमि दोनों मुहाने लगे। (३८-४४)

बादमें पापरहित एवं यशस्वी रामचंद्रजी, जो कि पुरुषोंमें श्रेष्ठ थे, एक चट्टानपर बैठे हुए यकायक उन लोगोको दीख पडे। मंथराके साथ रहने-वाली कैकेयीकी निन्दा करती हुई जनताके आँखोंमें रामके समीप पहुँच जानेपर आँसू उमड पडे। आँसूभरी नयनोंवाले लोगोंको, जो कि बडे भारी दुःखमें पडे थे, देखकर धर्मज्ञ रामचंद्रजी मातापिताके तुल्य उन्हें गले

तान्नरान्वाप्पपूर्णाक्षान्समीक्ष्याथ सुदुःखितान् ।

पर्यप्यजत धर्मशः पितृवन्मातृवच्च सः ४०

स तत्र कांश्चित्परिपश्यजे नरान्नराश्च केचित्तु तमभ्यवाद्यन् ।

चकार सर्वान्सवयस्यवान्धवान्यथार्हमासाद्य तदा नृपान्मजः ४१

ततः स तेषां रुदतां महान्मनां भुवं च खं चानुविनादयन्स्वनः ।

गुहा गिरीणां च दिशश्च संततं मृदङ्गघोषप्रतिमो विशुश्रुवे ४२

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेऽयोध्याकाण्डे चतुर्दशतमः सर्गः ॥१०४॥

पञ्चोत्तरशततमः सर्गः ।

[३८६३]

यसिष्ठः पुरतः कृत्वा दारान्दशरथस्य च ।

अभिचक्राम तं देशं रामदर्शनतर्पितः १

राजपत्न्यश्च गच्छन्त्यो मन्दं मन्दाकिनीं प्रति ।

ददृशुस्तत्र तत्तीर्थं रामलक्ष्मणसेवितम् २

कौसल्या वाप्पपूर्णन मुखेन परिशुष्यता ।

सुमित्रामब्रवीद्दीनां याश्चान्या राजयोपितः ३

इदं तेषामनाथानां क्लिष्टमक्लिष्टकर्मणाम् ।

वने प्राक्कलनं तीर्थं ये ते निर्विपर्याकृताः ४

इतः सुमित्रे पुत्रस्ते सदा जलमतन्द्रितः ।

लगाने लगे । उस स्थानपर कइयोंको उन्हींने आलिगान दिया तो कुछ उन्हे प्रणाम करने लगे । राजपुत्र रामचंद्रजी योग्यताके अनुसार सबसे मिले और वे उनके मित्र एवं बांधव बन गये । पश्चात्, दिलखते हुए उन महान पुरषों के इम ध्वनिसे भूमि, आकाश एवं पर्वतगुहाएँ सभी गूँज उठी और ऐंगद प्रतीत हुआ कि मानों कहीं मृदंग बाजा बज रहा हो । (४५-४९)

यहाँ १०४ सर्ग समाप्त हुआ ।

यसिष्ठ भी महाराज दशरथजी कांशल्यादि स्त्रियोंको आगे कर रामके पास चले । राजस्त्रियोंने जाते जाते मन्दाकिनी नदीको देखा तथा राम व लक्ष्मणके स्नान योग्य घाटभी देखा । उमें देय उद्गममुत्त कांशल्या अन्य स्त्रियोंसे बोली कि ' मेरे अनाथ बचवासी राम सीता लक्ष्मणके स्नान कर-



स्वयं हरति सौमित्रिर्मम पुत्रस्य कारणात्	५
जघन्यमपि ते पुत्रः कृतवान्न तु गर्हितः ।	
। आतुर्यदर्थरहिते सर्वं तद्गर्हितं गुणैः	६
अघायमपि ते पुत्रः क्लेशानामतथोचितः ।	
नीचानर्थसमाचारं सज्जं कर्म प्रमुञ्चतु	७
दक्षिणात्रेषु दर्भेषु सा ददर्श महीतले ।	
पितुरिङ्गुदिपिण्याकं न्यस्तमायतलोचना	८
तं भूमौ पितुरातनं न्यस्तं रामेण वीक्ष्य सा ।	
उवाच देवी कौसल्या सर्वा दशरथस्त्रियः	९
इदमिक्ष्वाकुनाथस्य राघवस्य महान्मनः ।	
राघवेण पितुर्दत्तं पश्यतैतद्यथाविधि	१०
नस्य देवसमानस्य पार्थिवस्य महात्मनः ।	
नैतदौपयिकं मन्ये भुक्तभोगस्य भोजनम्	११
चतुरन्तां महीं भुक्त्वा महेन्द्रसदृशो भुवि ।	
कथमिङ्गुदिपिण्याकं स भुंक्तं वसुधाधिपः	१२
अतो दुःखतरं लोके न किञ्चित्प्रतिभाति मे ।	
यत्र रामः पितुर्दद्यादिङ्गुदीक्षोदमृद्धिमान्	१३
रामेणेङ्गुदिपिण्याकं पितुर्दत्तं समीक्ष्य मे ।	

नेवा यह घाट है। हे सुमित्रे ! इसी घाटमे रामके लिये लक्ष्मण स्वयं जल भर ले जाते हैं। यद्यपि लक्ष्मण यह कर्म करते कष्ट पाते हैं, पर आज उनका यह कर्म छूट जायगा।' (१-७)

उहीं पर बिछे हुए कुत्तोंपर पिताके लिये दिये पिण्डोंको देख कौशल्या कन्य स्त्रियोंसे कहने लगी, 'देखो, महाराज दशरथके लिये रामने यथाविधि ये पिण्ड दिये हैं। मैं उन महात्मा महाराज दशरथके लिये ये पिण्ड उप-शोभी भोजन नहीं समझती। समस्त पृथ्वीको इन्द्रवन् भोगकर अब वही राजा इंगुदीके पिण्ड कैसे भोग करेंगे ? रामने इंगुदीके फलका पिण्ड रूपने पिताको दिया है, इससे यद्द कर मुझको अन्य कष्ट नहीं जान पड़ता।

कथं दुःखेन हृदयं न स्फोटति सहस्रधा	१४
धृतिस्तु खल्वियं सत्या लौकिकी प्रतिभाति मे ।	
यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः	१५
एवमातां सपत्न्यस्ता जग्मुराश्वाम्यतां तदा ।	
बृहदुश्वाश्रमे रामं स्वर्गच्युतमिवामरम्	१६
नं भोगैः संपरित्यक्तं रामं संप्रेक्ष्य मातरः ।	
भार्ता मुमुचुरश्रूणि सस्वरं शोककर्षिताः	१७
नासां रामः समुत्थाय जग्राह चरणाम्बुजान् ।	
मातृणां मनुजव्याघ्रः सर्वासां सत्यसंहरः	१८
नाः पाणिभिः सुखस्पर्शमृद्वङ्गुलिनलैः शुभैः ।	
प्रममार्जु रजः पृष्ठाद्रामस्यायतलोचनाः	१९
सौमित्रिरपि ता सर्वा मातृः संप्रेक्ष्य दुःषितः ।	
अभ्यवादयदासक्तं शनै रामादगन्तरम्	२०
यथा रामे तथा तस्मिन्सर्वा ववृतिरे स्त्रियः ।	
पृतिं दशरथाज्जाते लक्ष्मणे शुभलक्षणे	२१
सीतापि चरणान्स्तासामुपसंगृह्य दुःखिता ।	
श्वश्रूणामश्रुपूर्णार्क्षी संवभूवाग्रतः स्थिता	२२

इस दंगुदीके चूर्णका विण्टदान देव दुःखने मेरा हृदय सहस्र दूक क्यों नहीं हो जाता ? यह जो कहावत है कि जो जिस वस्तुका भोग लगाता है, उसके देवताभी वही खाते हैं मय ही है ।' (८-१५)

एवं विलाप करती कौशल्याको समझाती हुई सब स्त्रियोंने रामको बैठे देखा । रामको बैठे देख शोकसे पीडित सब मातायें आंसू छोटती हुई ऊँचे स्वरसे पुकारने लगीं । रामने उठ सब माताओंके चरण छुए । जब राम चरणों पर गिर तो वे सब इनकी पाँठकी भूलि झाटने लगीं । लक्ष्मणने भी दुःखित हो रामके पीछे सबको प्रणाम किया । माताओंने रामकी भाँति लक्ष्मणके माथभी यही दर्ताव किया । सीताभी अपनी मामुओंके चरण परउ बहुत दुःखित हुई और रुदन करने लगी (१६-२२)

तां परिष्वज्य दुःखार्ता माता दुहितरं यथा ।

वनवासकृतां दीनां कौसल्या चाक्यमब्रवीत् २३

वैदेहराजन्यसुता स्नुषा दशरथस्य च ।

रामपत्नी कथं दुःखं संप्राप्ता विजने वने २४

पद्ममातपसंतप्तं परिहृष्टमिवोत्पलम् ।

काञ्चनं रजसा ध्वस्तं ह्रिष्टं चन्द्रमिवाम्बुदैः २५

मुखं ते प्रेक्ष्य मां शोको ददृत्यग्निरिवाश्रयम् ।

भृशं मनसि वैदेहि व्यसनारणिसंभवः २६

श्रुवन्त्यामेवमार्तायां जनन्यां भरताग्रजः ।

पादावासाद्य जग्राह वसिष्ठस्य च राघवः २७

पुरोहितस्याग्निसमस्य तस्य वै बृहस्पतेरिन्द्र इवामराधिपः ।

प्रगृह्य पादौ सुसमृद्धतेजसः संहृद्य तेनोपविवेश राघवः २८

ततो जघन्यं सहितैः स्वमन्त्रिभिः पुरप्रधानैश्च तथैव सैनिकैः ।

जनेन धर्मज्ञतमेन धर्मवानुपोपविष्टो भरतस्तदाग्रजम् २९

उपोपविष्टस्तु तदातिवीर्यघांसनपस्विवेषेण समीक्ष्य राघवम् ।

उसको कन्याके तुल्य छातीसे लगा कौसल्या बोली, 'हा ! जनकराज-  
दुलारी महाराज दशरथकी पुत्रवधू तथा रामकी पत्नी ! वनमें तुमने कैसे  
कैसे दुःख पाये । हे सीते ! धामसे मन्तप्त कमल, धूल लगे हुए पुष्प  
तथा मेघोंसे बिरे चन्द्रमाके तुल्य उद्गम तुम्हारा मुख देख शोकान्नि-  
मेरे मनको भस्म किये देती हूँ ।' कौसल्या मृमा कहतीही थी कि रामने  
वसिष्ठके चरण छुए । (२१-२७)

देवोंका नरेश इन्द्र जिस तरह बृहस्पतिजीके चरण पकड़ लेता है वैसेही  
अत्यन्त प्रचुर तेजसे युक्त अग्नितुल्य उस वसिष्ठ पुरोहितजीके चरण पकड़-  
कर रघुवंशमें उत्पन्न रामचन्द्रजी साथही बैठ गये । बादमें अपने सचिव,  
प्रमुख नागरिक, सैनिक तथा अत्यन्त धर्मनिष्ठ लोगोंके साथ भरतभी बड़े  
भाईके पीछे पामही बैठ गये । आभापूर्ण होनेके कारण जगमगाते हुए राम-  
चन्द्रजीको देखकर शुचिर्भूत होकर इन्द्र जैसे ब्रह्माजीके निकट बैठता है

श्रिया ज्वलन्तं भरतः कृताञ्जलिर्यथा महेन्द्रः प्रयतः प्रजापतिम् ३०  
किमेव धारयं भरतोऽद्य राघवं प्रणम्य सत्कृत्य च साधु वक्ष्यति ।  
इतीव तस्यार्थजनस्य तत्त्वतो बभूव कौतूहलमुत्तमं तदा ३१  
स राघवः सत्यवृतिश्च लक्ष्मणो महानुभावो भरतश्च धार्मिकः ।  
वृताः सुहृद्भिश्च धिरेजिरेऽध्वरे यथा सदस्यैः सहितास्त्रयोऽग्रयः ३२  
इत्यार्षे श्री० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे पञ्चेत्तरगततमः सर्गः ॥ १०५ ॥ [ ३८९५ ]

पञ्चत्तरगततमः सर्गः ।

ततः पुरुषसिंहानां वृत्तानां तैः सुहृद्गणैः ।  
शोचतामेव रजनी दुःखेन व्यत्ययर्तत १  
रजन्यां सुप्रभातायां भ्रातरस्ते सुहृद्गताः ।  
मन्दाकिन्यां हुते जप्यं कृत्वा राममुपागमन् २  
नृणीं ते समुपासीना न कश्चिन्किञ्चिद्वर्षीत् ।  
भरतस्तु सुहृन्मध्ये रामं वचनमवर्षीत् ३  
सान्त्विता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम ।  
तद्वदामि तवैवाहं भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् ४

बैसेही प्रबल प्रराक्रमी भरत हाथ जोड़कर उनके पास बैठ गये । सो देन्त  
वहाँपर इकट्ठे हुए सज्जनोंके दिलमें सचमुच बड़ी उलझटा लगी रही कि  
भला, अब भरत सत्कारपूर्वक तथा प्रणामभी करके रामचंद्रजीसे कौनसा  
अच्छा भाषण करेगा ? अच्छा, सदस्योंके साथ तीन अग्नि जिम प्रकार यज्ञ  
भूमिमें सुहाने लगते हैं, उसी तरह मित्रजनोंसे धिरे हुए वं नीनों ही याने  
मत्स्यनिष्ठ रामचन्द्रजी, महापराक्रमी लक्ष्मण और धर्मनिष्ठ भरत अत्यन्त  
शोभायमान होने लगे (२८-६२)

यहाँ १०५ सर्ग समाप्त हुआ ।

साथियों सहित भरतादि भाइयोंकी वह रात्रि शोक करते हुए बीती ।  
जब प्रातःकाल हुआ तो सब भाई मन्दाकिनीमें नहा होम जपादि कर रामके  
निकट आये । सबके सब मौन थे, कोई कुछ न कहता था, तब भरत राममें  
बोले, 'हे भ्रातः ! आपने मेरी माताका मन्तोष किया तथा मुझको राज्य

महतेषाम्बुवेगेन भिन्नः सेतुर्जलागमे ।	
दुरावरं त्वदन्येन राज्यखण्डमिदं महत्	५
गतिं खर इवाश्वस्य तार्क्ष्यस्येव पतत्रिणः ।	
अनुगन्तुं न शक्तिमै गतिं तव महीपते	६
सुजीवं नित्यशस्तस्य यः परैरुपजीव्यते ।	
राम तेन तु दुर्जीवं यः परानुपजीवति	७
यथा तु रोपितो वृक्षः पुरुषेण विवर्धितः ।	
ह्रस्वकेन दुरारोहो रूढस्कन्धो महाद्रुमः	८
स यदा पुष्पितो भूत्वा फलानि न विदृश्येत् ।	
सतां नानुभवत्प्रीतिं यस्य हेतोः प्ररोपितः	९
एषोपमा महाबाहो तदर्थं चेत्तुमर्हसि ।	
यत्र त्वमस्मान्वृषभो भर्ता भृत्यान्नः शाधि हि	१०
श्रेण्यस्त्वां महाराज पश्यन्त्वद्रयाश्च सर्वशः	
प्रतपन्तमिवादित्यं राज्यस्थितमर्दिदम्	११
तथा नु याने काकुत्स्थ मत्ता नर्दन्तु कुञ्जराः ।	
अन्तःपुरगता नार्यो नन्दन्तु सुसमाहिताः	१२

दिया, पर अब मैं वह आपहीको लौटाये देता हूँ । आपके छोटे हुए इस राज्यका भार आपके बिना मैं नहीं संभाल सकता । हे राम ! जैसे अच्छे घोड़ेकी चाल गदहा नहीं पा सकता, एवं मैं आपकी गतिको नहीं पहुँच सकता । हे राम ! जिस राजाकी सेवा अन्य लोग करने हैं उनका जीना अच्छा होता है । जो राजा औरोंहीकी सेवा करके जीता है, उसका जीना दुःखके साथ है, सुखके नहीं । जैसे किमीने पेड़ लगाया वह बड़ा तो छोटे डीलवाला आदमी उसपर नहीं चढ़ सकता । जब वह पुष्पित हो फलता नहीं है तो फिर वह प्रीतिको नहीं पा सकता, जिसके लिये वह लगाया गया था, इस उपमाको आप अपने राज्यके लिये समझिये और हम छोटे लोगोंके स्वामी बन मित्रलाभ्ये । सिंहासनपर बैठे हुए आपको सूर्यवत् नपते हुए ये प्रजाजन देखें । आपके अयोध्यामें चलनेमें अन्तःपुरमें सब

तस्य साध्वनुमन्यन्त नागरा विविधा जनाः ।	
भरतस्य वचः श्रुत्वा रामं प्रत्यनुयाचतः	१३
तमेवं दुःखितं प्रेक्ष्य विलपन्तं यशस्विनम् ।	
रामः कृतात्मा भरतं समाध्वासयदान्मवान्	१४
नात्मनः कामकारो हि पुरुषोऽयमनीश्वरः ।	
इतश्चेतरतश्चैनं कृतान्तः परिकर्षति	१५
सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।	
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्	१६
यथा फलानां पक्कानां नान्यत्र पतनाद्भयम् ।	
एवं नरस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद्भयम्	१७
यथागारं दृढस्थूणं जीर्णं भूत्वोपसीदति ।	
तथावसीदन्ति नरा जरामृत्युवशांगताः	१८
अत्येति रजनी या तु सा न प्रतिनिवर्तते ।	
यान्येव यमुना पूर्णं समुद्रमुदकार्णवम्	१९
जहोरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह ।	
आयूँषि क्षपयन्त्यागु प्रीप्ते जलमिवांशवः	२०
आत्मानमनुशोच त्वं किमन्यमनुशोचसि ।	

‘स्विया इकट्टी होकर आनन्दित होगी ।’ (१-१२)

रामसे पैसा प्रार्थना करते भरतके ये वचन सुन, सब अथोप्यावासी प्रसन्न हुए । भरतको एवं विलाप करते देग राम समझाने लगे । हे भरत ! यह जीव स्वेच्छाचारी नहीं है, इसको इस लोकसे उग लोकमें तथा उग लोकमें इस लोकमें काल मींचा करता है । मरह की हुई चीजें क्षयान्तक, संयोग वियोगान्तक तथा जीवन मरणान्तक होता है । जीने मनुष्यको मरणक मित्राय और भय नहीं । बड़े बलवान् सुन्दर पुरष भी बुढ़ापा आनेपर मर जाने हैं । जो रात्रि व्यतीत हो जाती है फिर वह नहीं आती, जन्म जो समुद्रमें चला जाता है फिर लौटके नदियोंमें नहीं आता । ये जो रात्रि दिन हुआ करते हैं इन्हींसे सब प्राणियोंकी आयु नाश होती जाती है । (१३-२०)

आयुस्तु हीयते यस्य स्थितस्याथ गतस्य च	२१
सदैव मृत्युर्मजति सह मृत्युर्निर्णीदति ।	
गत्वा सुदीर्घमध्वानं सह मृत्युर्निवर्तते	२२
गात्रेषु बल्यः प्राप्ताः श्वेताश्चैव शिरोरुहाः ।	
जरया पुरुषो जीर्णः किं हि कृत्वा प्रभावयेत्	२३
नन्दन्त्युदित आदित्ये नन्दन्त्यस्तमितेऽहनि ।	
आत्मनो नावबुध्यन्ते मनुष्या जीवितक्षयम्	२४
दृष्यन्त्यृतुमुखं दृष्ट्वा नवं नवमिवागतम् ।	
ऋतूनां परिवर्तेन प्राणिनां प्राणसंक्षयः	२५
यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महार्णवे ।	
समेत्य तु व्यपेयातां कालमासाद्य कंचन	२६
एवं भार्याश्च पुत्राश्च ज्ञातयश्च वसूनि च ।	
समेत्य व्यवधावन्ति ध्रुवो ह्येषां विनाभवः	२७
नात्र कश्चिद्यथाभावं प्राणी समतिवर्तते ।	
तेन तस्मिन् सामर्थ्यं प्रेतस्यास्त्यनुशोचतः	२८
यथा हि सार्थं गच्छन्तं द्रूयात्कश्चित्पथि स्थितः ।	
अहमप्यागमिष्यामि पृष्ठतो भवतामिति	२९

‘तुम आत्माका विचार करो, दूसरोंका क्या करते हो ? यह मृत्यु जीवके संगही आती है, उसके संगही सदा बनी रहती है, जब सब बाल पक गये, बुढ़ापाके कारण देह जर्जर हो गई तब ऐसा पुरुष क्या कर सकेगा ? मनुष्य सूर्यके उदयअस्तसे प्रसन्न होते हैं, पर यह नहीं जानते कि यही उदयास्त हमारी आयुको नष्ट कर रहा है । फिर वसन्तादि ऋतुओंको देख आदमी खुश होते हैं पर यह नहीं जानते कि यह ऋतुओंका परिवर्तन आयुको क्षीण कर रहा है । जैसे समुद्रमें दो नावें साथही डाली जायें, तो कुछ समय तक एक संग रह फिर कोई कहीं और कोई कहीं पहुंच जाती हैं । एवं इस संसारमें न्नी पुत्र भाई बन्धु, आदि एकत्र होके जहाँके तहाँ चले जाते हैं हमेसा साथ नहीं रह सकते । इस संसारमें सुख दुःखादिकोंको कोई प्राण

एवं पूर्वर्गतो मार्गः पितृपैतामहैर्धुयः ।	
तमापन्नः कथं शोचेद्यस्य नास्ति व्यतिक्रमः	३०
ययसः पतमानस्य श्रोतसो दानिवर्तिनः ।	
आत्मा सुखे नियोक्तव्यः सुखभाजः प्रजाः स्मृताः	३१
धर्मात्मा सुशुभैः कृत्स्नैः क्रतुभिश्चाप्तदक्षिणैः ।	
न स शोच्यः पिता तात स्वर्गतः सत्कृतः सताम्	३२
स जीर्णमानुषं देहं परित्यज्य पिता हि नः ।	
दैवीमृद्धिमनुप्राप्तां ब्रह्मलोकविहारिणीम्	३३
तं तु नैवंविधः कश्चित्प्राज्ञः शोचितुमर्हति ।	
त्वद्विधो मद्विधश्चापि श्रुतयान्युद्धिमत्तरः	३४
एते बहुविधाः शोका विलापवदिते तदा ।	
वर्जनीया हि धीरेण सर्वावस्थासु धीमता	३५
स स्वस्थो भव मा शोको यात्या चावस तां पुरीम् ।	
तथा पित्रा नियुक्तोऽसि वशिना वदतां वर	३६
यत्राहमपि तेनैव नियुक्तः पुण्यकर्मणा ।	
तत्रैवाहं करिष्यामि पितुरार्यस्य शासनम्	३७

नहीं मिला सकता । जैसे कोई मनुष्य जा रहा हो और कोई मार्गस्थित मनुष्य कहे कि चलो, पीछे हम भी आवेंगे। एवं पूर्वज चले गये, उस मार्गमें चले जानेका कौन शोक उसमें तो एक दिन जानाही पड़ेगा । (२१-३०)

‘जैसे नदी आदिका जल बहु कर लौट नहीं आता, उसी प्रकार मनुष्यकी गल आयु भी नहीं लौटती और पिताका तो कभी शोक न करना चाहिये । क्योंकि यज्ञोंके करनेके कारण उनका स्वर्गमें भी सम्मान होता होगा । पिता शरीरको छोड़ ब्रह्मलोकमें विहार करते होंगे, इससे तुम्हारे हमारे मनान पंडितोंको पिताका शोक न करना चाहिये । शोक विलाप बुद्धिमान् तथा धीर पुरुषको न करना चाहिये । इससे शोक छोड़ स्वस्थचित्त हो अयोध्यामें जा वास करो, पिताकी आज्ञाका उल्लंघन उचित नहीं । मुझको भी पिताने जहां रहनेकी आज्ञा दी है, वहां रह आज्ञाका पालन करूंगा ।



न मया शासनं तस्य त्यक्तं न्याय्यमरिंदम् ।

स त्वयापि सदा मान्यः स वै बन्धुः स नः पिता ३८

तद्वचः पितुरेवाहं संमतं धर्मचारिणाम् ।

कर्मणा पालयिष्यामि वनवासेन राघव ३९

धार्मिकेणानुशंसेन नरेण गुरुवर्तिना ।

भवितव्यं नरव्याघ्र परलोकं जिगीषता ४०

आत्मानमनुतिष्ठ त्वं स्वभावेन नरर्षभ ।

निशाम्य तु शुभं वृत्तं पितुर्दशरथस्य नः ४१

इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा पितुर्निदेशप्रतिपालनार्थम् ।

यवीयसं भ्रातरमर्थयच्च प्रभुर्मुहूर्ताद्विरराम रामः ४२

इत्यार्षे श्री०वा० आदिकाव्येऽथोव्याकाण्डे षडुत्तरशततमः सर्गः ॥१०६॥ [३९३७]

सप्तोत्तरशततमः सर्गः ।

एवमुक्त्वा तु विरते रामे वचनमर्थवत् ।

ततो मन्दाकिनीतीरे रामं प्रकृतिवत्सलम् १

उवाच भरतश्चित्रं धार्मिको धार्मिकं वचः ।

को हि स्यादीदृशो लोके यादृशस्त्वमरिंदम् २

न त्वां प्रव्यथयेद्दुःखं प्रीतिर्वा न प्रहर्षयेत् ।

संमतश्चापि वृद्धानां तांश्च पृच्छसि संशयान् ३

हम तुम दोनोंको पिताकी आज्ञाका उलंघन करना उचित नहीं । हे भरत ! उससे मैं वनमें रह पिताके वचन पूरे करूँगा । हे भरत ! परलोककी इच्छा करनेवाला पुरुष धार्मिक, सज्जन और सद्गुणवादी होना चाहिये । पिताजी उत्तम नतिको प्राप्त हुए हैं, यह जानकर तुम अपने हितका विचार करो ।' इस प्रकार पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिए कनिष्ठ भाईके साथ भाषण करके वह महात्मा रामचन्द्र चुप बैठा । (३१-४२)

यहाँ १०६ सर्ग समाप्त हुआ ।

जब राम ऐसे वचन कह चुप हो रहे, तो मन्दाकिनीके तट पर स्थित रामने भरत कहने लगे, 'हे राम ! जैसा आप हैं ऐसा इस लोकमें कौन

यथा मृतस्तथा जीवन्व्यथासति तथा सति ।	
यस्यैष बुद्धिलाभः स्यान्परितप्येत केन सः	४
परावरक्षो यश्च स्याद्यथा त्वं मनुजाधिप ।	
स एव व्यसनं प्राप्य न विपीदितुमर्हति	५
अमरोपमसत्त्वस्त्वं महात्मा सत्यसंगरः ।	
सर्वज्ञः सर्वदर्शी च बुद्धिमांसासि राघव	६
न त्वामेवंगुणेषुक्तं प्रभवाभवकोविदम् ।	
अविपश्यतमं दुःखमासादयितुमर्हति	७
प्राप्सते मयि यत्पापं माया मत्कारणात्कृतम् ।	
शुद्रया तदनिष्टं मे प्रसीदतु भवान्मम	८
धर्मयन्त्रेण बद्धोऽस्मि तेनेमां नेह मातरम् ।	
हन्मि तीक्ष्णेण दण्डेन दण्डार्हा पापकारिणीम्	९
कथं दशरथाज्ञातः शुभाभिजनकर्मणः ।	
जानन्धर्ममधर्मं च कुर्यां कर्म जुगुप्सितम्	१०
गुरुः क्रियावान्बुद्धश्च राजा प्रेतः पितेति च ।	
नातं न परिगृह्णं दैवतं चेति संसदि	११
को हि धर्मार्थयोर्हानमीदृशं कर्म किल्बिषम् ।	

होगा ? आपको न तो दुःख व्यथित करता न प्राप्ति हर्षित करती है । आपकी बुद्धि, मृत, जीवित वर्तमान अवर्तमानमे राग द्वेष नहीं करती । हे राजन् ! आपके समान तत्त्वज्ञ दुःखको पाकर विपाद नहीं करते । हे राम ! आप पराकर्मी, महात्मा, सत्यसङ्कल्प, सर्वदर्शी व बुद्धिमान् हैं । सब संसारकी प्रवृत्ति निवृत्तिका ज्ञान आपमें है इससे दुःख आपको नहीं हो सकता । मेरी शुद्र स्वभावकी माताने मेरेही लिये पाप किया उसको मुलाकर आप मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये । धर्ममें बंधे होनेसे पापकारिणी इन अपनी माताको मैं दण्ड नहीं दे सकता । राजा दशरथसे उत्पन्न, धर्मको जानवज्रकर मैं ऐसा अधर्म कैसे करूँ ? (१-१०)

‘क्रियावान् बुद्धास्त्वाको प्राप्त, स्वर्गवायी पितृकी सभाके बीचमें निन्द्रा

हि० १५ (अधोऽया ३.)

स्त्रियः प्रियचिकीर्षुः सन्कुर्याद्वर्मश धर्मवित्	१२
अन्तर्काले हि भूतानि मुद्यन्तीति पुरा श्रुतिः ।	
राज्ञैवं कुर्वता लोके प्रत्यक्षा सा श्रुतिः कृता	१३
साध्यर्थमभिसंधाय क्रोधान्मोहाच्च साहसान् ।	
नातस्य यदतिक्रान्तं प्रत्याहरतु तद्भवान्	१४
पितुर्हि समतिक्रान्तं पुत्रो यः साधु मन्यते ।	
तदपत्यं मतं लोके विपरीतमतोऽन्यथा	१५
तदपत्यं भवानस्तु मा भवान्दुष्टतं पितुः ।	
अति यत्तत्कृतं कर्म लोके धीरविगर्हितम्	१६
कैकेर्यो मां च तातं च सुहृदो बान्धवांश्च नः ।	
पौरजानपदान्सर्वोस्त्रातुं सर्वमिदं भवान्	१७
क चारण्यं क च क्षात्रं क जटाः क च पालनम् ।	
ईदृशं व्याहतं कर्म न भवान्कर्तुमर्हति	१८
एष हि प्रथमो धर्मः अत्रियस्याभिपचनम् ।	
येन शक्यं महाप्राज्ञ प्रजानां परिपालनम्	१९
कश्च प्रत्यक्षमुत्सृज्य संशयस्थमलक्षणम् ।	
आयतिस्त्वं चरेद्धर्मं क्षत्रवन्धुरनिश्चितम्	२०

न कहंगा । हे धर्मज ! स्त्रीका प्रिय करनेकी इच्छासे ऐसा कौन धर्मवान् है जो इस प्रकारका पाप करे ? मरण-नमय मनुष्यकी बुद्धि मोहित हो जाती है, वह राजाने प्रणय कर दिव्वादे । पिताने जो कैकेयिके कोप-मोहसे आपका अभिप्रेक नहीं होने दिया वह क्षमा कीजिये । पिताके अविचारको भी जो श्रेष्ठ समझता है संगारमें पुत्र वही है । इससे आप पिताके अपराधकी ओर दृष्टि न दें । कैकेयी, मेरी, पिता, बन्धुओंकी व पुरवासी देशवासियोंकी आप रक्षा करें । कहा तो बन्धुत्व कहा क्षात्रधर्म, कहा जटा और कहा प्रजापालन इन विपरीत कार्योंको आप न कीजिये । अत्रियका पहिला कार्य है कि वह प्रजा पालन करे । ऐसा बौन होगा कि जो प्रणय सर्व सुसद् कार्योंको छोड़ अनिश्चित कार्योंको करेगा ? (११-२०)

अथ क्लेशमेव त्वं धर्मं चरितुमिच्छसि ।	
धर्मेण चतुरो वर्णान्पालयन्क्लेशानानुहि	२१
चतुर्गर्भानाशनापां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठनुत्तमम् ।	
आधुर्धर्मज्ञ धर्मशास्त्रं कथं त्यस्तुमिच्छसि	२२
श्रुतेन बालः स्थानेन जन्मना भवनो ह्यहम् ।	
स कथं पालयिष्यामि भूमिं भवति तिष्ठति	२३
हीनगुह्येगुणो धान्यो हीनस्थानेन चाप्यहम् ।	
भवता च विना भूतो न वर्तयितुमुन्तहे	२४
इदं निखिलमन्यन्त्यं राज्यं पित्र्यमकण्ठकम् ।	
अनुराधि स्वधर्मेण धर्मज्ञः सह बान्धवैः	२५
इहैव त्याभिनिश्चन्तु सर्वाः प्रकृतयः सह ।	
कृत्रिजः सवसिष्ठाश्च मन्त्रविन्मन्त्रकोविदाः	२६
अभिषिक्तस्त्वमस्माभिरयोध्यां पालने ब्रज ।	
विजित्य तरसा लोकान्नरद्विरेव वासवः	२७
ऋणानि प्राणदशकुर्वन्नुर्हदः साधु निदहन् ।	
सुहृदस्तपेयन्कानैस्त्वमेयावानुराधि माम्	२८
अथायं मुदिताः सन्तु सुहृदस्तेऽभिप्रेक्षते ।	
अद्य मीनाः पलायन्तु दुष्पदास्ते दिशो दश	२९

‘आप तो क्लेशसे बन्धव हुए धर्मको करनेकी इच्छा कर रहे हैं, हमने चारों वर्गोंका पालन कर क्लेश मइन कीजिये, सब आश्रमोंमें दृढस्थ आश्रम श्रेष्ठ है, आप हमने जो करनेकी क्यों इच्छा करते हैं? मैं आपसे विद्या और अश्वत्थामों जोग होनेमें आपके होने भूमिका पालन कैसे कर सकूंगा? मैं आपके दिना जीवनकी भी इच्छा नहीं करता फिर मुझसे प्रजाका पालन कैसे होगा? आप बन्धु बान्धवों सहित निताके राज्यका धर्मपूर्वक पालन कीजिये, यहाँ कनिष्ठ सहित पुत्रोहित व कृत्रिजगण आपका अभिप्रेक्ष कर दें। कनिष्ठ होनेके पीछे हम लोगों सहित अश्वमेधा पालन करनेको क्षीये । शत्रुओंका नगर व सुहृदोंका पालन करने मुझको मेरेक बनाकर राज

आक्रोशं मम मातुश्च प्रमृज्य पुरुषर्षभ ।

अद्य तत्रभवन्तं च पितरं रक्ष किंलिपात् ३०

शिरसा त्वाभियाचेऽहं कुरुष्व कुरुणां मयि ।

वान्धवेषु च सर्वेषु भूतं धिक् महेश्वरः ३१

अथवा पृष्ठतः कृत्वा वनमेव भवानितः ।

गमिष्यति गमिष्यामि भवता सार्धमप्यहम् ३२

तथाभिरामो भरतेन तान्यता प्रसाधमानः शिरसा महीपतिः ।

न चैव चक्रे गमनाय सत्त्ववान्मर्ति पितुस्तद्वचने प्रतिष्ठितः ३३

तदद्भुतं स्थैर्यमवेक्ष्य राघवे समं जनो हर्षमवाप दुःखितः ।

न यात्ययोध्यामिति दुःखितोऽभवत्स्थिरप्रतिज्ञत्वमवेक्ष्य हर्षितः ३४

तमृत्विजो नैगमयूथवल्लभास्तथा विसंज्ञाश्रुकलाश्च मातरः ।

तथा वृषाणं भरतं प्रतुष्टुवुः प्रणम्य रामं च ययाचिरे सह ३५

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदिकव्येऽयोध्याकाण्डे सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥१०७॥

अष्टोत्तरशततमः सर्गः ।

[ ३१५२ ]

पुनरेवं वृषाणं तं भरतं लक्ष्मणाग्रजः ।

कीजिये, आपके अभिप्रेक्षित मित्रगण आज नानन्दित हों तथा शत्रुजन भय-  
भीत हों । हे पुरुषश्रेष्ठ ! मेरी माताकी निन्दाको दूर कीजिये तथा पिताकी  
भी पापसे रक्षा कीजिये । मैं आपके चरणोंपर शिर धर कर यह मांगता हूँ  
कि मेरे ऊपर दया कीजिये । यदि मेरी प्रार्थनाको न मान आप वनको चले  
जायेंगे तो मैं भी आपके पीछे पीछे चलूंगा ।' (२१-३२)

इस प्रकारकी भरतकी प्रार्थना सुनकरभी पिताकी आज्ञा नानकर अयोध्या  
लौट जाना रामने मनमेंभी नहीं सोचा । नव रामचंद्रका वह बलौकिक धैर्य  
देखकर वहाँ स्थित दुःखी लोगोंकोभी हर्ष हुआ । राम अयोध्या नहीं आता,  
इससे उन्हें शोक हुआ और उसकी दृढ़ प्रतिज्ञा देखके उन्हें हर्षभी हुआ ।  
तब ऋत्विज, नागरिक लोगोंके मुखिया और दुःखी माताओंने भरतकी  
प्रशंसा की और अयोध्या वापस आनेके लिए प्रणामपूर्वक रामकी प्रार्थना  
की । (३३-३५) यहाँ १०७ सर्ग समाप्त हुआ ।

प्रत्युवाच ततः धीमाञ्जानिमध्ये सुसत्कृतः	१
उपपन्नमिदं वाक्यं यस्त्वमेवमभाषथाः ।	
जातः पुत्रो दशरथात्कैकेय्यां राजसत्तमात्	२
पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्रहन् ।	
मातामहे समाश्रौषीद्राज्यशुल्कमनुत्तमम्	३
देवासुरे च संग्रामे जनन्यै तव पार्थिवः ।	
संप्रहृष्टो ददौ राजा वरमाराधितः प्रभुः	४
ततः सा संप्रतिश्राव्य तव माना यशस्विनी ।	
अयाचत नरश्रेष्ठं द्वौ वरौ वरवर्षिणी	५
तव राज्यं नरव्याघ्र मम प्रवाजनें तथा ।	
तच्च राजा तथा तस्यै नियुक्तः प्रददौ वरम्	६
नेन पित्राहमप्यत्र नियुक्तः पुरुषर्षभ ।	
चतुर्दश वने वासे वर्षाणि वरदानिकम्	७
सोऽहं यन्मिदं प्राप्तो निर्जनं लक्ष्मणान्वितः ।	
मीतया चाप्रतिद्वन्द्वः सत्यवादे स्थितः पितुः	८
भवानपि तथेत्येव पितरं सत्यवादिनम् ।	
कर्तुमर्हसि राजेन्द्र क्षिप्रमेवाभिपिञ्चनात्	९

एवं कहते हुए भरतसे श्रीराम फिर कहने लगे- 'हे भरत ! जो तुम कहते हो सब ठीक है । तुमभी दशरथ व कैकेयीसे उत्पन्न हुये हो । पिता जन तुम्हारी माताको व्याहृत गये थे तो तुम्हारे नानासे यह प्रतिज्ञा कर जाने थे कि तुम्हारी कन्यासे जो पुत्र होगा उसीको मैं राज्य दूंगा । राजाने प्रसन्न हो देवासुर-संग्राममें तुम्हारी माताको दो वर दान देनेको कहे थे इसीसे तुम्हारी माताने महाराजसे दो वर मांगे । एक वरसे तुमको राज्य मिलना और दूसरेसे हमको वनमें रहना भांगा । इसीसे पिताने मुझको चौदह वर्षका वनवास दिया । इसीसे मैं पिताके वचन मान्य करनेको इस निर्जन वनमें आया हूँ । अब तुमभी राज्याभिषेक कराके पिताको मान्यवादी करो । राजा होकर इस ऋणसे पिताका उद्धार करो व माताकोभी आन-

ऋणान्मोक्षय राजानं मत्कृते भरत प्रभुम् ।	
पितरं त्राहि धर्मज्ञ मातरं चाभिनन्दय	१०
श्रूयते धीमता तात श्रुतिर्गीता यशस्विना	
गयेन यजमानेन गयेष्वव पितृन्प्रति	११
पुत्रान्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः ।	
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः पितृभ्यः पाति सर्वतः	१२
एष्टव्या बहवः पुत्रा गुणवन्तो बहुधुताः ।	
तेषां वै समवेतानामपि कश्चिद्भयां प्रजेत्	१३
एवं राजर्षयः सर्वे प्रतीता रघुनन्दन ।	
तस्मात्त्राहि नरश्रेष्ठ पितरं नरकात्प्रभो	१४
अयोध्यां गच्छ भरत प्रकृतीरुपरज्य ।	
शत्रुघ्नसहितो वीर सह सर्वैर्हिजातिभिः	१५
प्रवेक्ष्ये दण्डकारण्यमहमप्यविलम्बयन् ।	
आभ्यां तु सहितो वीर वैदेह्या लक्ष्मणेन च	१६

त्वं राजा भरत भव स्वयं नराणां धन्यानामहमपि राजराजमृगाणाम्  
गच्छ त्वं पुरवरमद्य संप्रहृष्टः संहृष्टस्त्वहमपि दण्डकान्प्रवेक्ष्ये १७  
छायां ते दिनकरभाः प्रवाधमानं वर्षत्रं भरत करोतु मूर्ध्नि शीताम् ।  
एतेषामहमपि काननद्रमाणां छायां तामतिशयनीं शनैः श्रयिष्ये १८

न्दित करो । (१-९)

‘हे भरत ! राजा गयने गयामें जाकर पितरोंसे जो यशस्विनी श्रुति कही है वह इस प्रकार है कि जिससे पुत्रान्न नरकसे बेटा पिताकी रक्षा करता इसीसे वह पुत्र कहलाता है । इसीसे बहुतसे गुणवान् बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न करना चाहिये जिससे उनमेंसे कोई तो गयामें जा श्राद्ध करेगा । इस बात पर सब राजाओंने विश्वास किया है, इससे तुम नरकसे पिताकी रक्षा करो । शत्रुघ्न सहित अयोध्यामें जा प्रजाका पालन करो । और मैं भी लक्ष्मण सीता समेत जल्द ही दण्डकारण्यको जाऊंगा । हे भरत, सूर्यकिरणोंकी निवारण करनेवाला छत्र तेरे सिरपर शीतल छाया धरे और मैं भी वन-

शत्रुघ्नस्त्वतुलमतिस्तु ते सहायः सैमिभिर्मम विदितः प्रधानमित्रम्  
चत्वारस्तनयवरा वय नरेन्द्रं सत्यस्थं भरत चराम मा विपीद १९  
इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिनाभ्येऽयोध्याकाण्डे अष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥१०८॥

नवोत्तरशततमः सर्गः ।

[१९९१]

आश्वासयन्तं भरतं जायालिप्रीहणोत्तमः ।

उवाच रामं धर्मज्ञ धर्मप्रेतमिदं वचः १

साधु राघव मा भूते वद्विरेवं निरर्थिका ।

प्राकृतस्य नरस्येव धार्यबुद्धेस्तपस्विनः २

कः कस्य पुरुषो बन्धुः किमाप्यं कस्य केनचित् ।

एको हि जायते जन्तरेक एव दिनश्यति ३

तस्मान्माता पिता चेति राम सज्जेत यो नरः ।

उन्मत्त इव स शयो नास्ति कश्चिद्धि कस्यचित् ४

यथा ग्रामान्तरं गच्छन्नरः कश्चिद्वा द्विर्वसेत् ।

उत्सृज्य च तमावासं प्रतिष्ठेतापरेऽहनि ५

एवमेव मनुष्याणां पिता माता गृह वसु ।

आवासमात्रं काकुत्स्थ सज्जन्ते नात्र सज्जनाः ६

बुद्धौरी घन छायाझ आधाय करता हू । महामति शत्रुघ्न तेरा मित्र है और  
मुनिप्रापुत्र लक्ष्मण मेरा मित्र है । हे भरत, हम चारों पुत्र मिलकर महा-  
राज दशरथकी प्रतिज्ञा सफल करेंगे । तुम रोद न करो।' (११-१९)

यहाँ १०८ सर्ग समाप्त हुआ ।

भरतको एवं समझाने हुए रामने द्विजश्रेष्ठ जामलि बोले— 'हे राम !  
जान जैसे श्रेष्ठ बुद्धिवाले व तपस्वीरी बुद्धि निरर्थक न होवे । देखिये !  
प्राणी एक ही तो उत्पन्न होता फिर अकेले ही चलाभी जाता है, तब  
किसने किसीको कौन वस्तु देा ? सो यह सब व्यग्रद्वार निरर्थक है । हे  
राम ! यह मेरी माता, यह मेरा पिता है ऐसा मान जो संग्रारमें फँसता  
है, उसको पागलता समझना चाहिये । जैसे कोई यात्री कहींको चलाता  
है तो बीचमें किसी स्थानपर टिका रहता है और प्रातःकाल उम स्थानको



पित्र्यं राज्यं समुत्सृज्य स नार्हसि नरोत्तम ।	
आस्थातुं कापथ दुःखं विषम बहुकण्टकम्	७
समुद्धायामयोध्यायामात्मानमभिषेच्य ।	
एकवर्णीधरा हि त्वां नगरीं संप्रतीक्षते	८
राजभोगाननुभवन्महार्हान्पार्थिवात्मज ।	
विहर त्वमयाध्यायां यथा शक्रस्त्रिविष्टपे	९
न ते कश्चिदशरथस्त्वं च तस्य न कश्चन ।	
अन्यो राजा त्वमन्यस्तु तस्मात्कुरु यदुच्यते	१०
वीजमात्रं पिता जन्तोः शुक्रं शोणितमेव च ।	
संयुक्तमृतमन्मात्रा पुरुषस्येह जन्म तत्	११
गतः स नृपतिस्तत्र गन्तव्यं यत्र तेन वै ।	
प्रवृत्तिरेपर भूतान्तरं न्वं तु मिथ्या विहन्यसे	१२
अर्थं धर्मपरा ये ते तांस्तद्गोचामि नेतरान् ।	
ते हि दुःखमिह प्राप्य विनाशं प्रेत्य लेभिरे	१३
अष्टकापितृदेवन्यमित्ययं प्रसृतो जनः ।	
अन्नस्योपद्रवं पश्य मृतो हि किमशिष्यति	१४

छोट आगेको चला जाता है । एवं मनुष्योंके पिता, माता, घर, धन आदि एकसंग रहनेके लिये स्थानमात्र है । हे नरोत्तम ! पिताका राज्य छोड़ बहुत दुःखदायी वनमें बसनेके योग्य आप नहीं हैं । अयोध्यामें जाकर अपना अभिषेक कराइये, क्योंकि समस्त अयोध्या आपकी प्रतीक्षा कर रही है । बहुमूल्य भोगोंको भोगते हुए आप अयोध्यामें विहार करें । न तो गुन्हारे कोई दशरथ हैं न तुम कोई दशरथहीके हो, राजा तो कोई और हैं और तुम-और हो, जो मैं कहता हूँ सो करो । (१-१०)

‘प्राणीके उत्पन्न होनेके विषयमें पिता वीजमात्र है । जहाँको जाता था राजा वहाँ चले गये, तब आप व्यर्थ दुःखित होते हैं । जो लोग अर्थ धर्मके संग्रह करनेमें परिश्रम कर रहे हैं, मुझे उनका बड़ा दुःख है । जो लोग आनादि करना आवश्यकीय समझते हैं, वह माने अन्नही खराब करते हैं,

यदि भुक्तमिहान्येन देहमन्यस्य गच्छति ।  
 दद्यात्प्रथमतां धाद्वं न तत्पथ्यशनं भवेत् १५  
 दानसंवनना ह्येते ग्रन्था मेघाधिमिः कृताः ।  
 यजम्य देहि दीक्षस्य तपस्तप्यस्य संत्यज १६  
 न नाग्नि परमिन्येतत्कुरु बुद्धिं महामते ।  
 प्रत्यञ्जं यत्तदातिष्ठ परोक्षं पृष्ठतः क्षुर १७  
 सतां बुद्धिं पुरस्कृत्य सर्वलोकादिदर्शिनीम् ।  
 राज्यं न त्वं निगृह्णीष्य भरतेन प्रसादितः १८

इत्यार्षे श्रीन० बा० आदिनाथेऽथो याज्ञपते नरोत्तरशततमः मर्गः ॥१०९॥

दशोत्तरशततमः मर्गः ।

[४००९]

सावालेस्तु वचः श्रुत्वा रामः सत्यपराक्रमः ।  
 उवाच परया मूक्या बुद्ध्या विप्रनिपतया १  
 भवान्मम प्रियकामार्थं वचनं यदिहेतवान् ।  
 अकार्यं कार्यसंकाशमपथ्यं पथ्यसन्निभम् २  
 निर्मर्यादस्तु पुरुषः पापाचारसमन्वितः ।  
 मानं न लभते नन्तु भिन्नचारिचर्चनः ३

पर्योकि मर जानेपर कौन भोजन करता है ? यदि अन्यका किया हुआ भोजन अन्यको प्राप्त होता हो तो विदेश जानेवालोंको धाद्वद्वारा अन्न पहुँचाना चाहिये, उन्हें अन्न पकानेकी कोढ़ें आपश्यकता नहीं । जो मेरे वचन लिये है कि यज्ञ करो, दान दो, घरमें अग्नादि भरके संकल्प करो, दैत्यभूजन तथा तप करो, बुद्धिमान् लोगोंने धन मिलनेके लिये बना लिये हैं । हे रामचन्द्र ! इससे इस बुद्धिको ठोड प्रत्यक्षमें सुगदायक राज्यको ग्रहण करो । सब लोकोंने दिग्गजानेवाली पण्डित लोगोंकी बुद्धिको आगे कर भरतकी विनिति मान राज्य स्वीकार करो ।' (११-१८)

यहाँ १०९ मर्ग समाप्त हुआ ।

जायालिके ऐसे वचन सुन राम वेदानुसूल वास्य बोले कि ' आपने जो मेरे प्रियके लिये ऐसे वचन कहे हैं, वे सब अज्ञानप्य होनेपरभी कर्तव्य तथा

कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम् ।  
 चारित्र्यमेव व्याख्याति शुचिं वा यदि वाशुचिम् ४  
 धनार्यस्त्वार्यसंस्थानः शौचाद्धीनस्तथा शुचिः ।  
 लक्षण्यवदलक्षण्यो दुःशीलः शीलवानिव ५  
 अधर्मं धर्मवेपेण यद्यहं लोकसंकरम् ।  
 अभिपत्स्ये शुभं हित्वा क्रिया विधिविवर्जिताम् ६  
 कश्चेतयानः पुरुषः क्षार्याकार्यविचक्षणः ।  
 बहु मन्येत मां लोके दुर्वृत्तं लोकदूषणम् ७  
 कस्य यास्याम्यहं वृत्तं केन वा स्वर्गमाप्नुयाम् ।  
 अनया वर्तमानोऽहं वृत्त्या हानिप्रतिज्ञया ८  
 कामवृत्तोऽन्वयं लोकः कृत्स्नः समुपवर्तते ।  
 यद्वृत्ताः सन्ति राजानस्तद्वृत्ताः सन्ति हि प्रजाः ९  
 सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम् ।  
 तस्मात्सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः १०  
 ऋषयश्चैव देवाश्च सत्यमेव हि मेनिरे ।  
 सत्यवादी हि लोकेऽस्मिन्परं गच्छति चाक्षयम् ११

अपथ्य होनेपर भी पथ्य जान पड़ते हैं । जो पुरुष मर्यादा रहित होते हैं वे सज्जनों के समाज में जादर नहीं पाते हैं । कुलीन, अकुलीन, वीर, डरपोक, पवित्र तथा अपवित्र पुरुष अपने आचरण ही से जान पड़ता है । वेदानुद्धृत न चलने पर अनार्य अच्छे मनुष्य, अर्शाच, पवित्रलक्षणहीन लक्षणवाले तथा दुर्दशील शीलवान् कहलावेंगे । यदि शुभ क्रिया को छोड़ वेदवर्जित क्रिया मैं कहूँ तो अधर्म करूँ । जब मैं दूषित दुराचार करूँगा, तो कौन पुरुष मुझको श्रेष्ठ मानेगा ? यदि मैं इस प्रतिज्ञाहीन वृत्ति में वर्तमान हुआ तो फिर किससे अपना समाचार कहूँगा, तथा स्वर्ग को कैसे जाऊँगा ? जो मैं स्वेच्छापूर्वक कार्य करूँ तो मेरी देखादेखी यह संसार अपना मनमाना करने लगे । सत्य कूर नहीं कहलाता, तथा सत्य ही सनातन राज्य है व सत्य ही पर लोक स्थित है । (१-१०)

उद्धिजन्ते यथा सर्पाश्चिरादनृतवादिनः ।	
धर्मः सत्यपरो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते	१२
सत्यमेवेश्वरो लोके सत्यं धर्मः सदाश्रितः ।	
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्	१३
दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तर्पांसि च ।	
वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात्सत्यपरो भवेत्	१४
एकः पालयते लोकमेकः पालयते कुलम् ।	
मज्जत्येको हि निरत्य एकः स्वर्गे महोच्यते	१५
सोऽहं पितुर्निदेशं तु किमर्थं नानुपालये ।	
सत्यप्रतिश्रवः सत्यं सत्येन समयीकृतम्	१६
नैव लोभाच्च मोहाद्वा न चाज्ञानात्तमोऽन्वितः ।	
सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरोः सत्यप्रतिश्रवः	१७
असत्यसंघस्य सतश्चलस्यास्थिरचेतसः ।	
नैव देवा न पितरः प्रतीच्छन्तीति नः श्रुतम्	१८
प्रत्यगात्मनिमं धर्मं सत्यं पश्याम्यहं ध्रुवम् ।	
भारः सत्पुरुषैर्ध्वीर्णस्तदर्थमभिनन्द्यते	१९
क्षात्रं धर्ममहं त्यक्ष्ये ह्यधर्मं धर्मसंहितम् ।	

‘ऋषि देवतालोक भी सत्यहीको मानते चले आये हैं। सत्यवादी पुरुषही अक्षय स्वर्गलोकको पाता है। शूरे मनुष्यसे लोग सर्पके समान डरते हैं। सब संसारका मूल सत्यपराही स्थित है। लोकमें सत्यही ईश्वर है तथा सत्यमें ही सदा धर्म रहता है, सत्यही सबकी जड़ है, सबसे बढकर और कुछ नहीं है। दान, इष्ट, होम, तपस्या तथा वेद सब सत्यहीमें स्थित हैं। एकही लोककी और एकही कुलकी रक्षा करता है, एकही नरकमें डूबता है और अकेलाही स्वर्गमें पूजित होता है। फिर मैं सत्यप्रतिज्ञ पिता-की आज्ञाका क्यों न पालन करूं ? मैं लोभ, मोह तथा क्रोधसे मयका सेतु न तोड़ूंगा। शूड बोलनेवालेका दिया हव्य कव्यादि देवता व पितरगण नहीं लेते। सत्यरूप इस धर्मको मैं सब प्रकारसे निश्चित रूपेण जानता हूं।

अनुद्वन्द्वं शैलुर्वैश्वं सेवितं पापकर्मभिः	२०
कायेन कुरुते पापं मनसा संप्रधार्य तत् ।	
अनृतं जिह्वया चाह त्रिविधं कर्म पातकम्	२१
भूमिः कीर्तिर्यशो लक्ष्मीः पुरुषं प्रार्थयन्ति हि ।	
सन्त्यं समनुवर्तन्ते सन्त्यमेव भजेत्ततः	२२
श्रेष्ठं ह्यनार्यमेव स्याद्यज्ञवानवधार्य माम् ।	
आह युक्तिकरैर्वान्यैरिदं भद्रं कुरुष्व ह	२३
कथं द्यौं प्रतिज्ञाय वनवासमिमं गुरोः ।	
भरतस्य करिष्यामि वचो हित्वा गुरोर्वचः	२४
न्यिरा मया प्रतिज्ञाता प्रतिज्ञा गुरुसंनिधौ ।	
प्रहृष्टमानसा देवी कैकेयी चाभवत्तदा	२५
वत्तवान् वनक्षेत्रं शुचिर्नियतसेजनः ।	
मूलपुष्पफलैः पुण्यैः पितृन्देवांश्च तर्पयन्	२६
संतुष्टपञ्चवर्गोऽहं लोकयात्रां प्रदाह्ये ।	
अकुहः श्रद्धधानः सन्कार्याकार्यविचक्षणः	२७
कर्मभूमिमिमां प्राप्य कर्तव्यं कर्म यच्छुभम् ।	
अग्निवायुश्च सोमश्च कर्मणां फलभागिनः	२८

मैं उस क्षाप्रधर्मको जो दान्तदमें अधर्मरूप है त्यागता हूँ । (११-२०)

‘लोडमें तीन प्रकारका पाप होता है काचिक, मानसिक तथा वाचिक। जो लोग नान्य बोलते हैं उनकी प्रार्थना नृनि, कीर्ति, यज्ञ, लक्ष्मी, आदि करते हैं। यह जो तुमने कहा कि राज्य करो, इसका करनाही श्रेष्ठ है, यह अनापों-कासा वाक्य है। मैं पिताके आगे जो प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, उसका तिरस्कार कर भरतकी बात कैसे मानूँ ? जब मैंने पिताके आगे दृढ़ प्रतिज्ञा की थी तब कैकेयी भी बहुत प्रसन्न हुई थी। अतएव वनमें वास कर पवित्रचित्त रह पुष्प फलादि खाकर देवता पितरोंका तर्पण करता हुआ, कपटशून्य हो गुरुवचनमें धृढा रत्नता हुआ पिताकी आज्ञाका पालन करता रहूँगा। इस कर्मभूमिको प्राप्त होकर इसमें शुभही कर्म करना चाहिये। देखो १०० अश्व-

शतं क्रतूनामाहृत्य देवराद् त्रिदिवं गतः ।

तपांस्युग्राणि चास्थाय दिवं प्राप्ता महर्षयः २०

अमृत्यमाणः पुनरुग्रतेजा निशम्य तन्नास्तिक्याप्यहेतुम् ।

अथाग्रवीक्षत् नृपतेस्तनूजां विगर्हमाणो वचनानि तस्य २०

सत्यं च धर्मं च पराक्रमं च भूतानुकम्पां प्रियवादितां च ।

द्विजातिदेवातिथिपूजनं च पन्थानमाहुस्त्रिदिवस्य सन्तः २१

तेनैवमाज्ञाय यथावदर्धमेकोदयं संप्रतिपद्य विप्राः ।

धर्मं चरन्तः सकलं यथायत्काङ्क्षन्ति लोकागममप्रमत्ताः २२

निन्दाभ्यर्हं कर्म कृतं पितुस्तद्यस्त्वामगृह्णाद्विषमस्थबुद्धिम् ।

बुद्धयानयैवंविधया चरन्तं सुनास्ति कं धर्मपथादपेतम् २३

यथा हि चोरः स तथा हि बुद्धस्तथागतं नास्ति कर्मत्र विद्धि ।

तस्माद्वि यः शक्यतमः प्रजानां स नास्तिकेनाभिमुखो बुधः स्यात् २४

मेधयज्ञ करनेसे इन्द्र न्याये राजा बन सके तथा कठोर तप कर ऋषिगण स्वर्गको प्राप्त हुए ।' (२१-२९)

नास्तिकभावसे परिपूर्ण भाषण करनेहारे जाबालीकी यह वक्तृता सुनकर उस उग्र तेजवाले राजपुत्र रामचन्द्रजीको यह घरघाँसत करना असंभव हुआ और उस कथनका खंडन करते हुए वे कहने लगे— 'देखो भाई' साधुपूजन एवं सन्तोंका कथन है कि सत्य, धर्म, पराक्रम, भूतदया, प्रियवादिता, एवं ब्राह्मण, देव तथा अतिथिरी पूजासेही स्वर्गपथका सृजन होता है; इस सन्तजन-प्रतिपादनके अनुसार मुख्य फलप्रद धर्मके स्वरूपको यथावत् जानकर निश्चयपूर्वक एवं ध्यानपूर्वक उस धर्मका भली प्रकार आचरण करनेहारे विप्र उत्कृष्ट लोक पहुँचनेकी लालसा रगते हैं। अब चूँकि मेरे पिताजीने आप जैसे पक्के नास्तिक, धर्ममार्गके खिलाफ तथा वेदविरुद्ध भावसे पूर्ण इस तरहका मंतव्य धारण कर भूमंडलपर लोकनाशके लिये भ्रमण करनेहारेको याजकनी हैमियतसे स्वीकृत किया था, सो मेरी रायमें यज्ञ निन्दनीय कर्म था । (३०-३३)

'जिम तरह चोर होते हैं वैसेही बौद्धमनगटे होते हैं, ऐसा समझना ठीक

त्यक्तो जनाः पूर्वतरे द्विजाश्च शुभानि कर्माणि बहूनि चक्रुः ।  
 छित्त्वा सदेमं च परं च लोकं तस्माद्विजाः स्वस्ति कृतं हुतं च ३५  
 धर्मं रताः सत्पुरुषैः समेतास्तेजस्विनो दानगुणप्रधानाः ।  
 अहिंसका वीतिमलाश्च लोके भवन्ति पूज्या मुनयः प्रधानाः ३६  
 इति ब्रुवन्तं वचनं सदीपं रामं महात्मानमदानसत्त्वम् ।  
 उवाच पथ्यं पुनरास्तिकं च सत्यं वचः सानुनयं च विप्रः ३७  
 न नास्तिकानां वचनं ब्रवीम्यहं न नास्तिकोऽहं न च नास्ति किंचन  
 समीक्ष्य कालं पुनरास्तिकोऽभवं भवेय काले पुनरेव नास्तिकः ३८  
 स चापि कालोऽयमुपागतः शनैर्यथा मया नास्तिकवागुद्गीरिता ।  
 निवर्तनार्थं तव राम कारणात्प्रसादनार्थं च भवैतदीरितम् ३९  
 इत्यार्षं श्रीमद्रा.वा. आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११० ॥ [ ४०४८ ]

हे और तथागतको नास्तिक मानना उचित है । इसी कारणसे जिस विद्वान्को हो सके वह कडेसे कडा दण्ड नास्तिकको दिलवाये और वैसे नहीं हुआ तो वैसे नास्तिकके सामने खडातक न रहे । आप ध्यानमें रखियेगा कि आपसे भी अपेक्षाकृत ज्यादाही श्रेष्ठ लोगोंने और द्विजोंने ऐहिक तथा पारलौकिक फलकी चाह न रखते हुए बहुतसे शुभ कर्म किये हैं । इसी कारण, वेद-प्रामाण्य मानकर जो द्विज अहिंसा सत्य वगैरह तप, दान, परोपकार जैसे यज्ञमें लगे रहते हैं, वे धर्मनिष्ठ, दानशूर, अहिंसक, निष्कलंक तथा सबनोंके सहवासमें रसमाण होनेवाले उच्च कोटिके मुनि लोगही जनतामें सम्माननीय पदपर चढते हैं । आप जैसे नास्तिक नहीं ।' (३४-३६)

जब इस भाँति उदार महात्मा रामचंद्रजी जावालीसे कुत्सामय भाषण कर रहे थे, तब वह ब्राह्मण जावाली फिर एकवार अच्छे अर्थसे युक्त, वास्तिकमय सत्य भाषण करने लगा— 'मैं नास्तिकोंको भापा बोलनेवाला नहीं हूँ और मैं कोई नास्तिक थोड़ेही हूँ ? मेरी ऐसी राय नहीं है कि पर-शोक जैसे कोई चीज है ही नहीं । मौका देखकर मैं फिरसे धार्मिक बन गया हूँ और वैसा कोई दूसरा अवसर आ जाये तो पुन नास्तिक बनूँगा । धीरे धीरे वैसा समय आ चुका था, इसलिये मैंने तुझे वनवापसे लौटकर नगरीमें

एकादशोत्तरशततमः सर्गः ।

क्रुद्धमाशाय रामं तु वसिष्ठः प्रत्युवाच ह ।  
 जावालिरपि जानाति लोकस्यास्य गतागतिम् १  
 निवर्तयितुकामस्तु न्यामेतद्वाक्यमब्रवीत् ।  
 इमां लोकसमुत्पत्तिं लोकनाथ निबोध मे २  
 सर्वं सलिलमेवासीत्पृथिवी तत्र निर्मिता ।  
 ततः समभवद्ब्रह्मा स्वयंभूदैवतैः सह ३  
 स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुंधराम् ।  
 असृजच्च जगत्सर्वं सह पुत्रैः कृतात्मभिः ४  
 आकाशप्रभयो ब्रह्मा शाश्वतो नित्य अज्ययः ।  
 तस्मान्मरीचिः संजज्ञे मरीचेः कश्यपः सुतः ५  
 विवस्वान्कश्यपान्जज्ञे मनुर्वैवस्वतः स्वयम् ।  
 स तु प्रजापतिः पूर्वमिक्ष्वाकुस्तु मनोः सुतः ६  
 यस्येयं प्रथमं दत्ता समृद्धा मनुना मही ।  
 तमिक्ष्वाकुमयोध्यायां राजानं त्वद्धि पूर्वकम् ७  
 इक्ष्वाकोस्तु सुतः श्रीमान्कृक्षिरित्येव विद्युतः ।

जानेको प्रवृत्त करनेके हेतुसे नार्त्तिकतामय भाषण दिया और अब तुम्हें प्रसन्न करनेके लिए मैं इस भाँति कह रहा हूँ ।' (३७-३९)

यहाँ ३१० सर्ग समाप्त हुआ ।

रामको क्रुद्ध हुआ जान कृष्णगुरु वसिष्ठ बोले- 'हे राम ! जावालि भी लोककी गति जानते हैं । आपको लौटानेके लिये इन्होंने ऐसी बातें कहीं हैं। अब लोककी उत्पत्ति सुनिये । सबसे प्रथम जलही जल था, उसपर पृथिवी निर्मित का गई । तब देवताओंके साथ ब्रह्मा उत्पन्न हुए । तदनु पिप्पु वराहका रूप धरके जलके बीचसे पृथ्वी निकाल लाये, तब ब्रह्माने सब संसार बनाया । ब्रह्माकी उत्पत्ति आकाशमे है । ब्रह्माके पुत्र मरीचि, मरीचिके कश्यप, कश्यपके विवस्वान् विवस्वान्मे वैवस्वतमनु, उनके सबसे बड़े पुत्र इक्ष्वाकु थे । इनको मनुने ममन्त पृथ्वी दे दी, इसीसे यहाँ अयोध्याके प्रथम राजा हुए । इक्ष्वाकुके



कुक्षेरथात्मजो वीर विकुक्षिरुदपद्यत	८
विकुक्षेस्तु महातेजा बाणः पुत्रः प्रतापवान् ।	
बाणस्य च महाबाहुरनरण्यो महातपाः	९
नानावृष्टिर्बभूवासिद्ध दुर्भिक्षः सतां चरे ।	
अनरण्ये महाराजे तरुणो वापि कश्चन	१०
अनरण्यान्महाराज पृथू राजा पभूव ह ।	
तस्मात्पृथोर्भहातेजास्त्रिशङ्करुदपद्यत	११
स सत्यवचनाद्दीरः सशरीरो दिवं गतः ।	
त्रिशङ्कोरभवत्सुनुर्धुन्धुमारो महायशः	१२
धुन्धुमारान्महातेजा युवनाश्वो व्यजायत ।	
युवनाश्वसुतः श्रीमान्मांघाता समपद्यत	१३
मांघातुस्तु महातेजाः सुसन्धिरुदपद्यत ।	
सुसन्धेरपि पुत्रौ द्वौ ध्रुवसन्धिः प्रसेनजित्	१४
यशस्वी ध्रुवसन्धेस्तु भरतो रिपुसूदनः ।	
भरतात्तु महाबाहोरसितो नाम जायत	१५
यस्यैते प्रतिराजान उदपद्यन्त शत्रवः ।	
हैहयास्तालजङ्घाश्च शूराश्च शशविन्दवः	१६
तांस्तु सर्वान्प्रतिव्यूह युद्धे राजा प्रवासितः ।	

कुक्षि, उनके विकुक्षि, विकुक्षिके बाण, बाणके अनरण्य उत्पन्न हुए। इनके राजमें दुर्भिक्ष कभी नहीं पड़ा और चोरका कहीं नामही नहीं सुनाई देता था। (१-१०)

‘अनरण्यके पृथु तथा पृथुके त्रिशङ्क हुए। ये राजा अपने वचनका पालन करनेके लिये सशरीर स्वर्गको चले गये। इनके धुन्धुमार, धुन्धुमारके युवनाश्व, युवनाश्वसे मान्धाता उत्पन्न हुए। मान्धाताके सुसन्धि तथा सुसन्धिके ध्रुवसन्धि और प्रसेनजित् दो पुत्र उत्पन्न हुए। ध्रुवसन्धिके भरत और भरतके असित नामक पुत्र उत्पन्न हुए। उनके हैहय, तालजङ्घ, शूर तथा शशविन्दु इन जानियोंके राजा वैरी हुए। उन सब राजाओंके साथ

स च शैलवरे रम्ये बभूवाभिरतो मुनिः	१७
द्वे चास्य भार्ये गर्भिण्यौ बभूवतुरिति श्रुतिः ।	
तत्र चैका महाभागा भार्गव देववर्चसम्	१८
ववन्दे पद्मपत्राक्षी काङ्क्षिणी पुत्रमुत्तमम् ।	
एका गर्भविनाशाय सपत्न्यै गरलं ददौ	१९
भार्गवश्च्यवनो नाम हिमवन्तमुपाश्रितः ।	
तमृषिं साभ्युपागम्य कालिंदी त्वभ्ययादयत्	२०
स तामभ्यवदत्प्रीतो वरेण्यं पुत्रजन्मनि ।	
पुत्रस्ते भविता देधि महात्मा लोकविश्रुतः	२१
धार्मिकश्च सुभीमश्च वंशकर्ताऽरिसूदनः ।	
श्रुत्वा प्रदक्षिणं कृत्वा मुनिं तमनुमान्य च	२२
पद्मपत्रसमाताक्षं पद्मगर्भसमप्रभम् ।	
ततः सा गृहमागम्य पत्नी पुत्रमजायत	२३
सपत्न्या तु गरस्तस्यै दत्तो गर्भजिघांसया ।	
गरेण सह तेनैव तस्मात्स सगरोऽभवत्	२४
स राजा सगरो नाम यः समुद्रमपानयत् ।	
दृष्ट्वा पर्यणि वेगेन त्रासमान इमाः प्रजाः	२५

राजाने युद्ध भी किया, पर हार कर हिमालयमें जा तप करने लगे। इनके दो स्त्रियां थीं, दोनों गर्भिणी हुईं, एकने च्यवनऋषिको अभिवादन कर उनसे उत्तम पुत्र मांगा। दूसरी सौतने उसके पुत्रके मारनेके लिये उसको विष पिला दिया। एक दिन जब च्यवनमुनि वहां आये, तो कालिन्दीने मुनिको प्रणाम किया। (११-२०)

उत्तम पुत्रको इच्छा रखनेवाली रानीसे मुनिने कहा कि 'हे देवि' तेरे लोकविख्यात पुत्र होगा। धार्मिक तथा वंशकर्ताभी होगा।' यह सुन मुनि-का रानीने बड़ा आदर किया। फिर उस रानीने गृहमें आकर प्रसाके पुत्र-पुत्रको जन्म दिया। सौतके गर अर्थात् जड़ देनेके कारण वह वायक गर-महित उत्पन्न हुआ, इसने उसका सगर नाम रखा। सगरने अपने बचक

असमञ्जस्तु पुत्रोऽभूत्सगरस्येति नः श्रुतम् ।	
जीवन्नेव स पित्रा तु निरस्तः पापकर्मकृत्	२६
अंशुमानपि पुत्रोऽभूदसमञ्जस्य वीर्यवान् ।	
दिलीपोऽशुमतः पुत्रो दिलीपस्य भगीरथः	२७
भगीरथान्ककुत्स्थश्च काकुत्स्था येन तु स्मृताः ।	
काकुत्स्थस्य तु पुत्रोऽभूद्रघुर्येन तु राघवाः	२८
रघोस्तु पुत्रस्तेजस्वी प्रवृद्धः पुरुषादकः ।	
कल्माषपादः सौदास इत्येवं प्रथितो भुवि	२९
कल्माषपादपुत्रोऽभूच्छङ्खणस्त्विति विश्रुतः ।	
यस्तु तद्वीर्यमासाद्य सहसैन्यो व्यननिशत्	३०
शङ्खणस्य तु पुत्रोऽभूच्छूरः श्रीमान्सुदर्शनः ।	
सुदर्शनास्याग्निवर्ण अग्निवर्णस्य शीघ्रगः	३१
शीघ्रगस्य मरुः पुत्रो मरोः पुत्रः प्रशुश्रुवः ।	
प्रशुश्रुवस्य पुत्रोऽभूदम्बरीपो महामतिः	३२
अम्बरीपस्य पुत्रोऽभून्नहुपः सत्यविक्रमः ।	
नहुपस्य च नाभागः पुत्रः परमधार्मिकः	३३
अजश्च सुव्रतश्चैव नाभागस्य सुतावुभौ ।	
अजस्य चैव धर्मात्मा राजा दशरथः सुतः	३४
तस्य ज्येष्ठोऽसि दायादो राम इत्यभिविश्रुतः ।	

अश्व इन्द्रनेके लिये अपने पुत्रोंसे सागर खुदा गया । मगारके असमञ्जस नामक पुत्र हुआ, यह अयोध्यानिवासियोंके सन्तान मरयूमें डुबा देता था । इससे पिताने उसे घरमें निकाल दिया । असमञ्जसके अंशुमान्, उनके दिलीप, उनके भगीरथ, भगीरथके ककुत्स्थ, ककुत्स्थके रघु हुए । रघुके नामपर इस वंशके लोग राघव कहलाने लगे । रघुके पुत्र प्रवृद्ध, पुरुषादक, कल्माषपाद, सौदास, कल्माषपादके शङ्खण हुए । ये पिताद्वारा सैन्यसहित नष्ट हो गये । (२१-३०)

‘शङ्खणके सुदर्शन, सुदर्शनके अग्निवर्ण, उनके शीघ्रग, उनके मरु, मरुके प्रशुश्रुव, उनके अम्बरीप हुए । उनके नहुप, नहुपके नाभाग, उनके अज

तद्गृहाण स्वकं राज्यमवेक्ष्य जगन्पुत्र ३५

इक्ष्वाकूणां हि सर्वेषां राजा भवति पूर्वजः ।

पूर्वजे नावरः पुत्रो ज्येष्ठो राजाभिषिच्यते ३६

स राघवाणां कुलधर्ममात्मनः सनातनं नाद्य विहन्तुमर्हसि ।

प्रभूतरत्नामनुशाधि मेदिनीं प्रभूतराष्ट्रां पितृवन्महायशाः ३७

इत्यार्षे श्री० बा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकादशोत्तरशततमः सर्गः ॥१११॥

द्वादशोत्तरशततमः सर्गः ।

[४०८५]

यसिष्ठः स तदा राममुक्त्वा राजपुरोहितः ।

अत्रवीर्यमसंयुक्तं पुनरेवापरं वचः १

पुरुषस्यैह जातस्य भवन्ति गुरवः सदा ।

आचार्यश्चैव काकुत्स्थ पिता माता च राघव २

पिता ह्येनं जनयति पुरुषं पुरुषर्षभ ।

प्रज्ञां ददाति चाचार्यस्तस्मात्स गुरुश्च्युतं ३

स तेऽहं पितुराचार्यस्तव चैव परंतप ।

मम त्वं वचनं कुर्वन्नातिवर्तैः सतां गतिम् ४

इमा हि ते परिपदो शातयश्च नृपास्तथा ।

य सुप्रसन्नो पुत्रं हुण्, अजके महाराज दशरथ हुण् । हे राम ! उनके सबसे बड़े पुत्र आप हैं, इससे अपना अभिषेक कराके राज्य स्वीकार कीजिये । इक्ष्वाकुवंशियोंमें सबसे बड़ा ही पुत्र राजा होता चला आया है । आपके होते हुण् छोटा पुत्र राजगद्दीपर कैसे बैठ जाय ? इसलिये हे महाकीर्ति राम ! रघुवंशका सनातन धर्म नष्ट न करते हुण् रत्न और राष्ट्रोंसे संपन्न पृथ्वीका तुम पालन करो ।' (३१-३७)

यहाँ १११ सर्ग समाप्त हुआ ।

यसिष्ठ रामसे एवं कह पुनः और वचन कहने लगे- 'हे राम ! पुरुषके पिता, पिता तथा आचार्य ये तीन गुरु होते हैं । माता पिता तो उसे जन्म देते हैं और आचार्य ज्ञान देता है, इसीसे ये गुरु कहाने हैं । मैं तुम्हारे पिताका आचार्य हूँ, इससे तुम्हारा भी हूँ । मेरे वचन मान तुम सम्मार्गका भति-

एषु तात चरन्धर्मं नातिवर्तेः सतां गतिम्	५
वृद्धाया धर्मशीलाया मातुर्नाहस्यवर्तितुम् ।	
अस्या हि वचनं कुर्वन्नातिवर्तेः सतां गतिम्	६
भरतस्य वचः कुर्वन्याचमानस्य राघव ।	
आत्मानं नातिवर्तेस्त्वं सत्यधर्मपराक्रम	७
एवं मधुरमुक्तः स गुरुणा राघवः स्वयम् ।	
प्रत्युवाच समासीनं वसिष्ठं पुरुषर्षभः	८
यन्मातापितरौ वृत्तं तनये कुरुतः सदा ।	
न सुप्रतिकरं तत्तु मात्रा पित्रा च यत्कृतम्	९
यथाशक्तिप्रदानेन स्वापनोच्छादनेन च ।	
नित्यं च प्रियवादेन तथा संवर्धनेन च	१०
स हि राजा दशरथः पिता जनयिता मम ।	
अज्ञापयन्मां यत्तस्य न तन्मिथ्या भविष्यति	११
एवमुक्तेन रामेण भरतः प्रत्यनन्तरम् ।	
उवाच विपुलोरस्कः सूतं परमदुर्मनाः	१२
इह तु स्थण्डिले शीघ्रं कुशानास्तर सारथे ।	

क्रमण न करोगे । इन प्रजाओं, भाई-बन्धुओं तथा सब छोटे छोटे राजा-ओंका पालन करो । अपनी वृद्ध माताका तिरस्कार न करो, इनकी आज्ञा मानो । हे राम ! ये भरत प्रार्थना कर रहे हैं, इनकी प्रार्थना भी माननी चाहिये ।' (१-७)

जब महाराज वसिष्ठने ऐसे मीठे वचन कहे, तो उनसे राम कहने लगे- 'माता पिता पुत्रकी जो भलाई करते हैं, उसके बदलेमें जो पुत्र कुछ किया चाहे तो नहीं कर सकता । क्योंकि वे यथाशक्ति पुत्रको उत्तम उत्तम भोजन देते, सदा प्यारे वचन कह स्नेह करते, उसके बढने और जीनेके नाना उपाय करते हैं । महाराज दशरथ मेरे पिता हैं, जो कुछ मुझे आज्ञा दे राखे हैं, वह किसी प्रकार अन्यथा नहीं हो सकती ।' (८-११)

रामने ऐसा कहा तो बहुत उदास हो भरत सुमन्त्रसे बोले- 'हे मारथे !

आर्यं प्रत्युपवेक्ष्यामि यावन्मे संप्रसीदति	१३
निराहारो निरालोको धनहीनो यथा द्विजः ।	
शये पुरस्ताच्छालायां यावन्मां प्रतियास्यति	१४
स तु राममवेक्षन्तं सुमन्त्रं प्रेक्ष्य दुर्मेनाः ।	
कुशोत्तरमुपस्थाप्य भूमावेवास्थितः स्वयम्	१५
तमुवाच महातेजा रामो राजपिसत्तमः ।	
किं मां भरत कुर्याणं तात प्रत्युपवेक्ष्यसे	१६
ब्राह्मणो ह्येकपाश्वेन नरात्रोद्धुमिहार्हति ।	
नि	१७
	१८
आसीनस्त्वेव भरतः पौरजानपदं जनम् ।	
उवाच सर्वतः प्रेक्ष्य किमार्यं नानुशासथ	१९
ते तदोचुर्महात्मानं पौरजानपदा जनाः ।	
काकुत्स्थमभिजानीमः सम्यग्ब्रूति राघवः	२०
एषोऽपि हि महाभागः पितुर्वचसि तिष्ठति ।	
अत एव न शक्ताः स्म व्यावर्तयितुमञ्जसा	२१

इस स्थानपर भूमिमें कुश बिछाओ । जइतक राम प्रसन्न न होंगे, तइतक मैं एक दिनके समान निराहार, अन्धेरेमें दँट अयोध्याको न जाऊँगा ।' भरत सुमन्त्रको कुश बिछानेके लिये रामकी आज्ञा की प्रतीक्षा करते देख स्वयं कुश बिछाकर बैठे । तब राम भरतसे कहने लगे, 'हे तात ! मैंने कौन अन्याय किया जो यह कार्य कर रहे हो ? एक करवट पड़कर केवल ब्राह्मणही बनने अपकारीको रोक सकता हूँ, यह विधि क्षत्रियोंके लिये उचित नहीं है । हे भरत ! इस कटोर मतको छोड़ उठो ।' यह सुन भरत पुरवामी व देववामी लोगोंकी ओर देख वहाँ बैठे बोले कि 'आप लोग श्रीरामको क्यों नहीं समझाते ?' यह सुन वे मग भरतसे कहने लगे कि 'हम जानते हैं कि आप जो कुछ कह रहे हैं उचित है । पर राम अपने पिता राजा

तेषामाशाय वचनं रामो वचनमब्रवीत् ।	
एवं निबोध वचनं सुहृदां धर्मचक्षुषाम्	२२
एतच्चैवोभयं श्रुत्वा सम्यक्संपदय राघव ।	
उत्तिष्ठ त्वं महाबाहो मां च स्पृश तथोदकम्	२३
अथोत्थाय जलं स्पृष्ट्वा भरतो वाक्यमब्रवीत् ।	
शृण्वन्तु मे परिपदो मन्त्रिणः शृणुयुस्तथा	२४
न याचे पितरं राज्यं नानुशासामि मातरम् ।	
एवं परमधर्मज्ञं नानुजानामि राघवम्	२५
यदि त्यक्त्वा वस्तव्यं कर्तव्यं च पितुर्वचः ।	
अहमेव निवर्त्स्यामि चतुर्दश वने समाः	२६
धर्मात्मा तस्य सत्येन भ्रातुर्वाक्येन विस्मितः ।	
उवाच रामः संप्रेक्ष्य पौरजानपदं जनम्	२७
विक्रीतमाहितं क्रीतं यत्पित्रा जीविता मम ।	
न तद्गोपयितुं शक्यं मया वा भरतेन वा	२८
उपाधिर्न मया कार्यो वनवासे जुगुप्सितः ।	
युक्तमुक्तं च कैकेय्या पित्रा मे सुकृतं कृतम्	२९

दशरथके वचनोंपर दृढ़ हैं, इसीसे नहीं लौट सकते ।' (१२-२१)

उनके ऐसे वचन सुन राम भरतसे बोले कि, 'भाई! इनके वचन सुनो, कैसे विचारके साथ बोलते हैं । इन लोगों तथा मेरा कहा दोनोंका सुनकर विचारपूर्वक देखो ।' यह सुन उठकर जल छूकर भरत बोले कि 'प्रजा मन्त्री व अन्य सब लोग, सुनो । न तो मैं पिताका राज्य चाहता हूँ, न माता हीको कुछ सिखाऊंगा, न श्रीरामको वनसे लौटाता हूँ । यदि इनको पिताका वचन अवश्यही करना है, तो चौदह वर्षतक मैंभी वनमें रहूंगा ।' श्रीराम भाईके ऐसे वचन सुन आश्चर्यमें भर गये और बोले, 'अपने जीतेजी पिताने जो वस्तु बेच डाली, किसीके यहां धरोहर रखी या कोई वस्तु मोल ली है तो मैं वा भरत उसका लोप नहीं कर सकते । कैकेयीने मुझको वनके योग्यही समझके वनवास दिलाया, तथा

जानामि भरतं क्षान्तं गुरुसत्कारकारिणम् ।

सर्वमेवात्र कल्याणं सत्यसंधे महात्मनि ३०

अनेन धर्मशीलेन वनात्प्रत्यागतः पुनः ।

भ्रात्रा सह भविष्यामि पृथिव्याः पतिरुत्तमः ३१

वृत्तो राजा हि कैकेय्या मया तद्वचनं कृतम् ।

अमृतान्मोचयानेन पितरं तं महीपतिम् ३२

इत्यार्षे श्री० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे द्वादशोत्तरशततमः सर्गः ॥११२॥

त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः ।

[४११७]

तमप्रतिमतेजोभ्यां भ्रातृभ्यां रोमहर्षणम् ।

विस्मिताः संगमं प्रेक्ष्य समुपेता महर्षयः १

अन्तर्हिता मुनिगणाः स्थिताश्च परमर्षयः ।

तौ भ्रातरौ महाभागौ कारुत्स्यां प्रशशंसिरे २

सदायां राजपुत्रौ हौ धर्मशौ धर्मविक्रमौ ।

श्रुत्वा वयं हि संभाषामुभयोः स्पृहयामहे ३

ततस्तृपिगणाः क्षिप्रं दशग्रीववर्धपिणः ।

भरतं राजशार्ङ्गलमित्यूचुः संगता वचः ४

कुले जात महाप्राज्ञ महावृत्त महायशः ।

प्राप्तं रामस्य वाक्यं ते पितरं यद्यवेक्षसे ५

पिताने दिया हे, सो मैं स्वयं वनको जाऊंगा, अपना प्रतिनिधि भरतको न भेजूंगा । मैं भरतको जानता हूँ, ये बड़े क्षमाशील हैं । वनमें लौटकर इन्हीं धर्मशील अपने भाईके साथ राज्यको ग्रहण करेंगे । कैकेयीका वचन मान मैंने पिताको अत्यन्तसे छुड़ाया, अब भरतभी अयोध्याका राज्य कर पिताको अत्यन्तसे छुड़ाएँ ।' (२२-३२)

यहाँ ११२ सर्ग समाप्त हुआ ।

राम व भरत दोनों भाइयोंका रोमहर्षण संगम देखकर बड़े बड़े ऋषि-गण आश्चर्यमें भर गये । मुनिगण और महर्षिगण उन दोनों भाइयोंकी प्रशंसा करने लगे कि 'ये दोनों राजपुत्र अति श्रेष्ठ व धर्मज्ञ हैं ।' तदनु



स्वपादुके संप्रणम्य रामं वचनमब्रवीत् ।  
 चतुर्दश हि वर्षाणि जटावीरघरो ह्यहम् २३  
 फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन ।  
 तवागमनमाकाङ्क्षन्वसन्वै नगराद्वहिः २४  
 तव पादुकयोर्न्यस्य राज्यतन्त्रं परंतप ।  
 चतुर्दशे हि संपूर्णे वर्षेऽहनि रघूत्तम २५  
 न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ।  
 तथेति च प्रतिज्ञाय तं परिष्वज्य सादरम् २६  
 शत्रुघ्नं च परिष्वज्य वचनं चेदमब्रवीत् ।  
 मातरं रक्ष कैकेयीं मा रोषं कुरु तां प्रति २७  
 मया च सीतया चैव शतोऽसि रघुनन्दन ।  
 इत्युक्त्वाधुपरीताक्षो भ्रातरं विसर्ज्य ह २८  
 स पादुके ते भरतः खलंकृते महोज्ज्वले संपरिगृह्य धर्मवित् ।  
 प्रदक्षिणं चैव चकार राघवं चकार चैवोत्तमनागमूर्धनि २९  
 अथानुपूर्व्यां प्रतिपूज्य तं जनं गुरुंश्च मन्त्रीन्प्रकृतीस्तथानुजौ ।  
 व्यसर्जयद्राघववंशवर्धनः स्थितः स्वधर्मे हिमवानिवाचलः ३०

यह सुन रामने खडाऊँओपर चरण रखे और फिर हटा लिये, तब  
 उनको भरतको दे दिया। उन खडाऊँओको प्रणाम कर भरत रामसे बोले कि  
 'चौदह वर्षतक जटा चार धारण कर, फल मूल खाते, तुम्हारे आगमनकी राह  
 देखते, नगरके बाहर कहीं स्थित रहूँगा। तथा तुम्हारी पादुकाओपर राज्यका  
 भार रख जिस दिन चौदहवां वर्ष पूर्ण होगा, उस दिन आपको न देखूँगा  
 तो अग्नि दीप्त कर उसमें प्रवेश कर जाऊँगा।' तब रामने कहा 'बहुत  
 अच्छा! मैं उस दिन आजाऊँगा।' फिर राम बोले, 'हे शत्रुघ्न! कैकेयीकी  
 रक्षा किये रहना, उनपर क्रोध न करना। मैं अपनी तथा सीताकी तुमको  
 शपथ दिलाता हूँ।' ऐसा कह भाइयोंको बिदा किया। (२२-२८)

तब बहुत उज्ज्वल एवं भली भाँति मजारी हुई उन पादुकाओको लेकर  
 उस धर्म जाननेवाले भरतने रामकी प्रदक्षिणा कर डाली और वे खडाऊँ एक

तं मातरो वापगृहीतकण्ठ्या दुःखेन नामन्त्रयितुं हि शेकुः ।

स चैव मातृरभिवाद्य सर्वा रुदन्कुटीं स्यां प्राविवेश रामः ३१  
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेऽयोध्याकाण्डे त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११३ ॥

चतुर्दशोत्तरशततमः सर्गः ।

[ ४१४८ ]

ततः शिरसि कृत्वा तु पादुके भरतस्तदा ।

आचरोह रथं हृष्टः शत्रुघ्नसहितस्तदा १

घसिष्ठो यामदेवश्च जावालिश्च दृढव्रतः ।

अग्रतः प्रययुः सर्वे मन्त्रिणो मन्त्रपूजिताः २

मन्दाकिनी तदीं रम्यां प्रादमुत्तास्ते ययुस्तदा ।

प्रदक्षिणं च कुर्वाणाश्चित्रकूटं महागिरिम् ३

पदयन्धातुसहस्राणि रम्याणि विविधानि च ।

प्रययां तस्य पार्श्वेन ससैन्यो भरतस्तदा ४

अदूराच्चित्रकूटस्य ददर्श भरतस्तदा ।

आश्रमं यत्र स मुनिर्भरद्वाजः कृतालयः ५

स तमाश्रममागम्य भरद्वाजस्य वीर्यवान् ।

बडिया हाथीके मिरपर रथ दीं । तदुपरान्त स्वधर्मके पालनमें हिमालयका भौति भटल रहनेवाले रामचंद्रजीने क्रमशः उन इकट्ठे हुए लोगों, गुरुजन, सचिव-मंडल, प्रजा-गण एवं छोटे भाई भरत-शत्रुघ्नका भी रीतिके अनुसार संमान करके बिदा किया । दु खारेगके सारे आँसुओंसे गला रंध जानेपर माताएँ, उमसे पूजनेमें अक्षम हुईं । तब ऐसी हालतमें रामचंद्रजी मचको दण्डवत् कर चुकनेपर विलम्बते विलम्बते अपनी कुटियामें प्रविष्ट हुए । (२८-३१)

यहाँ ११३ सर्ग समाप्त हुआ ।

ततः भरत रामके खडाऊ अपने मिरपर रथ शत्रुघ्नके साथ रथपर सवार हुए । घसिष्ठ, यामदेव, जावालि आदि मुनिगण तथा अमाश्रमगण आगे आगे चले । वे सब मन्दाकिनी नदी तथा चित्रकूटकी प्रदक्षिणा करते चले । भरत नाना सुन्दर सुन्दर धातु देखते हुए संन्यसहित चले । भरतने चित्रकूटकी

अधर्तार्य रथात्पादौ यवन्दे कुलनन्दनः	६
ततो हृष्टो भरद्वाजो भरतं वाक्यमब्रवीत् ।	
अपि कृत्यं कृतं तात रामेण च समागतम्	७
एवमुक्तः स तु ततो भरद्वाजेन धीमता ।	
प्रत्युवाच भरद्वाजं भरतो धर्मवत्सलः	८
स याच्यमानो गुरुणा मया च दृढयिक्रमः ।	
राघवः परमप्रीतो वसिष्ठं वाक्यमब्रवीत्	९
पितुः प्रतिज्ञां तामेव पालयिष्यामि तत्त्वनः ।	
चतुर्दश हि वर्षाणि या प्रतिज्ञा पितुर्मम	१०
एवमुक्तो महाप्राज्ञो वसिष्ठः प्रत्युवाच ह ।	
वाक्यज्ञो वाक्यकुशलं राघवं वचनं महत्	११
एते प्रयच्छुः संहृष्टः पादुके हेमभूषिते ।	
अयोध्यायां महाप्राज्ञ योगक्षेमकरो भव	१२
एवमुक्तो वसिष्ठेन राघवः प्रादुमुखः स्थितः ।	
पादुके हेमविकृते मम राज्याय ते ददौ	१३
निवृत्तोऽहमनुवातो रामेण सुमहात्मना ।	
अयोध्यामेव गच्छामि गृहीत्वा पादुके शुभे	१४
एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं भरतस्य महात्मनः ।	

ॐ पाससे भरद्वाजका आश्रम देखा और वहां पहुंच रखते उतर भरद्वाजके चरणोंमें प्रणाम किया । तब भरद्वाज भरतसे बोले, 'हे तात ! क्या रामको मे आये ?' जब भरद्वाजने ऐसा पूछा तो भरत उनसे बोले कि 'मैंने व गुरु वसिष्ठने अनेक प्रकारसे कहा, तो राम पुरोहित वसिष्ठसे बोले कि, मेरे चौदह वर्ष वनमें रहनेकी जो मेरे पिताकी प्रतिज्ञा है, उसीका यथावत् पालन करूंगा ।' (१-१०)

'इस बातको सुन वाक्यकोविद वसिष्ठ फिर रामसे बोले कि, अपने हेम-भूषित ब्रह्मांड दे अयोध्याभरका योगक्षेम कीजिये।' जब कुलगुरुने ऐसा कहा तो रामने प्रादुमुख हो राज्य करनेके लिये अपनी पादुका दीं । मैं रामकी

भरद्वाजः शुभतरं मुनिर्वाक्यमुदाहरत्	१५
नैतच्चित्रं नरव्याघ्रे शीलवृत्तविदां वरे ।	
यदार्यं त्वयि तिष्ठेत्तु निम्नात्सृष्टमिवोदकम्	१६
अनृणः स महाबाहुः पिता दशरथस्तव ।	
यस्य त्वमीदृशः पुत्रो धर्मात्मा धर्मवत्सलः	१७
तमृषिं तु महाप्राज्ञमुक्तवाक्यं कृताञ्जलिः ।	
आमन्त्रयितुमारेभे चरणापुपगृह्य च	१८
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा भरद्वाजं पुनः पुनः ।	
भरतस्तु ययौ श्रीमानयोध्यां सह मन्त्रिभिः	१९
यानैश्च शकटैश्चैव हयैर्नागैश्च सा चमूः ।	
पुनर्निवृत्ता विस्तीर्णा भरतस्यानुयायिनी	२०
ततस्ते यमुनां दिव्यां नदीं तीर्थोर्मिमालिनीम् ।	
ददृशुस्तां पुनः सर्वे गङ्गां शिवजलां नदीम्	२१
तां रम्यजलसंपूर्णां संतीर्य सहयान्धवः ।	
शृङ्गवेरपुरं रम्यं प्रविवेश ससैनिकः ।	
शृङ्गवेरपुराङ्गय अयोध्यां संददर्श ह	२२
अयोध्यां तु तदा दृष्ट्वा पित्रा भ्रात्रा विवर्जिताम् ।	
भरतो दुःखसंतप्तः सारथिं चेदमब्रवीत्	२३

आज्ञासे लौट पादुका लिये अयोध्याको जा रहा हूँ ।' भरतकी बात सुन भरद्वाज बोले, 'हे पुरुर्याग! तुममें जो श्रेष्ठता है यह आभयकी बात नहीं। जिस महाबाहु दशरथके धर्मवत्सल पुत्र तुम हो वे तुम्हारे पिता उद्गुण हो गये ।' भरद्वाजके ऐसे वचन सुन भरत हाथ जोड़ चलनेके लिये विदा मागने लगे । भरद्वाजकी प्रदक्षिणा कर अमात्योके सह अयोध्याको भरत रवाना हुए । उनके पीछे पीछे भरतकी सेना भी चली । (१९-२०)

यमुना नदीको पार कर अग्नि निर्मल जलशाली गंगा नदीको उतरे । भरत गंगाको उतर शृङ्गवेरपुरमें पहुँचे, शृङ्गवेरपुरमें चले अयोध्यानागर

सारथे पश्य विध्वस्ता अयोध्या न प्रकाशते ।

निराकारा निरानन्दा दीना प्रतिहतस्वना २४

इत्यपि श्री० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे चतुर्दशोत्तरशततमः सर्गः ११४ [४१७२]

पञ्चदशोत्तरशततमः सर्गः ।

स्निग्धगम्भीरघोषेण स्यन्दनेनोपयान्प्रभुः ।

अयोध्यां भरतः क्षिप्रं प्रविवेश महायशः १

विडालोत्कचरितामालीननरवारणाम् ।

तिमिराभ्याहतां कालीमप्रकाशां निशामिव २

राहुशत्रोः प्रियां पत्नीं श्रिया प्रज्वलितप्रभाम् ।

प्रहेणाभ्युदितेनैकां रोहिणीमिव पीडिताम् ३

अलोपणक्षुब्धसलिलां घर्मतप्तविहंगमाम् ।

लनिमीनजपग्राहां कृशां गिरिनदीमिव ४

विधूमामिव हेमाभां शिखरामग्रेः समुत्थिताम् ।

हविरभ्युक्षितां पश्चाच्छिखां विप्रलयं गताम् ५

विध्वस्तकवचां रग्णगजवाजिरथध्वजाम् ।

देती । परंतु पिता दशरथ और भ्राता रामसे रहित हुई वह अयोध्या नगरी देखकर भरत दुःखसे संतप्त होकर सारथीसे कहने लगा, 'हे सारथे! उध्वस्त हुई यह अयोध्या नगरी अब नहीं प्रकाशती है। यह दीन अयोध्या-पुरी दीन, अलंकारहीन और आनंदमे रहित होकर उसमें हलचल भी बंद हो गई है।' (२१-२४)

यहाँ ११४ सर्ग समाप्त हुआ ।

गम्भीर शब्द करते हुए रथपर सवार भरत अयोध्यानगरीमें पहुंचे। वह नगरी विडालव उत्कच आदि जीवोंसे व्याप्त काली रात्रिके तुल्य अप्रकाशित थी। जैसे रोहिणी ग्रहणमें राहुसे ग्रसित चन्द्रके पीडित होनेसे शोभाहीन हो जाती है, वैसी ही वह पुरी थी। जैसे धूपसे जल गर्म हो जानेपर नदी व्याकुल हो जाती है, वही अवस्था तब उस नगरी की थी। जैसे पहिले अग्नि वैदीप्यमान हो पीछेसे ज्वाला मुन्द जानेसे अच्छा न लगे, यही

हृतप्रवीरामापन्नां चमूभिश्च महाह्वये	६
सफेतां सस्यनां भूत्वा सागरस्य समुत्थिताम् ।	
प्रशान्तमारुतोद्भूतां जलोर्मिपिब निःस्वनाम्	७
त्यक्तां यन्नायुधैः सर्वैरभिरूपैश्च याजकैः ।	
सुत्याकाले सुनिर्वृत्तं वेदिं गतरवामिव	८
गोष्ठमध्ये स्थितामार्तामचरन्तीं नवं वृणम् ।	
गोवृषेण परित्यक्तां गवा पत्नीभिर्वान्मुक्ताम्	९
प्रभाकराद्यैः सुस्निग्धैः प्रज्वलद्भिरियोत्तमैः ।	
वियुक्तां मणिभिर्जान्यैर्नद्यां मुक्तावलीमिव	१०
महसाचरितां स्थानान्महो पुण्यक्षयोद्भिताम् ।	
संहतद्युतिविस्तारां तारामिव दिवश्च्युताम्	११
पुष्पनद्धां वसंतान्ते मत्तभ्रमरशालिनीम् ।	
द्रुतदायाग्निविप्लुष्टां क्लान्तां घनलतामिव	१२
संमूढनिगमां सर्वां संक्षिप्तविषणापणाम् ।	
प्रच्छन्नशशिनक्षत्रां द्यामिवाम्बुधरैर्युताम्	१३
क्षीणपानोत्तमैर्भद्रैः शराद्यैरभिसंयुताम् ।	
हनशाण्डामिव श्वस्तां पानभूमिमसंस्कृताम्	१४
घृष्णभूमितलां निष्ठां घृष्णपात्रैः समावृताम् ।	

कन्या अयोध्याकी थी। यह नगरी वीरोंके भार जानेसे अप्रकाशित बाहिनी के समान लगती है। पवन चलनेके कारण शान्त सागरके समान यह पुरी है। याजकोंसे शून्य यज्ञवेदीके तुल्य यह नगरी शोभा नहीं देती, गोष्ठमें स्थित, वृषभहीन गाँके तुल्य यह नगरी जान पड़ती है। उत्तम मणियोंसे हीन राजमुक्ताके तुल्य यह नगरी शोभा नहीं देती। (१-१०)

आकाशमें गिरे हुए तारोंके तुल्य यह नगरी दीप्तिहीन हो रही है। जैसे पुष्पगोभित मत्त भ्रमर-गुंजारित लता दायानलमें जल जाने, वैसीही यह नगरी है। यह नगरी चन्द्ररहित बादलोंमें घिरी रातके समान दीप्ति पड़ती है। नदिराके पात्र टूटे फूटे पड़े हैं, मातों मदिग पानेवाले जन नहीं रहे।

उपयुक्तोदकां भग्नां प्रपां निपतितामिव	१५
विपुलां विततां चैव युक्तपाशां तरस्विनान् ।	
भूमौ बाणैर्विनिरुतां पतितां ज्यामिवायुधात्	१६
सहसा युद्धशौण्डेन हयारोहेण बाहिताम् ।	
निहतां प्रतिसैन्येन वडवामिव पातिताम्	१७
भरतस्तु रथस्थः सञ्ज्रीमान्दशरथात्मजः ।	
बाहयन्तं रथश्रेष्ठं सारथिं वाक्यमब्रवीत्	१८
किं नु खल्वद्य गम्भीरे मूर्च्छिष्ठो न निशान्यते ।	
यथापुरमयोध्यायां गीतवादित्रनिःस्वनः	१९
वारुणामदगन्धश्च माल्यगन्धश्च मूर्च्छिष्ठतः ।	
चन्दनागुरुगन्धश्च न प्रवाति समन्ततः	२०
यानप्रवरघोषश्च सुस्निग्धहयनिःस्वनः ।	
प्रमत्तगजनादश्च महान्श्च रथनिःस्वनः	२१
नेदानीं श्रूयते पुर्यामस्यां रामे विवासिते ।	
चन्दनागुरुगन्धांश्च महार्हाश्च वनस्रजः	२२
गते रामे हि तरुणाः संतप्ता नोपभुञ्जते ।	
बहिर्यात्रां न गच्छन्ति चित्रमाल्यधरा नराः	२३

सब कहीं दूटे फूटे पात्र पड़े थे, प्यामसे व्याकुल जनयुक्त प्रपाके तुल्य वह पुरी लगती थी। बाणोंसे कुटी हुई धनुषसे अलग पड़ी प्रत्यज्ञाके तुल्य नगरी जान पड़ती थी। वह पुरी मानों युद्धकुशल अश्वारोहीकी घोड़ी है, जिमको शत्रुने मार डाला है। (११-१७)

भरतने ऐसी नगरीमें रथपर चढ़ प्रवेश किया और सारथि मुनन्त्रसे बोले कि 'पहले की तरह आज अयोध्यामें गाने बजानेकी ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती। मदिरा, फूल, चन्दन, अगर, आदि सुगन्धित वस्तुओंकी सुगन्ध भी नहीं आती। यानोंका शब्द, घोड़ोंका हिनहिनाहट, हाथियोंका बिघाड़ना भी नहीं सुनाई पड़ता। चन्दन अगर तगर तथा नालाओंकी गन्धभी नहीं जान पड़ती। रामके वन चले जानेसे युवा पुरुष फूलोंकी माला आदि शृंगारकी

नोत्सवाः संप्रवर्तन्ते रामशोकादिंते पुरे ।

सा हि नूनं मम भ्रात्रा पुरस्यास्य द्युतिर्गता २४

नहि राजत्ययोध्येयं सासारेयार्जुनी क्षपा ।

कदा नु खलु मे भ्राता महोत्सव इवागतः २५

जनयिष्यत्ययोध्यायां हर्षं ग्रीष्म इवाम्बुदः ।

तरुणश्चास्वपैश्च नरैरुन्नतगामिभिः २६

संपतद्भिरयोध्यायां नाभिभान्ति महापथाः ।

इति द्युघन्सारथिना दुःखितो भरतस्तदा २७

अयोध्यां संप्रदिश्यैव विघ्नेश वसतिं पितुः ।

तेन हीनां नरेन्द्रेण सिंहहीनां गुहामिव २८

तदा तदन्तःपुरमुज्झितप्रभं सुरैरिवोत्कृष्टमभास्करं दिनम् ।

निरीक्ष्य सर्वत्र विभक्तमात्मघान्मुमोच याप्यं भरतः सुदुःखितः २९

इत्यर्थे श्राम० वा० आदिकाव्येऽथोक्त्याकाण्डे पञ्चदशोत्तरशततमः सर्गः ॥११५॥

पौडशोत्तरशततमः सर्गः ।

[४२०१]

नतो निक्षिप्य मातृस्ता अयोध्यायां दृढव्रतः ।

भरतः शोकसंतप्तो गुरुनिदमथाव्रवीत् १

वस्तुपुं नहीं भोगते । रामके शोकसे व्यथित इस नगरमें कोई भी उत्सव नहीं दिखाई देते । (१८-२४)

‘यह अयोध्यापुरी अच्छी नहीं लगती । राम आकर अयोध्यामें कब हर्ष उत्पन्न करेंगे ? ऊंची ऊंची मवारियोंपर चढ़े भूपग वस्त्र धारे मनुष्योंसे अयोध्यामें राजमार्ग शोभित नहीं होते ।’ एवं कहते अनि व्यथित भरत अयोध्यामें प्रविष्ट हो अपने पिताके मन्दिरमें गये, जो महाराज दशरथसे रहित सिंहहीन गुरुके समान दीर्घ पडता था । तब देवोंसे त्यक्त स्वर्गलोकके मनान् अधवा मूर्खसे रहित और प्रभानून्य हुआ वह अन्तःपुर इधरउधर संस्कार-रहित देवकर निमग्न होता हुआ तोभी वह भरत रोने लगा । (२४-२९)

यहाँ ११५ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

तब अयोध्यामें जो माताओंको उनके मन्दिरोंमें पहुंचा शोकग्रस्त भरत

दि० १७ ( अक्षेप्ता. उ. )



नन्दिग्रामं गमिष्यामि सर्वानामन्त्रयेऽत्र वः ।	
तत्र दुःखमिदं सर्वं सहिष्ये राघवं विना	२
गतश्चाहो दिवं राजा वनस्थः स गुरुर्मम ।	
रामं प्रतीक्षे राज्याय स हि राजा महायशाः	३
एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं भरतस्य महात्मनः ।	
अब्रुवन्मन्त्रिणः सर्वे वसिष्ठश्च पुरोहितः	४
सुभृशं श्लाघनीयं च यदुक्तं भरत त्वया ।	
वचनं भ्रातृवात्सल्यादनुरूपं तवैव तत्	५
नित्ये ते बन्धुलब्धस्य तिष्ठतो भ्रातृसौहृदे ।	
मार्गमार्यं प्रपन्नस्य नानुमन्येत कः पुमान्	६
मन्त्रिणां वचनं श्रुत्वा यथाभिलपितं प्रियम् ।	
अब्रवीत्सारथिं वाक्यं रथो मे युज्यतामिति	७
प्रहृष्टवदनः सर्वा मातुः समभिभाष्य च ।	
आरुरोह रथं श्रीमाञ्छत्रघ्नेन समन्वितः	८
आरुह्य तु रथं क्षिप्रं शत्रुघ्नभरताबुधौ ।	
ययतुः परमप्रीतौ वृत्तौ मन्त्रिपुरोहितैः	९
अग्रतो गुरवः सर्वे वसिष्ठप्रमुखा द्विजाः ।	
प्रययुः प्राङ्मुखाः सर्वे नन्दिग्रामो यतो भवेत्	१०

गुरुजनोंसे बोले- 'मैं नन्दिग्राममें जाकर रहूंगा और रामके न जानेतक वहां यह सब दुःख सहूंगा । पिता तो स्वर्गवासी हो गये तथा श्रीराम वनमें हैं, सो मैं वहां रह रामकी राह देखूं ।' भरतके ऐसे वचन सुन मन्त्री तथा वसिष्ठ बोले, 'हे भरत ! तुमने जो कहा ठीक है । तुम्हारा वचन भाईके प्रेमके योग्य है । ऐसा कौन पुरुष है जो भाईके मिलनेकी लालसामें लालायित हो तुम्हारी बात न माने ?' मन्त्रियोंके ऐसे प्रिय वाक्य सुन भरत सारथिसे बोले कि 'रथ तैयार करो ।' यह कह सब माताओंसे विदा हो शत्रुघ्न समेत रथपर चढ़ दोनों भाई प्रसन्न हो मन्त्री व पुरोहितोंके सङ्ग रवाना हुए । आगे आगे वसिष्ठादि ब्राह्मण पूर्व दक्षिणकी ओर नन्दिग्राममें चले । (१-१०)

चले च तदनाहृतं गजाम्बरसंकुलम् ।	
प्रययौ भरते याते सर्वे च पुरवासिनः	११
रथस्थः स तु धर्मात्मा भरतो भ्रातृवत्सलः ।	
नन्दिग्रामं ययौ नूर्ण शिरस्यादाय पादुके	१२
भरतस्तु ततः क्षिप्रं नन्दिग्रामं प्रविश्य सः ।	
अवतीर्य रथात्तूर्णं गुरुनिदमभाषत	१३
एतद्राज्यं मम भ्रात्रा दत्तं संन्यासमुत्तमम् ।	
योगक्षेमवहे चेमे पादुके हेमभूषिते	१४
भरतः शिरसा कृत्वा संन्यासं पादुके ततः ।	
अग्रवीद् दुःखसंततः सर्वं प्रकृतिमण्डलम्	१५
छत्रं धारयत क्षिप्रमार्यपादाविमौ मतौ ।	
आभ्यां राज्ये स्थितो धर्मः पादुकाभ्यां गुरोर्मम	१६
भ्रात्रा तु मयि संन्यासो निक्षिप्तः सौहृदादयम् ।	
तमिमं पालयिष्यामि राघवागमनं प्रति	१७
क्षिप्रं संयोजयित्वा तु राघवस्य पुनः स्वयम् ।	
चरणौ तौ तु रामस्य द्रक्ष्यामि सह पादुकौ	१८
तनो निक्षिप्तभारोऽहं राघवेण समागतः ।	
निवेद्य गुरवे राज्यं भजिष्ये गुरुवर्तिताम्	१९
राघवाय च संन्यासं दत्त्वेमे वरपादुके ।	
राज्यं चेदमयोध्यां च धूतपापो भवान्यहम्	२०

मग्न सेना और पुरवासी भरतके पीछे पीछे चले । भ्रातृवत्सल भरत अपने निरपर रामकी पादुका रख नन्दिग्रामको गये । वहाँ पहुँच रथसे उतर गुरुजनोसे बोले कि ' भाईने अपना राज्य मुझको धरोहरके समान सौंपा है और इसकी रक्षा करनेके लिये अपने पादुका भी दिये हैं । ' यह कह स्वडाऊँ निरपर रख दुःखी हो प्रजाओंसे बोले— 'इन स्वडाऊँओंको भाईके घरणारिन्द समझ छत्र लगाओ । भाईने ये स्वडाऊँ मुझको धरोहर रखने को दी हैं । जयतक राम नहीं आने तक मैं इनका पालन करूँगा । रामके

अवलितश्च पापश्च त्वां च तात न नृप्यते	१२
त्वं यदाप्रभृति ह्यस्मिन्नाश्रमे तात वर्तसे ।	
तदाप्रभृति रक्षांसि विप्रकुर्वन्ति तापसान्	१३
दर्शयन्ति हि वीभर्तैः क्रूरैर्मोषणकैरपि ।	
नानारूपैर्विरूपैश्च रूपैरसुखदर्शनैः	१४
अप्रशस्तैरगुचिभिः संप्रयुज्य च तापसान् ।	
प्रतिघ्नन्त्यपरान्क्षिप्रमनार्याः पुरतः स्थितान्	१५
तेषु तेष्व्वाश्रमस्थानेष्वबुद्धमवलीय च ।	
रमन्ते तापसांस्तत्र नाशयन्तोऽल्पचेतसः	१६
अधक्षिपन्ति स्तुग्भाण्डानग्नीन्निञ्चन्ति वारिणा ।	
कलशांश्च प्रमदन्ति हवने समुपस्थिते	१७
तैर्दुरात्मभिराविष्टानाश्रमान्प्रजिघांसवः ।	
गमनायान्यदेशस्य चोदयन्त्यृषयोऽद्य माम्	१८
तत्पुरा राम शारीरोमुपहिंसां तपस्विषु ।	
दर्शयन्ति हि दुष्टास्ते त्यक्ष्याम इममाश्रमम्	१९
बहुमूलफलं चित्रमविदूरादितां वनम् ।	
अश्वस्याश्रममेवाहं श्रयिष्ये सगणः पुनः	२०

जनस्थाननिवासी सब तपस्वियोंको पीडा देता है । वह बड़ा दुष्ट है, पुरुषों-को भी साधा करता है, आपको भी कष्ट पहुंचाना चाहता है । हे तात ! जबसे आप यहां आये हैं, तबसे राक्षस और भी कष्ट देते हैं । नाना-प्रकारसे तपस्वियोंको भय दिखाते हैं, जिससे वे लोग बड़ेबड़े दुःख पाते हैं । तपस्वियोंके आगे बड़ेबड़े दूषित तथा जघन्य काम करके उनको मारते हैं । ( ८-१५ )

‘आश्रमोंपर आ आ राक्षस उन बेचारे ऋषियोंके साथ धूमते व उनको मार भी डालते हैं । ऋषियोंके होम करनेके समय ये दुष्ट अग्निमें पानी डाल देते हैं, कलश उठा उठा फोड़ डालते हैं । उनसे पीडित यहांसे दूसरे देशमें चलनेके लिये ऋषिगण मुझसे कहते हैं । बहुत दिनोंसे ये दुष्ट ऋषियोंको मारते चले आते हैं, इससे अब इस आश्रमको हम छोड़

खरस्थय्यपि चायुक्तं पुरा राम प्रवर्तते ।  
 सदास्माभिरितो गच्छ यदि बुद्धिः प्रवर्तते २१  
 सकलत्रस्य संदेहो नित्यं युक्तस्य राघव ।  
 समर्थस्यापि सहितो यासौ दुःखमिहाद्य ते २२  
 इत्युक्तवन्तं रामस्तं राजपुत्रस्तपस्विनम् ।  
 न शशाकोत्तरैर्वाक्यैरघबहुं समुत्सुकम् २३  
 अभिनन्द्य समापृच्छथ समाधाय च राघवम् ।  
 स जगामाश्रमं त्यक्त्वा कुलं कुलपतिः सह २४

रामः संसाध्य ऋषिगणमनुगमनादेशात्तस्मात्कुलपतिमभिवाद्य

ऋषिम्

सम्यक्प्रतीतैस्नैरनुमत उपदिष्टार्थः पुण्यं वासाय स्वनिलयमुपसंपेदे

आश्रममृषिविरहितं प्रभुः क्षणमपि न जहौ स राघवः ।

राघवं हि सततमनुगमनापसाध्यायचरिते धृतगुणाः २६

इत्यार्षे धीमदा० वा० आदिकाव्येऽथोप्याकाण्डे सप्तदशाक्षरशततमः सर्गः ॥११७॥

[२५१]

देंगे । यहाँमें थोड़ी ही दूरपर अद्वयनाम ऋषिका आश्रम है । वहाँ परि-  
 वार सहित चले जायेंगे । हे राम ! इच्छा हो तो आप भी हमारे साथ चलिए,  
 क्योंकि वह घर तुम्हारे साथ भी अनुचित ही कर्म करेगा । यद्यपि आप  
 समर्थ भी हैं तो भी नारी समेत यहाँ रहनेमें भन्देह ही है । ' मुनिराजके  
 वचन सुन राम उनके जानेका निषेध न कर सके । सो रामकी प्रणामा कर  
 उस आश्रमको छोड़ साथियोंको मद्रमे मुनिराज चले गये । (२६-२४)

उस ऋषिमंडको साथ चलते हुए रामचन्द्रजी उस भूभागके उस पार  
 ले चले तथा उन आश्रमाधिराजि ऋषियोंको प्रणाम कर चुकनेपर प्रसन्न  
 होकर उन ऋषियोंने लौट जानेकी आज्ञा देदी, तथा कहा कि राम वहाँपर  
 न रहे; तब रामचन्द्रजी याविस अपने पुनीत निरागम्यानमें लौट आये ।  
 आश्रममें जब ऋषिगण चले गये तो प्रभु रामने सीताके मंत्रागमार्थ क्षणभर  
 भी उसको छोड़ बाहर चले जाना त्याग दिया और ऋषिगण वहाँ रहने-

अष्टादशोत्तरशततमः सर्गः ।

राघवस्त्वपयातेषु सर्वेष्वनुविचिन्तयन् ।	
न तत्रारोचयद्वासं कारणैर्बहुभिस्नदा	१
इह मे भरतो वृष्टो मातरश्च सनागराः ।	
सा च मे स्मृतिरन्वेति तान्नित्यमनुशोचतः	२
स्कन्धाधारनिवेशेन तेन तस्य महान्मनः ।	
हृषहस्तिकरीपैश्च उपमर्दः कृतो भृशम्	३
तस्मादन्यत्र गच्छाम इति संचिन्त्य राघवः ।	
प्रातिष्ठन स वैदेह्या लक्ष्मणेन च संगतः	४
सोऽत्रेराश्रममासाद्य तं ब्रुवन्दे महायशाः ।	
तं चापि भगवानग्निः पुत्रवत्प्रत्यपद्यत	५
स्वयमातिथ्यमादिश्य सर्वमस्य सुसहृतम् ।	
सौमित्रि च महाभागं सीतां च समसान्वयत्	६
पत्नीं च तमनुप्राप्तां वृद्धामामन्त्र्य सहृताम् ।	
सान्त्वयामास धर्मज्ञः सर्वभूतहिते रतः	७
अनसूयां महाभागां तापसीं धर्मचारिणीम् ।	
प्रतिगृहीप्य वैदेहीमब्रवीदपि सत्तमः	८

वाले रामचंद्रजी अपनी रक्षा करनेका क्षमता रखते हैं, ऐसा सोचकर कुछ तपस्वी आश्रमका त्याग न करके वहीं रामके साथ रहने लगे। (२४-२६)

यहाँ ११७ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

जब मुनिगण चले गये तो अनेक कारणसे रामने भी वहाँका रहना ठीक न समझा और कहने लगे कि 'यहाँपर मैंने भरत, माताओं, बादिकों देखा है, इससे उनका स्मरण बार बार होता है। भरतकी सेनाके घोड़े हाथियोंकी लीदकी दुर्गन्धि भी आती हैं। इससे अब वहाँसे अलगही चले जाना उचित है।' यह सोच वहाँसे चल दिये। वहाँसे चल अत्रिके आश्रमपर पहुँचे। अत्रिजीने भी रामको पुत्रवत् समझा, जो कुछ उचित आतिथ्य था सब रामका किया। फिर अपनी अति बृद्धा भार्या अनुसूयाको बुलाया वसन्तार से समझाया 'कि भगवती, धर्मचारिणी अनुसूया ! सीताका स्वागत

रानाय चाचक्षे तां तापसीं धर्मचारिणीम् ।	
दश वर्षाण्यनावृष्ट्या दग्धे लोके निगन्तरम्	९
यया मूलफले सृष्टे जाह्नवी च प्रवर्तिता ।	
उद्रेण तपसा युक्ता नियमश्चाप्यलंकृता	१०
दश वर्षसहस्राणि यया नष्टं महत्तपः ।	
अनसूयाव्रतेस्तात प्रत्यूहाश्च निवर्हिताः	११
देवकार्यनिमित्तं च यया संत्वरमाणया ।	
दशरात्रं कृता रात्रिः सेयं मानैव तेऽनघ	१२
तामिमां सर्वभूतानां नमस्कार्या तपस्विनीम् ।	
अभिगच्छतु येदेही वृद्धामक्रोधनां सदा	१३
एवं ब्रुवाणं तमुपि तथेत्युक्त्वा स राघवः ।	
मीतामालाक्ष्य धर्मशामिदं वचनमब्रवीन्	१४
राजपुत्रि ध्रुवं त्वेतन्मुनेरस्य समीरितम् ।	
ध्रेयाऽर्धमात्मनः शीघ्रमभिगच्छ तपस्विनीम्	१५
अनसूयेति या लोके कर्मभिः ख्यातिमागता ।	
तां शीघ्रमभिगच्छ त्वमभिगम्यां तपस्विनीम्	१६

करो ।' (१-८)

ऐसा कह रामसे अत्रि बोले कि 'तुम इन धर्मचारिणी अनुसूयाको जानते हो । एक समय दस वर्षतक जल नहीं बरसा था, तब इन्होंने मूलकूल उत्तरत किण्व तथा अपनी उग्र तपस्यासे गंगाको अपने पास बुला लिया । इन्होंने दस हजार वर्ष उग्र तपस्या की है, इसीसे इनका अनुसूया नाम पड़ा है । और इसी तपस्विनी अनुसूयाके प्रयोगे सामर्थ्यसे ऋषियोंके तपश्चर्यामें आनेवाले विघ्न नष्ट हो गए हैं । देवकार्यके निमित्त इसी अनुसूयाने स्वरा करके दस रात्रियोंकी एकही रात्रिको यह तुम्हें बताया समान है । इससे परम तपस्विनी इनको सीता प्रगान करें । वह सुन राम जानकीसे बोले, 'हे राजपुत्रि! अब अपने बह्दानके लिये अतिशय इन तपस्विनी अनुसूयाको सेवा करो । जिन्होंने अपने शुभ कर्मोंसे अनुसूया नाम पाया है

सीता त्वेतद्वचः श्रुत्वा राघवस्य यशस्विनी ।	
तामत्रिपत्नीं धर्मशामभिचक्राम मैथिली	१७
शिथिलां बलितां वृद्धां जरापाण्डुरमूर्धजाम् ।	
सततं वेपमानाङ्गीं प्रयाते कदलीमिव	१८
तां तु सीता महाभागामनसूयां पतिव्रताम् ।	
अभ्यधादयदव्यग्रा स्वं नाम समुदाहरत्	१९
अभिवाद्य च वैदेही तापसीं तां दमान्विताम् ।	
बद्धाऽखलिपुट्टा दृष्ट्वा पर्यपृच्छदनामयम्	२०
ततः सीतां महाभागां दृष्ट्वा तां धर्मचारिणीम् ।	
सान्त्वयन्त्यप्रवीद्वद्धा दिष्ट्या धर्ममवेक्षसे	२१
त्यक्त्वा ज्ञातिजनं सीते मानवृद्धिं च मानिनि ।	
अवरुद्धं वने रामं दिष्ट्या त्वमनुगच्छसि	२२
नगरस्थो वनस्थो वा शुभो वा यदि वाऽशुभः ।	
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः	२३
दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः ।	
स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः	२४
नातो विशिष्टं पश्यामि बान्धवं त्रिमृशन्त्यहम् ।	
सर्वत्र योग्यं वैदेहि तपः कृतमिवाव्ययम्	२५

उनकी सेवा कर धर्मकी बातें पूछो । 'सीताने रामकी बात सुन अनुसूयाकी प्रशिक्षणा की । ( १-१७ )

अनुसूया अति शिथिल-शरीर थीं, सब अंगोंकी खाल मिकुड गई थी, चलनेमें पवनप्रेरित बेलके तुल्य कांपती थीं । सीताने अनुसूयाके पास जा अपना नाम कह अभिवादन किया और हाथ जोड़ कुशल पूछने लगी । सीताजकी देख महावृद्धा, अनुसूया बोली कि हे सीता ! जो तुम मान व सत्कारको छोड़ वनवासी रामके पीछे पीछे फिरती हो सो ठीक ही है । नगरनिवासी, वनवासी, अनुकूल वा प्रतिकूल पति जिन स्त्रियोंको प्रिय है उनका लोकमें महोदय होता है । दुःशील, कामी निर्धन, पतिको भी आर्य-स्वभाव नारियां देवतातुल्यही मानती हैं । हे सीते ! स्त्रियोंका पतिसे

नत्वेवमनुगच्छन्ति गुणदोषमसत्स्त्रियः ।

कामवक्तव्यहृदया भर्तृनाथाश्चरन्ति याः २६

प्राप्नुवन्त्ययशश्चैव धर्मभ्रंशं च मैथिलि ।

अक्रायवशमापन्नाः स्त्रिया याः खलु तद्विधाः २७

त्वद्विधास्तु गुणैर्युक्ता हृष्टलोकपरावराः ।

स्त्रियः स्वर्गे चरिष्यन्ति यथा पुण्यकृतस्तथा २८

तदेवमेतं त्वमनुव्रता सती पतिप्रधाना समयानुवर्तिनी ।

भवे स्वभर्तुः सहधर्मचारिणी यशश्च धर्मं च ततः समाप्स्यसि २९

इत्यार्षे श्री० बा० आदिशब्देऽथोध्याकाण्डे अष्टादशोत्तरशततमः सर्गः ॥११८॥

एकोनविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ।

[२२८०]

सा त्वेवमुक्ता वैदेही त्वनसूयानसूयया ।

प्रतिपूज्य वचो मन्दं प्रवक्तुमुपचक्रमे १

नैतदाश्चर्यमार्यायां यन्मां त्वमनुभाषसे ।

विदितं तु ममाप्येतद्यथा नार्याः पतिर्गुहः २

यद्यप्येव भवेद्भर्ता अनायां वृत्तिवर्जितः ।

अद्वधमत्र वर्तव्यं तथाप्येव मया भवेत् ३

अधिक कोई भी बन्धु नहीं । कामासक्त व पतियोंकी स्वामिनी दुष्ट स्त्रियां गुण दोषका ध्यान नहीं करतीं । ऐसी स्त्रियां लोकमें कीर्ति नहीं पातीं । तुम्हारे तुल्य हम उस लोककी गति जाननेवाली नारियां स्वर्गमें विहार करती हैं । इसलिए पतिको देवत मानकर, मदाचरणी और पतिकी सेवा करनेमें तत्पर तू अपने पतिकी सहधर्मचारिणी हो । इसमें तू यश और पुण्य प्राप्त करोगी ।' (१८-२९)

यहाँ ११८ वॉ सर्ग समाप्त हुआ ।

जब अनुसूयाने एवं कहा तो सीता उनके वचनोंकी बड़ाई कर धीरे धीरे कहने लगी-‘आपका उपदेश कि स्त्रियोंका पति ही गुरु है, कुछ आश्चर्य नहीं है, मैं भी इस बातको जानती हूँ । पति धनहीन हो, चाहे उसका आचरण कैसाही क्यों न हो, पर उसके प्रति दियायुक्त व्यवहार करना मुम



किं पुनर्यो गुणश्लाघ्यः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः ।	
स्थिरानुरागो धर्मात्मा मातृवत्पितृवत्प्रियः	४
यां धृतिं वर्तते रामः कौसल्यायां महाबलः ।	
तामेव नृपनारीणामन्यासामपि वर्तते	५
सकृद्दृष्टास्वपि स्त्रीषु नृपेण नृपवत्सलः ।	
मातृवद्वर्तते वीरो मानमुत्सृज्य धर्मवित्	६
आगच्छन्त्याश्च विजनं वनमेवं भयावहम् ।	
समाहितं हि मे श्वश्रुवा हृदये यत्स्थिरं मम	७
पाणिप्रदानकाले च यत्पुरा त्वग्निसंनिधौ ।	
अनुशिष्टं जनन्या मे चाक्यं तदपि मे धृतम्	८
न विस्मृतं तु मे सर्वं वाक्यैः स्वैर्धर्मचारिणि ।	
पतिशुश्रूषणाद्वार्यास्तपो नान्यद्विधीयते	९
सावित्री पतिशुश्रूषां कृत्वा स्वर्गे महीयते ।	
तथावृत्तिश्च याता त्वं पतिशुश्रूषया दिवम्	१०

समान नारियोंका आवश्यकीय कर्तव्य है । किन्तु जब पति जितेन्द्रिय हो, अपनेसे अधिक स्नेह करता हो, मातापिताके समान प्रियकारी सुगुणधारी सुन्दर, हो तो उसके प्रति नारी उचित व्यवहार करेगी इसमें आश्चर्यकी कौन बात है ? मेरे महाबली पति अपनी माता कौसल्याके साथ जिस तरह-का बर्ताव करते हैं, उसी प्रकारका बर्ताव अन्य राजमहिषियोंमें करते हैं । जिस नारीको महाराजने एक बार भी प्रियाकी दृष्टिसे देखा है, राम उस स्त्रीसे भी तो मातृवत् वर्तते हैं । जब मैं घरसे वनको चली थी तब आपके तुल्य मेरी सासुने जो उपदेश किया था, वह मेरे हृदयपर छद्रित है । विवाहके समय अग्निके समक्ष मेरी माताने जो उपदेश किया था वह भी मेरे हृदयमें विराज रहा है । धर्मचारिणी ! पतिसेवाके सिवाय स्त्रीको और कोई सेवा नहीं करनी चाहिये, यह उपदेश जो मेरे दान्धवोंने मुझे दिये हैं मैं उनको तनिक भी नहीं भूली । सावित्री पतिसेवासे स्वर्गमें निवास करती हैं, आप भी सावित्रीके तुल्य पतिसेवासे सर्व सिद्धियोंको प्राप्त हो स्वर्गको

वरिष्ठा सर्वनारीणामेषा च दिवि देवता ।	
रोहिणी न विनाचन्द्रं मुहूर्तमपि दृश्यते	११
एवंविधाश्च प्रवराः स्त्रियो भर्तृदृढव्रताः	
देवलोके महीयन्ते पुण्येन स्वेन कर्मणा	१२
ततोऽनसूया संहृष्टा श्रुत्वोक्तं सीतया वचः ।	
शिरस्याग्राय चावाच मैथिलीं हर्षयन्त्युत	१३
नियमैर्विविधैराप्तं तपो हि महदस्ति मे ।	
तत्संश्रित्य दलं सीते छन्दये त्वां शुचिब्रतं	१४
उपपन्नं च युक्तं च वचनं तव मैथिलि ।	
प्रीता चास्म्युच्यतां सीते करवाणि प्रियं च किम्	१५
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्या विस्मिता मन्दविस्मया ।	
कृतमित्यववर्त्तसीता तपोबलसमाश्रिताम्	१६
सा त्वेवमुक्ता धर्मज्ञा तया प्रीततराभवत् ।	
सफलं च प्रहर्षे ते हन्त सीति करोम्यहम्	१७
इदं दिव्यं वरं माल्यं वस्त्रमाभरणानि च ।	
अङ्गरागं च वैदेहि महार्हमनुलेपनम्	१८

जाओगी । नारीश्रेष्ठ रोहिणी मुहूर्त भरके लिये भी अपने पति चन्द्रमासे अलग नहीं पाई जाती । एवं अरुन्धती आदि श्रेष्ठ नारियाँ पतिसेवाह्वय पुण्य-कर्मके प्रभावसे स्वर्गमें वाम करती हैं ।' (१-१२)

सीताके ऐसा कहने पर अनुसूया अनि हर्षित हो सीताका शिर संधु बोली- 'हे जनकतन्दिनि ! मैंने अनुष्ठानोंद्वारा जो तपोबल एकत्र किया है उससे मैं तुमको वर दिया चाहती हूं कोई वर मांगो । हे सीते ! तुम्हारा कथन युक्तिसंगत और पवित्र है जिससे मैं सन्तुष्ट हुई हूं, अतः कहो तुम्हारा मैं क्या प्रिय करूं ?' अनुसूयाका वाक्य सुन सीता उससे बोली कि 'आपके अनुग्रहसे मेरी मध कामना पूर्ण हो गई ' यह सुन और भी प्रसन्न हो अनुसूया कहने लगी कि ' हे सीते ! तुमको देव मुझे बहुतही आनन्द हुआ है इसलिए कोई उचित वर दे मैं अपने आनन्दको सगल कहूंगी ।

मया दत्तमिदं सीते तव गात्राणि शोभयेत् ।	
अनुरूपमसंक्लिष्टं नित्यमेव भविष्यति	१९
अङ्गरागेण दिव्येन लिप्ताङ्गी जनकात्मजे ।	
शोभयिष्यसि भर्तारं यथा श्रीविष्णुमव्ययम्	२०
सा वस्त्रमङ्गरागं च भूषणानि स्रजस्तथा ।	
मैथिली प्रतिजग्राह प्रीतिदानमनुत्तमम्	२१
प्रतिगृह्य च तत्सीता प्रीतिदानं यशस्विनी ।	
निष्ठुष्टाञ्जलिपुटा धीरा समुपास्त तपोधनाम्	२२
तथा सीतामुपासनामनसूया दृढव्रता ।	
यचनं प्रष्टुमारभे कथां कांचिदनु प्रियाम्	२३
स्वयंवरे किल प्राप्ता त्वमनेन यशस्विना ।	
राघवेणेति मे सीते कथा श्रुतिमुपागता	२४
तां कथां श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण च मैथिलि ।	
यथाभूतं च कात्स्न्येन तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि	२५
एवमुक्ता तु सा सीता तापसी धर्मचारिणीम् ।	
श्रूयतामिति चोक्त्या वै कथयामास तां कथाम्	२६

हे मैथिली ! यह दिव्य माला, श्रेष्ठ वस्त्राभूषण केशर कर्पूरमिश्रित चन्दन और बहुमूल्य उबटन तुम्हें देती हूँ । इन सब वस्तुओंके व्यवहारसे तुम्हारे शरीरकी शोभा निरन्तर बनी रहेगी । हे सीते ! यह केशर आदि मिश्रित अङ्गराग है इसको लगा लक्ष्मी जैसे विष्णुकी वैसें तुम रामकी शोभाको बढ़ाओगी ।' ततः सीताने अनुसूयाद्वारा प्रीतिप्रदत्त यह वस्त्राभूषण अंगराग व माला ग्रहण कीं । एवं सीता उक्त वस्तुएं ग्रहण कर अञ्जलि बांध धीर भावसे अनुसूयाकी उपासना करने लगीं । (१३-२२)

सीताको देख अनुसूया कोई प्रियवार्ता सुननेकी इच्छासे पूछने लगी- 'हे सीते ! मैंने सुना है कि यशस्वी रामने तुमको स्वयंवरमें प्राप्त किया है । सो मैं तुम्हारे स्वयंवरका हाल विस्तारपूर्वक सुनना चाहती हूँ ।' यह सुन सीता अनुसूयासे बोली, 'मैं कहती हूँ आप सुनिये । मिथिलापुरीके

मिथिलाधिपतिर्वीरो जनको नाम धर्मवित् ।	
क्षत्रकर्मण्याभिरतो न्यायतः शास्ति मेदिनीम्	२७
तस्य लाङ्गलहस्तस्य कृपतः क्षेत्रमण्डलम् ।	
अहं किलोत्थिता भित्त्वा जगतीं नृपतेः सुता	२८
स मां दृष्ट्वा नरपतिर्मुष्टिविक्षेपतत्परः ।	
पांसुगुण्ठितसर्वाङ्गी विस्मितो जनकोऽभवत्	२९
अनपत्येन च स्नेहादङ्कमारोप्य च स्वयम् ।	
ममेयं तनयेत्युक्त्वा स्नेहो मयि निपातितः	३०
अन्तरिक्षे च वायुक्ता प्रतिमा मानुषी किल ।	
एधमेतन्नरपते धर्मेण तनया तव	३१
ततः प्रहृष्टो धर्मात्मा पिता मे मिथिलाधिपः ।	
अवाप्तो विप्लानृद्धिं मामवाप्य नराधिपः ।	३२
दत्ता चास्मीप्यद्वैतै ज्येष्ठायै पुण्यकर्मणे ।	
तया संभाविता चास्मि स्निग्धया मातृसौहृदात्	३३
पतिसंयोगसुलभं धयो दृष्ट्वा तु मे पिता ।	
चिन्तामभ्यगमदीनो चित्तनाशादिव्याधनः	३४
सदृशाद्यापकृष्टाच्च लोके कन्यापिता जनात् ।	

शासक जो महावीर जनक राजा हैं, वह धर्मानुसार पृथिवीका पालन करते हैं । यज्ञके लिये हल ग्रहण कर जब वह खेत जोतने लगे तो मैं पृथिवी विदीर्ण कर हलके आगे प्रकट हुईं । मेरा समस्त शरीर धूलसे धूसरित था । पृथिवीमें खोज बोते हुए महाराज मुझे देख अचम्भा करने लगे । उनके कोई सन्तान नहीं थी, इसलिये मुझे वह पुत्री समझ बड़ा प्यार करने लगे । उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि राजन् ! यह कन्या तुम्हारे क्षेममें उत्पन्न होनेसे तुम्हारी पुत्री है । धर्मान्ना जनक यह आकाशवाणी सुन बड़े आनन्दको प्राप्त हुए । (२३-३२)

‘तदनन्तर उन्होंने मुझे अपनी पटरानीको मौंय दिया, जो मेरा मातृगुरू लालनपालन करने लगीं । जब मेरी विवाहयोग्य अवस्था हुई तो पिता

प्रधर्षणमवाप्नोति शक्रेणापि समो भुवि	३५
तां धर्षणामदूरस्थां सदृश्यात्मनि पार्थिवः ।	
चिन्तार्णवगतः पारं नाससादागृहो यथा	३६
अयोनिजां हि मां ज्ञात्वा नाध्यगच्छन्स चिन्तयन् ।	
सदृशं चाभिरूपं च मर्हापालः पतिं मन	३७
तस्य बुद्धिरियं जाता चिन्तयानस्य संततम् ।	
स्वयंवरं तनूजायाः करिष्यामीति धर्मतः	३८
महायज्ञे तदा तस्य वरुणेन महात्मना ।	
दत्तं धनुर्वरं प्रीत्या तूष्णीं चाश्रय्यसायकौ	३९
असचाल्यं मनुष्यैश्च यत्नेनापि च गौरवात् ।	
तन्न शक्ता नमयितुं स्वमंश्वपि नराधिपाः	४०
तद्धनुः प्राप्य मे पित्रा व्याहृतं सत्यवादिना ।	
समवाये नरेन्द्राणां पूर्वमामन्व्य पार्थिवान्	४१
इदं च धनुरुद्यम्य सज्यं यः कुरुते नरः ।	
तस्य मे दुहिता भार्या भविष्यति न संशयः	४२

व्याकुलचित्त हो चिन्ता करने लगे । क्योंकि हृदसमान भी कन्याका पिता वरके पक्षवालोंसे अनादरको प्राप्त होताही है । उस असन्मानके होनेमें कुछ देरी न देख पिता जनक चिन्तासागरमें निमग्न हो गये । नुन्नको अ-योनिज देख अनेक प्रयत्न करनेपर भी मेरे समान वह योग्य वर न पा सके अतः वह मदा चिन्तानुर रहते थे । तदनन्तर उन्होंने सोचा कि धर्मानुसार कन्याका स्वयंवर रचना चाहिये । पुराकालमें वरुणे जनकके पूर्वज देवराट-को दक्षके यज्ञमें धनुष और अक्षय बाणोंसे पूज्य दो तरफसे दिये थे । यह धनुष इतना भारी था कि देवतासे लेकर मनुज्यतक कोई भी उसे खलाय-मान नहीं कर सकता था । मेरे पिता राजा जनकने वह धनुष पा राजाओं को निमन्त्रित किया और उन सबके आगे बोले, आप लोगोंमेंसे जो भी इस धनुषको उठा इसमें प्रयत्न चटा देगा, मेरी कन्या उसीकी भार्या बनेगी । ( ३३-४२ )

तच्च दृष्ट्वा धनुः श्रेष्ठं गांरवाद्गिरितानिभम् ।	
अभिवाद्य नृपा जग्मुःशक्तास्तस्य तोलने	४३
सुदीर्घस्य तु कालस्य राघवोऽयं महाद्युतिः ।	
विश्वामित्रेण सहितो यज्ञं द्रष्टुं समागतः	४४
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा रामः सत्यपराक्रमः ।	
विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा मम पित्रा सुपूजितः	४५
प्रोवाच पितरं तत्र राघवौ रामलक्ष्मणौ ।	
सुतौ दशरथभ्येमौ धनुर्दर्शनकाङ्क्षिणौ	४६
इत्युक्तस्तेन विप्रेण तद्धनुः समुपानयत् ।	
तद्धनुर्दर्शयामास राजपुत्राय दैविकम्	४७
निमेषान्तरमात्रेण तदानय्य महाबलः ।	
ज्यां समारोप्य शश्टिनि पूरयामास शीर्यदान्	४८
तेनापूरयता वेगान्मध्ये भग्नं द्विधा धनुः ।	
तस्य शब्दोऽभवद्भीमः पतितस्याशनेर्यथा	४९
ततोऽहं तत्र रामाय पित्रा सत्याभिसंधिता ।	
उद्यता दातुमुद्यम्य जलभाजनमुत्तमम्	५०
दीयमानो न तु तदा प्रतिजग्राह राघवः ।	

‘ राजन्यगण उष धनुषरत्नको देव उत्तकं उदानेमें उद्यत हुए पर सफल-  
मनोरथ न हो धनुषको प्रणाम कर चले गये । धनुष समपरे पीछे श्रीराम  
विश्वामित्र ऋषिके साथ राजा जनकका यज्ञ देखनेको वहां आये । महाराज  
जनकने भाई लक्ष्मण सहित समागत राम और विश्वामित्रकी बड़ी पूजा  
की । तब विश्वामित्रने महाराजके कहा कि राजा दशरथके पुत्र यह राम  
और लक्ष्मण आपका धनुष देखना चाहते हैं । मन्त्रिके ऐसा कहनेपर  
राजाने वह धनुष मैकड़ी बीरोसे उठरा रामको दिखलाया । महाबली  
रामने धगधगसे उस धनुषको झुका उसपर प्रत्यक्षा चढ़ा दी । दड़े बलसे  
प्रत्यक्षा चढ़ानेसे वह धनुष टूट कर दो टुक हो गया । उसी समय मलय-  
प्रतिज्ञ पिता जनकने मुझे रामके हाथमें गौरवनेकी तपस्वी की । (४३-५०)

दि० १८ (अक्षय्य उ )

प्रणम्य शिरसा पादौ रामं त्वभिमुखी ययौ	१२
तथा तु भूयितां सीतां ददर्श वदतां वरः ।	
राघवः प्रीतिदानेन तपस्विन्या जहर्ष च	१३
न्यवेदयत्ततः सर्वे सीता रामाय मैथिली ।	
प्रीतिदानं तपस्विन्या वसनाभरणस्त्रजाम्	१४
ग्रहपृस्त्वभवद्रामो लक्ष्मणश्च महारथः ।	
मैथिल्याः सन्क्रियां दृष्ट्वा मानुषेषु सुदुर्लभाम्	१५
ततः स शर्वरीं प्रीतः पुण्यां शशिनिभाननाम् ।	
अर्चितस्तापसैः सर्वैरुवास रघुनन्दनः	१६
तस्यां राज्यां व्यतीतायामभिषिच्य हुताग्निकान् ।	
आपृच्छेतां नरव्याघ्रौ तापसान्वनगोचरान्	१७
तावचूस्ते धनचरास्तापसा धर्मचारिणः ।	
वनस्य तस्य संचारं राक्षसैः समभिप्लुतम्	१८
रक्षांसि पुरुषादानि नानारूपाणि राघव ।	
वसन्त्यस्मिन्महारण्ये व्यालाश्च रुधिराशनाः ।	१९
उच्छिष्टं वा प्रमत्तं वा तापसं ब्रह्मचारिणम् ।	
अदन्त्यस्मिन्महारण्ये तान्निवारय राघव	२०

शिरसे अनुसूयाको प्रणाम कर रामके निकटको गमन किया । बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ रामने सीताको अलंकृत देख अनुसूयाके प्रीतिदानसे आनंद लाभ किया । अनुसूयाने प्रीतिपूर्वक वस्त्र आभूषण और माला जो सीताको दी थीं वह सब सीताने रामसे निवेदन किया । मनुष्योंमें दुर्लभ सीताका स्पर्कार देख राम-लक्ष्मण बड़े प्रसन्न हुए । ततः राम तपस्वियोंसे पूजित हो चन्द्रवदना सीताको देख प्रीतिपूर्वक उस रात्रिमें वहां सोये । उस रात्रिके बीतनेपर स्नानसे निवृत्त हो अग्निहोत्र कर राम-लक्ष्मण दोनोंने वनवासी तपस्वियोंसे अपने योग्य सेवा पूरी । धर्मचारी वनवासी तपस्वी उनसे बोले कि ' इस वनमें राक्षसोंका बड़ा उपद्रव होता है । नानारूप मनुष्यभक्षक राक्षसगण और मांसाशी जीव इस बड़े वनमें बसते हैं । वे अपवित्र वा असावधान तपस्वीको

एष पन्था महर्षीणां फलान्याहरतां वनं ।

अनेन तु वनं दुर्गं गन्तुं राघव ते क्षमम् २१

इतीरितः प्राञ्जलिभिस्तपस्विभिर्द्विजैः कृतस्थस्त्ययनः परंतपः ।

वनं सभार्यः प्रविवेश राघवः सलक्ष्मणः सूर्यं हवाभ्रमण्डलम् २२

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे

विंशोत्तरशततमः सर्गः ॥ १२० ॥ [ ४३५६ ]

॥ इति अयोध्याकाण्डं समाप्तम् ॥

खा जाते हैं । हे राम ! इस वनमें उनका निवारण कीजिये । महर्षिगणका वनमेंसे फल लानेका यही मार्ग है, इससे होकर आप दुर्गम वनमें गमन कर सकेंगे ।' हाथ जोड़े हुए तापस द्विजोंके ऐसा निवेदन कर चुकनेपर शत्रुको तपानेवाले राम, लक्ष्मण और भार्यासहित, भ्रमण्डलमें सूर्यके समान उस वनमें प्रविष्ट हुए । (१२-२२)

॥ अयोध्याकाण्ड समाप्त ॥



# रामायण-चरित्र-माला

(१)

## राममाता कौसल्या

(लेखक- वाल्मीकिवाचप्रदीप पं० विष्णु दामोदर पण्डित)

राममाता कौसल्या दक्षिण कोसल देशके राजा भानुमान्की कन्या और उत्तर कोसल देशके अर्थात् अयोध्याके राजा दशरथ की श्रेष्ठ महिषी थी। इस कौसल्याके विषयमें आनन्द-रामायणमें ऐसा वर्णन मिलता है-

अयोध्यायास्तु सान्निध्ये देशे श्री कोसलाह्वये ।

कोसलायां महापुण्यः कोसलाख्यो नृपोऽभवत् ॥ ३२ ॥

तस्यासीद्दुहिता रम्या कौसल्या पतिकामुका ।

तस्यां दशरथेनाग्रे विवाहो निश्चितो मुदा ॥ ३३ ॥

(आनन्द-रामायण, सारकाण्ड अ. १)

अर्थात् उत्तर कोसल देशके साथ दक्षिण कोसल देश लगा हुआ था। उत्तर कोसलकी राजधानी अयोध्या थी। दक्षिण कोसल देशकी राजधानी कोसला थी। यहाँ पुण्यशील राजा राज्य करता था। उसकी रूखती सुन्दरी कन्या कौसल्या नाम की थी। वह कन्या उपव्रत होनेपर उसका विवाह दशरथके साथ करनेका निश्चय हुआ और थोड़े समयके पश्चात् यह विवाह हुआ। इससे दशरथ और कौसल्या ये भाई बहन थे, ऐसा जैनबौद्ध ग्रंथोंके आधारपर जो कई विद्वान् कहते हैं, वह असंगत है, ऐसा सिद्ध होता है। इस कोसल राजाका नाम अर्थात् कौसल्याके पिताका नाम भानुमान् था।

कौसल्याको उस समयके रिवाजके अनुसार एक सहस्र ग्राम 'स्त्रीधन' रूपमें पितासे मिले थे। (देखो अयोध्या-काण्ड, सर्ग ३१ श्लोक २२-२३)

### कौसल्याका वैवाहिक जीवन

दशरथ राजा का प्रेम कैकेयी राणीपर था, अतः वह प्रायः कैकेयीके

महलमेंही रहता था। इसलिये कौसल्याके विषयमें वह उतना प्रेम नहीं दिखाता था। कैकेयीके साथ विवाह होनेतक जो पतिमुख कौसल्याको मिला होगा वही होगा, क्योंकि कैकेयी भी कौसल्याका अपमान बारबार करती रहती थी। तथापि शीघ्रही रामको राज्य मिलेगा, तब मुझे सुखके दिन आयेंगे, ऐसा विचार करके कौसल्या सब दुःख सहन करती रहती थी। यह बात कौसल्याके भाषणमेंही स्पष्ट होती है—

न दृष्टपूर्वं कल्याणं सुखं वा पतिप्राप्तेः ।

अपि पुत्रे विषयेयं इति रामास्थितं मया ।

( अयोध्याकाण्ड स. २० )

पर रामका वनवास होनेके कारण कौसल्याकी सब आशाएं विनष्ट हो गयीं और वह पूर्ण रूपसे उदास बनी।

## गृहिणी कौसल्या

जब अनेक बार प्रार्थना करनेपर भी कैकेयीने कुछ भी न सुना और रामको वनवासके लिये अरण्यमें भेजना अनिवार्य हुआ, तब दशरथको कौसल्याका स्मरण हुआ। तब उसने कहा—

यदा यदा हि कौसल्या दासीव च सखीव च ।

भार्यावत् भगिनीवञ्च मातृवञ्चोपतिष्ठति ॥ ६९ ॥

( अयो. १२ )

‘ मेरी रानी कौसल्या दासीके समान, सखीके समान, भार्या और बहनके समान, तथा माताके समान हर एक प्रकारकी मेरी सेवा शुभ्रूपा करनेके लिये उपस्थित रहती है। मैंने उनके साथ उदासीनताका व्यवहार किया, पर उसके अन्दरकी पतिनिष्ठा कम नहीं हुई। इस दशरथके भाषणसे स्पष्ट होता है कि कौसल्या आदर्श गृहिणी थी।

## कौसल्याका शीट

जिन दिन श्रीराम वनवासमें गये, उसी दिनमें राजा दशरथ कौसल्याके मंदिरमें रहने लगे। श्रीराम और सीताके वनवास जानेके दिन कौसल्याने

पुत्रशोकसे संतप्त होकर राजा दशरथको बहुत कुछ बुराबला कहा (देखो अयोध्या० म ४३-४४) । तब राजा दशरथने कौसल्याके सामने हाथ जोड़े और उससे क्षमा मांगी । तब कौसल्याको मालूम हुआ कि “मेरा यह भाषण पतिव्रता स्त्रीके लिये योग्य नहीं हुआ, पति कैसा भी हुआ तो भी उसकी निन्दा करना पत्नीके लिये कदापि योग्य नहीं है । अतः अपना भाषण कुलीन पतिव्रता स्त्रीके लिये अयोग्य हुआ ।” जब यह विचार कौसल्याके मनमें आया, तब उसको पश्चात्ताप हुआ और वह बड़ी जोरसे रोने लगी और उसने कहा कि “केवल पुत्रशोकसे विवश होकर मैंने ऐसा भाषण किया, मैं क्षमाकी याचना करती हूँ ।” इसके पश्चात् कभी कौसल्याने ऐसा भाषण नहीं किया । अन्ततक पतिके साथ रहकर यह उसकी उचित सेवाही करती रही ।

कैकेयी कौसल्याकी बारबार निन्दा करती थी, पर कौसल्याका बर्ताव कैकेयीके साथ बहिनके समानही होता था । देखो—

तथा ज्येष्ठा हि मे माता कौसल्या दीर्घदर्शिना ।

त्वयि धर्म समास्थाय भगिन्यामिद्य वर्तते ॥

(अयो. ३३।१०)

भरतने कैकेयीसे कहा कि ‘माता कौसल्या तेरे साथ भगिनीके समान वर्ताव करती है और तुम्हारा बर्ताव इस तरह क्यों हुआ ?’

### कौसल्याका पुत्रवात्सल्य

श्रीराम वनमें जानेके पश्चात् कौसल्या पुत्रशोकसे मंत्रल हुई और वह दशरथसे बोली—

अथास्मिन्नगरे रामः चरन् भैक्ष्यं गृहे वसेत् ।

कामकारो वरं दातुं अपि दासं ममात्मजम् ॥ (अयो. ४३।४)

‘यदि कैकेयी अपने पुत्र-भरतके लिये राज्य देना चाहती थी, तो वह भले ही राज्य ले लेती, पर श्रीरामचन्द्रके लिये वनवासका घर मांगनेकी उसके लिये कोई आवश्यकता नहीं थी । राम यहीं घरमें रहता और घरघरमें

भीख मांगकर अपना निर्वाह कर सकता था। इससे भरतको राज्य मिल जाना और राम मेरे पास रहता और पुत्रशोककं कष्ट मुझे न होते।' तथा—  
 त्वद्वियोगात्त मे कार्ये जीवितेन सुखेन च ।

त्वया सह मम श्रेयः तृणानां अपि भक्षणम् ॥

(अयो. २१।२६)

‘हे राम ! तेरे वियोगसे मुझे सुखमय जीवन कदापि प्राप्त नहीं होगा, परंतु तेरे साथ रहते हुए मैं घाम ग्राकर भी आनन्दसे रहूंगा।’ इससे कौसल्याका पुत्रप्रेम प्रकट होता है। इतना शोक होनेपर भी कौसल्याकी मनोवृत्ति धर्ममार्गसे भ्रष्ट नहीं हुई। वह पुत्रशोकसे दशरथको कठोर भाषण बोली, पर तत्कालही पश्चात्तापपूर्वक उसने क्षमाकी भी याचना की। इससे स्पष्ट होता है कि वह पूर्ण रूपसे पतिमता-धर्मपर सुदृढ़ थी और साथ साथ पुत्रवत्सला भी थी।

वैकेयाँवे कहनेके अनुसार रामको वनवास हुआ, यह देखकर लक्ष्मण बहुतही क्रोधित हुआ और बोला कि—

गुरोरप्यवलितम्य कार्याकार्यमजानतः ।

उत्पथप्रतिपन्नम्य कार्ये भयानि शासनम् ॥

अमित्रभूतो निःसंगं चध्यतां वध्यतां अपि ।

(अयोध्या. २१।१३)

‘पिता भी क्यों न हो, वह कार्याकार्य न जानता हो और तेरे मार्गसे जाने लगे, तो उसको शासन करना योग्य है। जो शत्रु होगा उसका वध किया जाय, अथवा उसको बधनमें रखा जाय, यही योग्य है।’ ऐसा जब क्रोधित लक्ष्मणने कहा, तब कौसल्या बोली—

भ्रातुस्ते वदतः सौम्य लक्ष्मणस्य धृतं त्वया ।

यदग्रानंतरं तत्त्वं कुरुष्व यदि रोचते ॥ (अयो. २१।२१)

‘हे राम ! तेरे भाई लक्ष्मणका यह भाषण तुमने सुना ही है, अब यदि तुझे यह पसंद है, तो ऐसा कर।’ ऐसा कहनेमें कौसल्याने ऐसा करनेको आज्ञा नहीं दी, श्रुत्य ‘तुमने यह पसंद नहीं। पर यदि तू चाहता

है तो कर' ऐसा भाव यहां स्पष्ट है। मित्राज्ञाके अनुसार वनगन्त करनेके लिये रामचन्द्र कितना मित्र है, यह देखनेका भी यहाँ कौमल्याका उद्देश्य होगा।

कई लोग कहते हैं कि, कौमल्याने यहां लक्ष्मणके कहनेके अनुसार करने के लिये अनुज्ञा दी, यह ठीक प्रतीत नहीं होता। कौमल्या जैसी धर्मरिद्ध पतिव्रता अपने पतिका वध या कारावास करनेके लिये आज्ञा देगी, वह संभवही नहीं है।

इस समय कौमल्या के सामने दो प्रश्न थे, एक पतिभक्ति और दूसरा पुत्रप्रेम ! वृद्धावस्थामें कौमल्याको पतिने दूर रहना भी योग्य नहीं था और पुत्रका वियोग भी उसके लिये अगह ही था। पर क्षमनात्र उसने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा कि 'तू मुझे अपने साथ वनमें ले चलो' तब श्रीरामने कहा कि—

कैकेय्या वंचितो राजा मयि चारण्यमाश्रितः ।

त्वया चैव परित्यक्तः न नूनं वर्तयिष्यति ॥ (अयो. २१।११)

'कैकेयीसे वंचित हुआ राजा, मेरे अरण्यमें जानेके बाद यदि तू भी यहां न रही, तो निःसंदेह मर जायगा।' इसलिये तेरा यहां रहना राजाके हितके लिये आवश्यक है, ऐसा कहनेपर कौमल्याने वह मान लिया है। इससे उसकी पतिभक्ति उत्तम रीतिसे व्यक्त होती है। ऐसी पतिव्रता भी पतिका वध करनेके लिये अनुज्ञा देगी, यह संभवही नहीं है।

### कौमल्याका सीताके लिये उपदेश

जब सीता रामके साथ वनमें जानेके लिये मित्र हुई तब कौमल्याने उसको अपने हृदयके साथ मिलाया और प्रेमसे जो उपदेश किया, वह प्रत्येक स्त्रीको अन्तःकरणमें धारण करने योग्य है। यहां कौमल्याने सीता को प्रथम अमती स्त्रियोंके लक्षण कहे और पश्चान् सतीके लक्षण बताये हैं—

असत्यः सर्वलोकेऽस्मिन् सततं सत्कृता प्रियैः ।

भर्तारं नानुमन्यन्ते विनिपातगतं स्त्रियः ॥२०॥

एष स्वभावो नारीणां अनुभूय पुरा सुखम् ।

अल्पामप्यापदं प्राप्य दुष्यन्ति प्रजहत्यपि ॥२१॥

असत्यशीला विकृता दुर्गा अहृदयः सदा ।

असत्यः पापसंकल्पाः क्षणमात्रविरागिणः ॥२२॥

न कुलं न कृतं विद्यां न दत्तं नापि च श्रुतम् ।

स्त्रीणां गृह्णाति हृदयं अनित्यहृदया हि ताः ॥२३॥

(अयोध्या ३९)

‘जो स्त्रियां पतिव्रता नहीं, उनको कितना भी सुख दिया तोभी वे कष्टके समयमें पतिकी सेवा नहीं करती, उस कठिन समयमें वे पतिका तिरस्कार भी करती हैं। असती स्त्रियां ऐश्वर्यके समयमें सुख भोगती हैं, पर विपत्कालमें पतिकी तिरस्कारपूर्वक निंदा करती हैं। अमती स्त्रियाँ असत्य-भाषणी, कुकर्म करनेमें तत्पर, दुष्ट पुरुषोंके पीछे जानेवाली, अपने पतिपर प्रेम करती नहीं और पर पुरुषपर प्रेम करती हैं। अल्प कारणसे ही पतिका द्वेष करने लगती हैं। अमती स्त्रिया अपने पतिके कुल, पुरुषार्थ, ज्ञान, दान, बहुश्रुतपन आदिकी पवाँह नहीं करती। ऐसी अमन्मार्गप्रवृत्त स्त्रियां पुरुषके कुलकी अथवा यशकी पवाँह नहीं करती, वे पर पुरुषपर रत रहती और पापकर्म करती हैं। इसका कारण यह है कि, इनका चित्त अत्यंत चञ्चल रहता है और उनका प्रेम भी क्षणभंगुरही रहता है।’

इस तरह कौसल्याने अमती स्त्रियोंके लक्षण कहकर पश्चात् साध्वी स्त्रियोंके लक्षण कहे, सो अब देखो-

साध्वीनां तु स्थितानां तु शीले सन्ये ध्रुते स्थिते ।

स्त्रीणां पवित्रं परमं पतिरेको विशिष्यते ॥ २४ ॥

‘सती स्त्रियां शीलयुक्त तथा सच्चरित्रयुक्त होती हैं, वे सन्तानिष्ठ रहती हैं, श्रेष्ठ पुरुषोंके उपदेशोंपर उनकी धृढता होती है, कुलमर्यादाका पालन वे करती हैं, कुलके यशका संरक्षण करती हैं। सत्र धर्मोंमें एक पतिव्रता-धर्मका पालनही श्रेष्ठ धर्म है।’ अतः हे सीते-

स त्वया नाचमंतव्यः पुत्रः प्रयाजितो धनम् ।

नच देवसमस्त्वेयो निर्धनः सधनोऽपि वा ॥ २५ ॥

‘तू इस ( रामचन्द्र ) का कभी अपमान न कर, यद्यपि यह वनमें भेजा गया है, तथापि यह तेरे लिये आदरणीयही है, देवताके समान यह तेरे लिये पूजनीय है । यह धनवान् हो अथवा निर्धन, यह तेरे लिये सेवा करने योग्य ही मद्रा है । ’

इस तरह कौसल्याने प्रथम दुर्वृत्त स्त्रियोंके दुर्गुणोंका वर्णन करके सीताको बताया कि इन दुष्ट भावोंसे तुम्हें बचना चाहिये । तथा आगे सद्गुण स्त्रियोंके सुलक्षण कहकर उसको कहा कि इन सुलक्षणोंको धारण करना चाहिये ।

### कौसल्याका दातृत्व

कौसल्याका दातृत्व बहुतही बड़ा था । प्रतिवर्ष गुरुकुलसे सेकड़ों स्नातक कौसल्याके पास आते थे और अपने विवाहके लिये सहायता मांगते थे । कौसल्या उन समका विवाह करा देती थी और उनको और भी यथेष्ट द्रव्य देती थी, जिससे उनका संसार अच्छी तरह चल सकता था । राम वनवास को जाने लगा, उस समय वह लक्ष्मणसे कहता है-

मेखलीनां महासंघः कौसल्यां समुपस्थितः ।

तेषां सहस्रं सौमित्रे प्रत्येकं संप्रदापय ॥ २१ ॥

( अयो० ४२ )

‘ स्नातकोंका संघ कौसल्याके पास दान मांगने आया है, उनमेंसे प्रत्येक को हे लक्ष्मण ! सहस्र सुवर्ण मुद्राओंका दान कर । ’ अर्थात् इससे उनका विवाह भी होगा और उनका संसार भी अच्छी तरह चलेगा ।

इससे पता लगता है कि कौसल्याके पास कितनी संख्यामें दान मांगनेके लिये स्नातक आते थे । इतना दानधर्म कौसल्या करती थी ।

राममाता कौसल्या और युधिष्ठिरमाता कुन्तीकी तुलना

कौसल्याका पुत्रप्रेम अन्धा है, ऐसा प्रतीत होता है । अपना पुत्र

अपनेसे दूर न होवे, पुत्रसे अपना वियोग न हो, पुत्रको भीक मांग-  
नेका अवसर आ गया तो भी हर्ज नहीं, पर वह अपनेसे दूर न हो ।  
उसको दीन अवस्थामें रहनेका समय आ गया तो भी हर्ज नहीं, परंतु  
वह दूर न जाय, ऐसी इच्छा कौमल्याकी दीवती है । अर्थात् कौसल्याके  
पुत्रप्रेममें पुत्रकी अभ्युदयकी इच्छा दीवती नहीं है ।

‘ मेरा पुत्र राम बड़ा होकर जब राजा होगा, तब मुझे मुम्बके दिन  
दीयेंगे ’ यही कौमल्याकी इच्छा प्रतीत होती है । ‘ अपने पुत्रपर अन्याय  
है, उसका राज्य छीना गया है, यह अयोग्य हुआ है । निष्कारण वह  
दुःखमयी अवस्थातक गिराया गया है, इसका राज्य उसको शीघ्र मिलना  
चाहिये ’ इत्यादि बातें कौमल्याके मनमें आयी नहीं है । देखिये, कौमल्या  
ऐसा बोल रही है—

त्वद्वियोगाच्च मे कार्यं जीवितेन सुखेन वा ।

त्वया सह मम श्रेयः तृणानामपि भक्षणम् ॥२६॥

( अयोध्या २१ )

अथास्मिन्नगरे रामः चरन्भक्ष्यं गृहे वसेत् ।

कामकारो वरं दातुं अपि दासं ममात्मजम् ॥२७॥

( अयोध्या. ४३ )

‘ हे राम ’ तेरा वियोग होनेपर मुझे जीवनसे क्या कार्य है और सुख-  
साधनोंसे भी क्या करना है ‘ तेरे साथ मैं घाम ग्राकर भी आनन्दमें  
रहूंगी । मेरा राम इस नगरमें रहे और चाहे भीख भी मांगे, अथवा दाम  
बनकर भी रहे, पर मुझसे दूर न हो । कैकेयीका पुत्र चाहे राज्य प्राप्त करे  
और मेरा पुत्र उसका दाम बने । ’ यह कौमल्याका भावण स्पष्ट है । इस  
में उसका पुत्रप्रेम अन्धा है ऐसा स्पष्ट दीवती है । इसमें वीरताकी  
अलंका थिठकुल नहीं है । पुत्रके जीवितकी दुर्दशाकी कल्पना भी मिलकुल  
नहीं, पुत्र अपने पास रहे इतनी ही इच्छा यहां है । इसमें राजकारण कुछ  
भी नहीं है । इसके साथ दुर्गतीकी मुन्ना करो ।



कुन्ती वनमें न जाय, अपने पास रहे, इस इच्छासे युधिष्ठिरका भाषण ऐसा है-

यदा राज्यमिदं कुन्ति भोकव्यं पुत्रनिर्जितम् ।

प्राप्तव्या राजधर्मास्ते तदेयं ते कृतो मतिः ॥२५॥

किं वयं कारिता कुन्ति भवत्या पृथिवीक्षयम् ।

वनाच्चापि किमानीता भवत्या बालका वयम् ॥२६॥

प्रसीद मातर्मा गास्त्वं वनमद्य यशस्विनि ।

श्रियं यौधिष्ठिरां तावत् भुङ्क्व मातर्वलार्जिताम् ॥२८॥

( म० भा० आश्रमवासिक पर्व, कुन्ती-प्रस्थान, अ. १६।१७ )

‘ हे कुन्ती ! तेरे पुत्रोंने शत्रुका पराभव करके राज्य प्राप्त किया है, ऐसे समयमें राज्यश्रीका भोग करना छोड़कर वनमें जानेकी बुद्धि तेरी क्यों हुई है ? यदि तुम्हें राज्य नहीं चाहिये था, तो इतना धीरोंका संहार क्यों हमसे करवाया ? हम वनमें गये हों थे, फिर हमें वापस क्यों लाया ? हे माता ! प्रसन्न हो, वनमें न जा । मैंने स्वपराक्रमसे प्राप्त की राज्यसंपदाका भोग कर । ’ इस पर कुन्ती क्या कहती है, सो देखों-

एवमेतद् महाबाहो यथा वदसि पाण्डव ।

कृतं उद्धर्पणं पूर्वं मया चः सीदतां नृपाः ॥१॥

यूतापहृतराज्यानां पतितानां सुखादपि ।

ज्ञातिभिः परिभूतानां कृतं उद्धर्पणं मया ॥२॥

कथं पाण्डोर्न नश्यत सन्ततिः पुरुषर्षभाः ।

यशश्च वो न नश्येत इति चोद्धर्पणं कृतम् ॥३॥

यूयं इन्द्रसमा लोके देवतुल्यपराक्रमाः ।

मा परेषां मुखप्रेक्षाः स्थ इत्येवं तत्कृतं मया ॥४॥

कथं धर्मभूतां श्रेष्ठः राजा त्वं धर्ममाश्रितः ।

पुनर्वने न दुःखी म्याः इति चोद्धर्पणं कृतम् ॥५॥

नाहं राज्यफलं पुत्राः कामये पुत्रनिर्जितम् ।

पतिलोकानहं पुण्यान् कामये तपसा वृतान् ॥६॥

श्वश्रुश्वशुरयोः पादान् शुद्धयन्ती वने त्वहम् ।  
गांधारीसहिता वन्ये तापसा मलपंक्तिनी ॥७॥

( म. भा. आश्रमव्यासिकपर्व, सर्ग १७ )

‘ हे दुर्धरि ! तेरा कहना सत्य है । तुम्हारी अवनति हो रही थी, इसलिये तुम्हारे उद्धारके लिये मैंने तुम्हें उन्नतिका उपदेश किया था । धूम्रमें तुम्हारे शत्रुओंने तुम्हारे राज्यका अपहरण किया था, इसलिये तुम सब प्रेक्षयोंसे वंचित हो गये थे, अपने ज्ञातिबंधधर्मसे तुम पीड़ित हुए थे, इसलिये तुम्हारे उद्धारका उपदेश मैंने तुम्हें किया था । किम उपायके करनेमें पाण्डुकी संतान नष्ट नहीं होगी, और उनका यश भी विनष्ट नहीं होगा, इसका विचार मैं रानदिन करती थी और उनके परिणामस्वरूप मैंने तुम्हारा उन्माह बढ़ाया था । तुम इन्द्रके समान तेजस्वी और देवोंके समान पराक्रमी हैं, अतः तुम्हें उचित नहीं था कि तुम दूसरेके सुखकी ओर नाकते रहे, इसलिये मैंने तुम्हारा उन्माह बढ़ाया था । तुम सब धर्माचरण करनेवालोंमें श्रेष्ठ और धर्मानुवृत्त आचरण करनेवाला महा राजा है, ऐसे तुम्हें वनवास जैसी आपत्ति फिरसे प्राप्त न हो इसलिये मैंने तुम्हारा उन्माह बढ़ाया था । तुमने कनाये राज्यका उपभोग लेने हुए बैठनेकी मेरी इच्छा नहीं है । परंतु मैं अपने तपोबलसे पतिलोककी प्राप्तिकी इच्छा करती हूँ । अब पाण्डुका वंश नष्ट होने लगा था उसका उद्धार हो चुका है । तुम विनाशके गहमें गिर रहे थे, उनकी उन्नति हो गयी है । इस तरह मेरे जीनेका मार्गक हुआ है । इसलिये पतिव्रताधर्मका आचरण करके गांधारी और धूमराष्टकी सेवा करनेमें अपना अन्तिम आशुष्य व्यतीत करनेकी मैं इच्छा करती हूँ, इस हेतु मैं अब तपोवनमेंही जाऊंगी । ’

अब कौमल्या और कुन्तीने वचनोंकी तुलना कीजिये-

( १ ) कौमल्या-

न दृष्टपूर्वं कल्याणं मुखं या पतिपौरुषे ।

अपि पुत्रे विपश्येयं इति रामास्थिरं मया ।

( मैंने पतिसं सुख या कल्याणका अनुभव नहीं किया था अब मेरा

पुत्र बड़ा होगा और मुझे सुख देगा, इस विश्वाससे मैंने जीवन धारण किया था ।)

कुन्ती—

नाहं राज्यफलं पुत्राः कांक्षये पुत्रनिर्जितम् ।

पतिलोकानहं पुण्यान् कांक्षये तपसार्जितान् ॥

( मैं पुत्रोंसे प्राप्त किये राज्यसुखकी इच्छा नहीं करती, परंतु तपसे प्राप्त पुण्य पतिलोककी प्राप्ति करनेकी इच्छा करती हूं । )

( २ ) कौमल्या—

अथास्मिन्नगरे रामश्चरन्भैक्ष्यं गृहे वसेत् ।

कामकारो वरं दातुं अपि दासं ममात्मजम् ॥

( इस अयोध्या नगरीमें राम भीक मांगता हुआ भी घरमें रहे, अथवा मेरा पुत्र दासेही क्यों न बने, पर राम घरमें रहे ऐसा वर लेना था । )

कुन्ती—

यूयं इन्द्रसमा लोके देवतुल्यपराक्रमाः ।

मा परेषां मुखप्रेक्षाः स्थेल्ययं तत्कृतं मया ॥

( तुम इन्द्रके समान तेजस्वी और देवोंके समान पराक्रमी हो, इसलिये दूसरोंके मुख तारुने न रहो इसलिये मैंने तुम्हें बैसा उत्साह बढ़ानेकी उपदेष्टा किया था । )

( ३ ) कौमल्या—

त्वद्विर्योगाच्च मे कार्यं जीवितेन सुखेन वा ।

त्वया सह मम श्रेयः तृणानामपि भक्षणम् ।

( तेरा वीर्योग होनेपर मेरे जीवितमें और सुखसे मुझे क्या प्रयोजन है ? तेरे साथ मैं घास खाकर भी आनंदसे रहूंगी । )

कुन्ती—

कथं पांडोर्न नश्येत् सन्ततिः पुरुषर्षभाः ।

यदाश्च वो न नश्येत् इति चोद्धर्षणं कृतम् ।

( पाण्डुकी संतान किस उपायसे नष्ट न हो और उनका यश किस

तरह बिनाशको प्राप्त न हो, इसलिये मैंने वह उत्साहवर्धनका उपदेश तुम्हें किया था । )

इसमें स्पष्ट प्रतीत होता है कि कौसल्याकी मनोदशा अत्यंत उत्साह-हीन हो चुकी थी, उनका उत्साह भारा गया था और उममें महत्त्वाकांक्षा बिलकुल ही नहीं रही थी । संभवतः यह बात ऐसी इसलिये बनी थी कि राजा दशरथका उनसे बर्ताव ठीक न था और कैकेयी भी उनका द्वेष करती थी और कौसल्याका कुछ चलता नहीं था ।

पर भुतीका अभिमान और उत्साह कैसा जाग्रत था और महत्त्वाकांक्षा कैसी तीव्र थी, वह उनके भाषणसेही प्रकट हो रहा है । कुन्तीके स्वभावमें जो वीरता है, उसके लिये इतिहासमें दूसरा तुलना करनेके लिये स्थानही नहीं है । वही तेजस्विता कौमल्यामें नहीं थी ।

( २ )

## लक्ष्मणमाता सुमित्रा

सुमित्रा मगध देशके शूरमेन राजाकी कन्या थी और दशरथकी तीन रानियोंमें बीचकी रानी थी । कौमल्यासे नीचे और कैकेयीसे ऊपर इसका स्थान था । इसके विषयमें आनन्द-रामायणकार ऐसा लिखते हैं—

ततो राजा दशरथः सुमित्रां मगधेशजाम् ।

वियाहेनापरां पत्नीं चकार दयितां प्रियाम् ॥

( आनन्द मारकाण्ड २।३० )

“ मगध राजाकी कन्या सुमित्राके साथ दशरथ राजाने अपना विवाह किया और उसे अपनी प्रिय पत्नी कर लिया । ” इसमें स्पष्ट होता है कि सुमित्रा राजकन्या नहीं थी, वह हीन कुलकी कन्या थी, ऐसा जो कड़-योने प्रचार चलाया है, वह निराधार है । यदि सुमित्रा राजकन्या न होती और हीन कुलमें उत्पन्न हुई कन्या होती, तो उसका मुख्य रानियोंमें समा-वेश होता अशुभव ही था । वह मुख्य तीन रानियोंमेंसे एक थी, इसमें भी मिथ है कि वह राजकन्या थी ।

हे० रा. १९ ( अथर्वशा. उ. )

कैकेयीके साथ विवाह होनेके पश्चात् जैसा कौसल्यासे तथा सुमित्रासे भी दशरथका मन वैसा प्रेमपूर्ण नहीं रहा जैसा कि रहना चाहिये था । पर सुमित्रा अत्यंत गम्भीर स्वभावकी थी, इसलिये कैकेयीके विवाहसे जो परिस्थितिमें बदल हुआ, वह उसने ठीक तरह जान लिया और अपना मन शान्त रखकर जैसा कौसल्याके साथ वैसाही कैकेयीके साथ अपना सुचारु संबंध रखा और अपना सुमित्रा नाम सार्थ किया ।

इस सुमित्राने अपने एक पुत्र लक्ष्मणको श्रीरामचन्द्रजीके साथ और दूसरे पुत्रको भरतके साथ रखकर अपना दोनोंके साथ संबंध जोड़ दिया । राम राजा हो या भरत, अपना पुत्र उसमेंसे प्रत्येकके साथ है, इसलिये अपनी स्थिति भावी राजाके साथ उसने सुरक्षित कर दी । यह प्रसंगके अनुकूल बर्ताव करनेका कौशल्य सुमित्रामें स्पष्ट दीखता है और वह उसकी बुद्धिमत्ताकी उत्तम साक्षी दे रहा है ।

सुमित्रा शान्तताप्रिय थी, इसलिये राजकारणसे सदा पृथक् ही रहती थी । तथापि प्रसंग आनेपर सत्पक्षको सहाय्य भी करती थी । जब श्रीराम वनमें जाने लगे, उस समय उसने अपने पुत्र लक्ष्मणको उसके साथ जानेका उपदेश करते समय कहा—

सृष्टस्त्वं धनवासाय स्वनुरक्तः सुहृज्जने ।  
 रामे प्रमादं मा कार्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति ५  
 व्यसनी वा समृद्धो वा गतिरेप तवानघ ।  
 एष लोकं सतां धर्मः यज्ज्येष्ठवशगो भवेत् ६  
 इदं हि वृत्तं उचितं कुलस्यास्य सनातनम् ।  
 दानं दीक्षा च यज्ञेषु तनुत्यागो मृधेषु च ७  
 लक्ष्मण त्वेवमुक्त्वासौ संसिद्धं प्रियराघवम् ।  
 सुमित्रा गच्छ गच्छेति पुनः पुनरुवाच तम् ८

( अयोध्या. सर्ग २० )

“ हे लक्ष्मण ! तेरा प्रेम रामपर विशेष ही है । इसलिये उसके साथ

वनवासमें जानेकी आज्ञा मैं तुम्हें देती हूँ । राम अपने मित्रोंपर अत्यंत प्रेम करनेवाला है, वह वनमें जाता है, उसके साथ तुं जा, पर सदा सावध रह-कर उसकी सेवा कर । राम आपनिमें हो या संपत्तिमें हो, वही तेरे लिये सेवा करने योग्य है । ज्येष्ठ भाईकी सेवा करनाही सज्जनोंका सर्वसंमत धर्म है । ज्येष्ठ भाईके अनुकूल वर्ताव करनाही तुम्हारे कुलके अनुकूल है, वही तेरे कुलकी परंपरा है, वैसेही सत्पात्रमें दान, यज्ञ-दीक्षा और युद्धमें देहत्याग ये इस क्षत्रिय कुलके आचार हैं । ”

ऐसा उपदेश करनेके पश्चात् सुमित्राने लक्ष्मणसे कहा कि ‘हे लक्ष्मण, तू जा, अवश्य जा ’ तथा उसने और भी कहा—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ।

अयोध्यां श्रद्धयां विद्धि गच्छ तात यथासुखम् ॥

“हे लक्ष्मण! रामको दशरथसमझे, सीताकोही मेरे स्थानमें मानो और वनको अयोध्या जानो और सुखसे अरण्यमें जाओ । ”

इस तरह सुमित्रा दोनों रानियोंके साथ समभावसे व्यवहार करती थी । तथापि वह सत्पक्षका पालनभी करती थी । इसलिये कौमल्याके साथ अन्याय किया जा रहा है यह देखकर भी अपने प्रिय पुत्र लक्ष्मणको श्रीरामके साथ वनमें जानेके लिये उसने आज्ञा दी ।

जब रामचन्द्र कौमल्याके मन्दिरमें गया और अपने वनवास जानेका वृत्तान्त उसने कौमल्यामें कहा, तब सुमित्रा वहां थी, कौमल्याके शोक करनेपर उसका सुमित्राने सान्त्वन किया । इतनीही नहीं, परंतु राम वापस आनेतक कौमल्याकी सेवा शुद्धूपा भी उसीने यथोचित रीतिसे की ।

दशरथका प्राणोत्क्रमण कौमल्याके मंदिरमेंही हुआ, उस समय सुमित्रा वहीं थी । इसमें पता लगता है कि वह रामके वनवास-गमनमें वहीं कौमल्याकी महापत्न्या रहीं थी ।

श्रीरामके साथ वनमें जानेके लिये लक्ष्मणको उत्साहित करनेमें सुमित्राकी बड़ी दूरदर्शिता दिखाई देती है । क्योंकि लक्ष्मण स्वभावसे तीक्ष्ण

स्वभावका था और बड़ा क्रोधी भी था । कैकेयीके इस तरहके बर्तावके कारण लक्ष्मणका मन भरतके विषयमें बड़ा दूषित हुआ था और भरतपर तथा कैकेयीपर वह बड़ाही क्रुद्ध हुआ था । उसने कहा भी था कि—

भरतस्याथ पक्ष्यो वा यो नास्य हितमिच्छति ।

सर्वोस्तांश्च वधिष्यामि मृदुर्हि परिभूयते १४

( अयोध्या सर्ग २१ )

“भरत, उसका हित करनेवाला अथवा उसके पक्षका जो भी होगा, उसका अथवा उन सबका मैं बध करूँगा । अब नरमीसे काम नहीं लिया जायगा ।” तथा और—

अपि द्रक्ष्यामि भरतं यत्कृते व्यसनं महत् ।

न्यया राघव संप्राप्तं सीतया च मया तथा २१

यन्निमित्तं भवान् राज्याच्च्युतो राघव शाश्वतात् ।

संप्राप्तोऽयं अरिर्वीर भरतो वध्य एव हि २२

भरतस्य वधे दोषं नहि पश्यामि राघव ।

पूर्वापकारिणं हत्या न ह्यधर्मेण युज्यते २३

पूर्वापकारी भरतः त्यागे धर्मश्च राघव ।

एतस्मिन् निहते कृत्स्नां अनुशाधि वसुन्धराम् २४

अथ पुत्रं हतं संख्ये कैकेयी राज्यकामुका ।

मया पश्येत् सुदुःखार्ता हस्तिभिन्नमिव द्रुमम् २५

कैकेयीं च वधिष्यामि सानुवन्धां सवान्धवाम् २६

शराणां धनुपश्चाहं अनृणोऽस्मिन् महाहवे ।

ससैन्यं भरतं हत्वा भविष्यामि न संशयः ३०

( अयोध्या. सर्ग १६ )

“हे रामचन्द्र ! जिस भरतके कारण आप राज्यसे भ्रष्ट हो गये हैं और आप को, सीताको और मुझको यह बड़ा संकट प्राप्त हुआ है, वह भरत यदि मेरे सम्मुख आयेगा, तो बड़ाही अच्छा होगा । यह भरत यहां अब सम्मुख

आगया है, अब यह वधके लिये योग्य है। हे राघव ! भरतका वध करनेमें तो किसी तरह दोष नहीं है। जो प्रथम अपराध करता है, उसका वध करनेमें कोई दोष नहीं है। इसलिये उसका वध करना इस समय योग्यही है। इसका वध करनेसे तुम संपूर्ण पृथ्वीका अधिपति हो जाओगे। राज्यकी अभिलाषा करनेवाली यह कैकेयी अपने पुत्रका वध होनेसे दुःखी हो जावे। इतनाही नहीं परंतु उनके बन्धु-बान्धवोंके समेत कैकेयीका भी वध मैं कर दालूंगा। यह देखो मैं आज सेनाके समेत भरतका वध करके अपने बाणोंके और धनुष्यके क्रणसे मुक्त हो जाऊंगा।”

लक्ष्मणके इस भाषणसे पता लगता है कि यदि केवल रामही अकेला वनमें चला जाता और लक्ष्मण अयोध्यामें रहता, तो लक्ष्मण क्रोधके मारे भरतदिको वध करनेके लिये भी प्रवृत्त होता और आपसी युद्धमें अयोध्या में बड़ा रक्तपात हो जाता। यह देखकर दूरदृष्टिसे सुमित्राने लक्ष्मणको रामके साथ वनमें जानेके लिये आज्ञा दी और आपसी झगडा बढने नहीं दिया और राज्यके ऊपर आनेवाला बड़ा संकट दूर किया। साथ साथ राम और सीताकी रक्षा भी की और रामके साथ मित्रताभी संपादन की।

## कैकेयी और सुमित्राकी तुलना ।

कैकेयी अत्यंत स्वार्थी और सुमित्रा अत्यंत स्वार्थन्यायी थी। अपने पतिके प्राणोंकी भी पर्वा न करके अपने पुत्र भरतको राज्य प्राप्त हो, इस इच्छासे कैकेयी घोर कर्मसे पीछे नहीं हटती है, परंतु सुमित्रा राज्यका संकट दूर करने, आपमके झगडे दूर करने और श्रीरामचन्द्रकी सहायता करनेके लिये अपने पुत्रको वन भेजती है।

कैकेयी अति क्रोधी थी तो सुमित्रा अत्यंत शान्त थी।

कैकेयी और सुमित्रा दोनों पुत्रवामन्यवती थीं, परंतु कैकेयी स्वार्थी और सुमित्रा निःस्वार्थी थी।

कैकेयी स्वभावसे दुष्ट दीगमती नहीं है, पर सारामार विचार करनेमें पूर्णतया असमर्थ दीम्बती है, अतः यह मन्थराके कहनेसे ऐसा घोर कर्म



करनेमें प्रवृत्त हुई । परंतु सुमित्रा गंभीर व स्वतंत्र विचार करनेवाली थी, इसलिये उसने अच्छा मार्ग निकाला और अपने पुत्रको रामके साथ बन भेज दिया ।

इस तरह कैकेयी और सुमित्राके स्वभावकी तुलना है ।

( ३ )

## भरतमाता कैकेयी

कैकेयी केकय देशके अश्वपति राजाकी कन्या और दशरथकी तृतीय धर्मपत्नी थी और इसपर दशरथकी अत्यंत प्रीति थी । देवामुर-संग्राममें दशरथ राजा देवोंकी सहायतार्थ गया था, वह युद्धमें घायल होकर मूर्च्छित हुआ और उसका सारथी मारा गया, ऐसे समयमें कैकेयीने सारथ्य-कर्म किया और बड़े धैर्यसे दशरथका रथ रण-क्षेत्रसे बाहर निकाला और दशरथको सुरक्षित स्थानमें पहुंचा दिया और वहां उसकी अन्यंत सेवा-शुश्रूषा करके उसको मृत्युमे बचाया । इस कारण भी दशरथ राजा कैकेयीपर अति प्रमत्त था ।

इस तरह दशरथ राजाके प्राण रक्षण करनेके कारण कैकेयी रानी कौमल्या, सुमित्रा और तीन सौ पचास अन्य रानियोंके सौभाग्यका संरक्षण करनेके लिये कारण बनी थी । अर्थात् सभी रानियोंपर उसके बड़े उपकारही थे, अतः वह सबसे अधिक राजाको प्रिय थी, इसमें क्या संदेह हो सकता है । इस कारण कैकेयी अन्य रानियोंका अपमान ही करती थी, परंतु मुख्य रानी कौसल्याको भी वह अपमानित करती थी । तथापि मन्थरा द्वारा कुविचारका फैलाव करनेतक कैकेयीके मनमें रामके विषयमें किसी तरह बुरा विचार उत्पन्न नहीं हुआ था । इतनाही नहीं, परंतु श्रीरामपर कैकेयी प्रेमही करती थी । इस विषयमे वाल्मीकिकाही वचन देखिये—

मन्थराया वचः श्रुत्वा शयनात् सा शुभानना ।

उत्तस्थां हर्षसंपूर्णा चन्द्रलेखेव शारदी ३६

अतीव सा तु सन्तुष्टा कैकेयी विस्मयान्विता ।

दिव्यं आभरणं तस्य कुब्जायै प्रददौ शुभम् ३७

दत्त्वा त्वाभरणं तस्यै कुञ्जार्थं प्रमदोत्तमा ।

कैकेयी मन्थरां दृष्ट्वा पुनरेवाऽब्रवीत् इदम् ३३

इदं तु मन्थरं मह्यं आख्यात परमं प्रियम् ।

एतन्मे प्रियमाख्यातं किं वा भूयः करोमि ते ३४

रामे वा भरते वाऽहं विशेष नोपलक्षये ।

तस्मात् तुष्टास्मि यत् राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति ३५

न मे परं किञ्चिदितो वरं पुनः ।

प्रियं प्रियाहं सुयचो वचोऽमृतम् ॥

तथा ह्यवोचस्थमतः प्रियोत्तरम् ।

वरं परं ने प्रददामि तं वृणु

३६

( अयोध्याकाण्ड सर्ग १ )

“ रामको दूसरथ राजा यौत्रराज्यका अभिषेक करनेवाला है, यह वचन श्रवण करके कैकेयी अत्यंत प्रसन्न हुई और क्षणमे उठकर मन्थराको अत्यंत मूल्यवान् आभूषण अर्पण करके बोली, हे मन्थर ! तूने यह अर्घ्यत प्रिय वृत्त मुझे इस समय कहा है । इसलिये मैं तेरा और अधिक प्रिय क्या करूं, कह । राम और भरतमें मुझे कुछ भी न्यूनार्थक प्रतीत नहीं होता है । रामके लिये कल राज्याभिषेक होगा यदि सुनकर मैं अत्यंत मनुष्ट हो गया हू । अतः कह कि मैं तेरा और कौनसा प्रिय करूं ? ”

कैकेयीका यह भाषण मन्थराको बिलकुल पसंद नहीं आया और कैकेयीकी मूर्खता देखकर उसको बहुतही बुरा लगा । तथा उसने कैकेयीसे कहा कि— ‘ हे कैकेयी ! यदि राम राजा हुआ तो तेरा और भरतका कितना अधःपात होगा, इसका तू विचार तो कर । तू भी कौमत्याकी दामी बनकर रहेगी । भरत तो रामका दासही होगा । इत्यादि अनेक प्रकारसे उस कुञ्जाने कैकेयीके मनमें विष भर दिया । तथापि कैकेयीने नहीं माना और मन्थरासे अन्तमें कहा—

धर्मज्ञो गुणवान् दान्तः कृतज्ञो सत्यवान् शुचिः ।

रामो राजसुतो ज्येष्ठो यौवराज्यं अतोऽर्हति १७

भातृन् भृत्याश्च दीर्घायुः पुत्रवत् पालयिष्यति ।

संतप्यसे कथं कुञ्जे धृत्वा रामाभिषेचनम् १५

भरतश्चापि रामस्य ध्रुवं वर्षशतात् परम् ।

पितृपैतामहं राज्यं अवाप्स्यति नरर्षभः १६

सा त्वं अभ्युदये प्राप्ते दृष्टमानेव मन्थरे ।

भविष्यति च कल्याणे किमिदं परितप्यसे १७

यथा वै भरतो मान्यः तथा भूयोऽपि राघवः ।

कौसल्यातोऽतिरिक्तं च मम शुश्रूषते बहु १८

राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत् तदा ।

मन्यते हि यथात्मानं तथा भ्रातृस्तु राघवः १९

(अयोध्या. सर्ग ८)

कैकेयी मन्थरासे कहती है कि—“राम बड़ा धर्मज्ञ, गुणवान्, मनोनिग्रही, कृतज्ञ और पवित्र आधारवाला है। तथा सब भाइयोंमें उभेष्ट है। इसलिये वही युवराज-पदके लिये योग्य है। यदि राम राजा हुआ तो वह सब भाइयोंका और सब अन्योका अच्छा पालन करेगा। रामका राज्याभिषेक होगा, यह सुनकर हे कुञ्जे! तुझे दुःख क्यों हो रहा है? रामके पश्चात् अपना पितृपितामहसे चला आया राज्य भरतको भी प्राप्त होगा। यह तो अत्यंत शुभ समय है, ऐसे समयमें आनन्द करनेके स्थानपर तू दुःख क्यों करती है? जैसा भरत तुझे प्रिय है, वैसाही राम तुझे उससे भी अधिक प्रिय है। वह मेरा अधिक प्रिय करता है। अतः रामको राज्य प्राप्त होनेसे वह भरतको ही प्राप्त होनेके समान है। राम सब भाइयोंको समानही मानता है।”

इस भाषणसे कैकेयीका मन प्रथम कैसा शुद्ध था, इसका पता लग सकता है। कौसल्याका अपमान कैकेयी करती थी, पर रामके विषयमें उसका मन दोषयुक्त नहीं था। मन्थराने उसके मनमें जो विष भर दिया, उससे वह दोष आगे उत्पन्न हुआ। यद्यपि कैकेयी स्वभावतः झुरी नहीं थी, तथापि दूसरेके द्वारा भड़काई जानेपर भड़क उठनेवाली थी। अर्थात् वह स्वयं सत्य असत्य निर्णय करनेमें असमर्थ थी।

कैकेयीके विवाहके समय राजा दशरथने कैकेयीके पिताको, कैकेयीके पुत्रको राज्य देनेका वचन दिया था। इस विषयमें श्रीरामकाही वचन देखने योग्य है—

पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्रहन् ।

मातामहे समाधौषोत् राज्यशुल्कं अनुत्तमम् ३

( अयोध्याकाण्ड, सर्ग १०७ )

‘ हे भरत ! तेरे पिताने तेरी माताके साथ विवाह करनेके समय तेरे मातामहको ऐसा वचन दिया कि राज्य कैकेयीके पुत्रकोही दिया जाएगा । ’

यह रामचन्द्रका भाषण उस समयका है जिस समय भरत चित्रकूट पर्वतपर जाकर रामको वापस आनेका आग्रह कर रहा था और इसके लिये नायोपवेशन करनेके लिये भी सिद्ध था ।

यदि यह वचन सत्य माना जाय, तो सत्यप्रतिज्ञ दशरथ राजाने भरतको राज्य न देते हुए, रामकोही राज्य देनेकी कार्रवाही क्यों की ? ( बा. कां ६।२-५ ) तथा यदि इस वचनका पता श्रीरामको था, तो उसने दशरथको अपना वचन सत्य करनेकी सूचना क्यों नहीं दी ? कदाचित् ऐसा होना सम्भव है कि पुत्रने ‘ पिताकी आज्ञा ’ मान्य करनी चाहिये, अन्य बातें करनेकी पुत्रको क्या आवश्यकता है ?

मन्थराको भी इस वचनका पता नहीं था, नहीं तो कैकेयीको बहकानेके लिये इस वचनका वह अवश्यही उपयोग कर लेती। संभव है इस वचनका पता मन्थराको न हो अथवा उसी वचनको मुट्ठ करनेके लिये दूसरे दो बरोंका उसने आश्रय लिया हो। तथापि मन्थराको इसका पता होता तो वह उसका उद्देश्य अवश्य करती, अतः यही अनुमान हो सकता है कि उसको इस वचनका पता नहीं था ।

संभव है कि विवाहके समय उसके सामने यह वचन न दिया गया हो। हमसे पता चलता है कि यह वचन दशरथ और कैकेयीका पिता राजा अश्व-पतिके बीचमें एकान्तमें ही दिया गया होगा और रामको उसका पता

पीछेसे किसी तरह लगा होगा । इस वचनको शपथका स्थायी स्वरूप भी प्राप्त न हुआ होगा । क्योंकि वचन एक बार बोलना और बात है और प्रतिज्ञा-पूर्वक उसका विचार उच्चार करके शपथ करना और बात है । तथापि इस वचनका आश्रय करके राजा युधाजित्-अश्वपतिके पुत्र-युवराज भरतका पक्ष लेकर इस वचनकी पूर्ति करानेके लिये रामके राज्याभिषेकमें विघ्न उत्पन्न करनेका संभव था । इसीलिये रामका राज्याभिषेक भरतको मामाके घर रखकर ही करानेकी इच्छा दशरथने की थी ।

शादी आदिके समय दिये वचन प्रतिज्ञाके स्वरूपके नहीं होते, ऐसा भी एक पक्ष है । इस विषयमें स्मृतिवचन देखिये—

कामिनीषु विवाहेषु गवां भक्षे तथेन्धने ।

ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे नास्ति पानकम् ॥

( मनु अ. ८, श्लोक ११२ )

विवाहमैथुननर्मार्तसंयोगेषु अदोषं एके अनृतम् ॥

( गौतम अ ६ )

उद्वाहकाले रतिसंप्रयोगे प्राणात्यये सर्वधनापहारे ।

विप्रस्य चार्थं हानृतं वंदेयुः पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥

( वसिष्ठ स्मृ. अ. १६ )

न नर्मयुक्तं वचनं हिनस्ति न स्त्रीषु राजन् न विवाहकाले ॥

प्राणात्यये सर्वधनापहारे पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥

( म. भा. आ. पर्व ८२-१६ )

इन वचनोंके अनुसार विवाह-समय, रतिकाल, सर्व धनका अपहार होनेके समय, प्राण जानेके समय, विद्वान् ब्राह्मणका वचाव करनेके लिये असत्य बोला जाय, तो वह दोषकारी नहीं होता । इस वचनके अनुसार दशरथने अपने विवाहके समय दिया हुआ वचन उसके लिये बंधनकारी नहीं हो सकता, ऐसा कई कहते हैं ।

ये सब वचन हैं । विद्वान् वाचक इनका विचार करें । अस्तु ।

मन्थराने कैकेयीके मनमें स्वार्थका विष भर दिया, तब वह स्वार्थवश

होकर अन्ध बन गयी । अपने पतिकी मृत्युकी भी उसे पता न रही । ऐसी कैकेयीकी अवस्था देखकर वृद्ध मंत्री सुमन्त्र बड़े क्रोधसे कहने लगा कि- 'हे कैकेयी ! तू अपने स्वार्थके लिये अपने पतिका बलिदान करनेके लिये भी तैयार हो गयी है, यह तेरी माताका दुष्ट स्वभाव तेरे अन्दर उतरा है ।' ऐसा कहकर कैकेयीकी माताका वर्णन उसने कहा । वह वर्णन ऐसा है-

“कैकेयीका पिता अश्वपति राजा सिद्ध पुरुषके प्रसादसे सब पशुपक्षियोंकी भापाजोंको जानता था । उस सिद्ध पुरुषने यह विद्या राजाको सिखा देनेके समय यह भी उसे कहा था कि 'यदि तू इस भापाका मतलब किसी दूसरेसे करेगा, तो उसी क्षण तेरी मृत्यु होगी ।' एक समय एक जृम्भ नामक पक्षीका भापण सुनकर वह राजा अश्वपति हंस पड़ा । कैकेयीकी माताने वह देखकर हंसनेका कारण पूछा । राजाने कहा कि 'यदि मैं यह तुम्हें बता दूँ तो तत्काल मेरी मृत्यु होगी । अतः तुझे मैं यह बता देनेमें असमर्थ हूँ ।' उसपर वह बोली, 'चाहे तू मर जा, पर मुझे इसका आशय बता दे । अन्यथा मैं अभी मर जाऊँगी ।' तब वह राजा बड़ा दुःखी हुआ और साधुके पास जाकर उसने साधुको सब वृत्तान्त कह सुनाया और पूछा कि अब क्या करना चाहिये । तब उम मिद्ध पुरुषने कहा कि 'वह चाहे मर जाय । यदि तू जीवित रहना चाहता है, तब तो तुम्हें उचित है कि यह बात उससे न कहो ।' इस तरह राजा अश्वपतिने कैकेयीकी माताका त्याग किया, जिसमें उसका प्राण बचा और वह आनन्दसे रहने लगा ।

सुमन्त्रने यह बात इस समय राजा दशरथको इसलिये सुनाई कि वह भी अपने बचावके लिये ऐसाही करे । वह कैकेयीका त्याग करे और अपनी जान बचावे । पर दशरथमें यह धैर्य नहीं था और रामने भी कैकेयीके वचनका स्वीकार करके वनमें जानेके लिये अपनी मिद्वता की थी । इस कारण सुमन्त्रके इस सूचनाका कोई परिणाम दशरथपर नहीं हुआ । ( अयो. स. ३५ श्लो. १७-२८ देखो )

इस तरह कैकेयीकी माताका वृत्तान्त भी कैकेयीके समानही निरम्करगोद है । इसीलिये कहने है कि विवाहमें कुशल देखना चाहिये ।

# श्रीवाल्मीकि-रामायण

अयोध्याकाण्डके उत्तरार्धका

निरिक्षेप

## १. रावणके साम्राज्यका नाश करनेकी इच्छा करनेवाले ऋषि और मुनि

रावणके आसुरी साम्राज्यका नाश करनेकी आयोजना ऋषि और मुनियोंने श्रीरामके जन्मके पूर्वही राजा दशरथके राजसूय और पुत्रकामेष्टि यज्ञमें की थी। देवजातिके नेता इसकी सहायता गुप्त रूपसे कर रहे थे, पर भारतके उस समयके ३०० राजगण इस आयोजनामें किसी तरह शामिल नहीं हुए थे। इस विषयमें इस समयतक बहुत लिखा गया है। अब ऋषि मुनि इस आसुरी साम्राज्यके नाशके लिये किस तरह यत्न करते थे, वह बात यहां देखिये—

तमप्रतिमतेजोभ्यां भ्रातृभ्यां रोमहर्षणम् ।

विस्मिताः संगमं प्रेक्ष्य समुपेता महर्षयः १

अन्तर्हिता मुनिगणाः स्थिताश्च परमर्षयः ।

ततस्त्वृषिगणाः क्षिप्रं दशग्रीववधैपिणः ।

भरतं राजशार्दूलं इत्यृचुः संगता वचः ४

कुले जात महाप्राज्ञ महावृत्त महायशः ।

ग्राह्यं रामस्य वाक्यं ते पितरं यद्यवेक्षसे ५

सदानृणमिमं रामं वयमिच्छामहे पितुः ।

अमृणत्वाच्च कैकेय्याः स्वर्गं दशरथो गतः ६

एतावदुक्त्वा वचनं गंधर्वाः समहर्षयः ।

राजर्षयश्चैव तथा सर्वे स्वां स्वां गतिं गताः ७

( अयोध्या. सर्ग ११३ )

“उन असीम तेजस्वी बन्धुओंका शरीरपर रौंवे खड़े करनेवाला यह वार्तालाप श्रवणकरके वहां गुप्त रूपसे (अन्तर्हिताः मुनिगणाः) इकट्ठे हुए मुनि और ऋषिगण आश्चर्यसे गहद हुए। गुप्त रूपसे संचार करनेवाले वे ऋषिमुनि राम और भरतकी बहुत प्रशंसा करने लगे। रावणका आमुरी साम्राज्य नष्ट करने उस हुए रावणका वध करनेकी इच्छा करनेवाले वे मुनिगण वहां इकट्ठे होकर भरतसे बोलने लगे— ‘हे भरत ! तुम कुलीन, ज्ञानी, सदाचारी और बड़ा यशस्वी हो। इस कारण तुम वैमाही आचरण करो जैसा कि श्रीरामचन्द्रजी महाराज कह रहे हैं। ऐसा करना तुम्हें योग्य है। राम कदापि पिताके क्रणमें न रहें। हम तो यही चाहते हैं। रामके वनवासमें आनेसे राजा दशरथ कैश्यीके क्रणसे मुक्त हो गये और मरलः स्वर्गधामको पधारे हैं। इसलिये रामचन्द्रजी वनमेंही रहें और भरत अयोध्यामें जाकर राज्य करें।’ ऐसा बोलकर वे ऋषिमुनि जैसे गुप्त मार्गसे आये थे, वैमर्कः गुप्त रीतिसे चले गये।

इससे स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि ये ऋषिमुनि रावणके आमुरी साम्राज्यका नाश करनेकी आयोजनामें लगे थे। उस आयोजनाकी सफलताके लिये राम और लक्ष्मणका वनमें रहना आवश्यकही था। रामचन्द्र वनमें न रहते तो भागेका प्रबंध सफल होना सर्वथा असंभव था। भरतके कहनेके अनुसार यदि उस समय रामचन्द्र अयोध्यामें चले जाते और वनमें न रहते, तो ऋषियोंकी आयोजना सफल न होती। इसलिये ऋषि मनसे यही चाहते कि श्रीरामचन्द्रजी वनमेंही निवास करें। रामायणका वर्णन देखनेसे ऐसा स्पष्ट मालूम होता है कि ऋषिमुनि रामचन्द्रजीकी हलचलपर अत्यन्त दृष्टि रखते थे। जहां जहां श्रीरामचन्द्रजीके वापस अयोध्या जानेका संभव उत्पन्न होता था वहां कहींसे अचानक ऋषि आते थे और किसी न किसी मुनिमें उनको वनमेंही रहनेकी सलाह देते थे। उसी तरह राम और भरतके संवाद होनेके समय ऋषियोंका अचानक आना और भरतको अयोध्यामें रहने तथा रामको वनमेंही रहनेकी मंत्रणा देना, यह प्रसंग अनेक प्रसंगोंमें एक है।

संपूर्ण रामायणमें ऋषि-मुनियोंकी यह गुप्त हलचल देखने योग्य है।



को यथावत् जानते थे, तथापि इनमेंसे किसीने भी श्रीरामचन्द्रजीको इस समयतक इस विषयमें कुछ भी नहीं कहा था, क्योंकि इस समय कहना उचित भी नहीं था ।

भरद्वाज ऋषि तथा दूसरे गुह्य रूपसे संचार कर नेवाले ऋषिमुनि ये सब भरतमें इतनाही कहते थे कि 'कैकेयीपर क्रोध न करो,' राम भी वैसाही कहते थे । यद्यपि श्रीरामचन्द्रजीको ऋषियोंकी हलचलका बिलकुल पता नहीं था, तथापि ऋषिमुनि सब उस बातको जानते थे । ये सब एकही बात कहते हैं और ऐसा भी कहते हैं कि रामके वनवाससे सब जगत्का कल्याण होगा, इसलिये इनको वह कल्याण किस परिणाममें होनेवाला है, इसका पता अवश्य ही था । श्रीरामचन्द्रजीको यद्यपि ऋषियोंके अन्दरकी बातका पता नहीं था तथापि राक्षसोंका उपद्रव कम करना चाहिये, इतना तो वे अच्छी तरह जानते ही थे ।

ऋषि विश्वामित्रने जो श्रीरामचन्द्रजीको शिक्षा दी थी, उसमें राक्षसनाश करनेकी बात बीजरूपसे थी । उसके पश्चात् उसने स्वयं वनवासमें राक्षसोंका उपद्रव प्रत्यक्ष देखा था और अनेक ऋषिमुनियोंने उसे कहाभी था । संभव है कि वे ऋषि भी आयोजनाका स्वरूप जानते ही होंगे । रामचन्द्रजी अत्यंत बुद्धिमान् थे, अतः जो देखा उससे उन्होंने अवश्यही सब परिस्थिति जानही ली होगी । सब ऋषि तो रावणका नाश करनेके लिये दृढ़परिकर थेही, इस लिये श्रीरामचन्द्रजीमें ऋषिमुनियोंके जो जो चार्तालार हुप होंगे, उन सबका एकही परिणाम श्रीरामचन्द्रजीपर होना था । यह मान लिया जायगा कि ऋषियोंने वैसी प्रकट बात नहीं की होगी, तथापि सबका संकेत एकही होगा और वह यह कि राक्षसोंके विषयमें उनके मनमें अग्रीति उत्पन्न करना । यह तो ऐसाही श्रीरामचन्द्रजीके मनमें धन चुका था ।

### ऋषियोंके कथन

चित्रकूटमें चलकर श्रीरामचन्द्रजी अत्रि ऋषिके आश्रमको पहुँचे । अत्रि ऋषि तथा उनकी धर्मपत्नी अनुमूयाने राम, लक्ष्मण और सीताका बड़ा

स्वागत किया और उनको कुछ समयके लिये अपने आश्रममें ठहराया। सती अनुसूयाने सीताको पुष्पमाला, वस्त्र तथा अभूषण दिये, तथा उबटना भी ऐसा दिया कि जिसके लगानेसे शरीर सतेज रह सके। साध्वी सीताने उस सबका स्वीकार किया। यह पुष्पमाला सदा ही उत्तम अवस्थामें रहनेवाली थी, वस्त्र ऐसा था कि जो कभी मलिनही न हो सके और उबटना तो शरीरका तेज बढानेवाला था।

अत्रि ऋषिकी आज्ञा लेकर जब रामचन्द्रजी आगे चलने लगे, तब वहाँके सभी ऋषि रामसे बोले कि “यहाँ राक्षसोंका बहुत ही उपद्रव होता है, उसका निवारण करना तुम्हें योग्य है।” (अयोध्या० ११९-२०)

ऋषियोंने आगे जानेका मार्ग श्रीरामचन्द्रजीको बता दिया। तब राक्षसोंका नाश करनेका विचार करते हुए श्रीरामने उस वनमें प्रवेश किया। श्रीरामचन्द्रजीका इसके आगेका प्रयत्न राक्षसोंका नाश करनेके विषयमें ही हुआ है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है। इन राक्षसोंका केन्द्र कहां है, इसकी भी खोज उन्होंने की होगी। क्योंकि वालीके वधके समय रामचन्द्रजीने कहा है कि “इस वनका राज्य मुझे राजा दशरथ ने दिया है और इस वनमें जो दुष्ट हैं, उनको दण्ड देना मेरा कर्तव्य ही है। मैं यहाँका राजा हूँ और उस अधिकारसे मैंने तुम्हारा वध किया है अर्थात् इसी तरह अन्य दुष्टोंका भी मैं नाश करूँगा।” यहाँ यही सूचित हो रहा है।

### रामके कारण राक्षस अधिक क्रुद्ध हुए

चित्रकूट पर्वतपर रामचन्द्रजीका निवास होनेके पूर्व और निवाम होनेपर भी उस स्थानमें बहुतही तापसी रहते थे। रामचन्द्रजीका निवाम वहाँ होनेपर तो तापसियोंकी संख्या बहुत ही बढ गयी। पर जैसा जैसा रामचन्द्रजीका निवास वहाँ होने लगा और उनके शौर्यवीर्यका प्रभाव राक्षसोंको मालूम होने लगा, वैसा वैसा राक्षसोंका उपद्रव अधिकाधिक होने लगा। तापसी इसमें बडे दुःखी हुए। वे आपसमें इस धारेमें घोलते थे, पर रामचन्द्रजीके सम्मुख आकर बोलनेमें संकोच करते थे, दि० २० (अयोध्या. उ.)

क्योंकि वह राजपुत्र थे और उनका बर्ताव भी उत्तम था। इसलिये वे तापसी उनको कैसे कह सकते थे कि 'तुम्हारे कारण यह राक्षसोंका उपद्रव हमें पूर्वकी अपेक्षा अधिक हो रहा है।' इसलिये वे आपसमें बातें करते थे, पर खुले तौरपर कोई न बोलता था। पर प्रतिदिन राक्षसोंका उपद्रव बढ़ने लगा, इसलिये अन्तमें कई ऋषियोंने रामचन्द्रजीसे कहा—

त्वन्निमित्तमिदं तावत्तापसान्प्रतिवर्तते ।  
 रक्षोभ्यस्तेन संविद्वाः कथयन्ति मिथः कथाः १०  
 रावणावरजः कश्चित्खरो नामेह राक्षसः ।  
 उत्पात्य तापसान्सर्वाञ्जनस्थाननिवासिनः ११  
 धृष्टश्च जितकाशी च नृशंसः पुरुषादकः ।  
 अवलितश्च पापश्च त्वां च तात न मृष्यते १२  
 त्वं यदाप्रभृति ह्यस्मिन्नाश्रमे तात वर्तसि ।  
 तदाप्रभृति रक्षांसि विप्रकुर्वन्ति तापसान् १३  
 प्रतिघ्नन्त्यपरान् क्षिप्रमनार्याः पुरतः स्थितान् ।  
 तैर्दुरात्मभिराविष्टानाश्रमान्प्रजिघांसवः ।  
 गमनायान्यदेशस्य चोदयन्त्यृपयोऽद्य माम् १४  
 खरस्त्वय्यपि चायुक्तं पुरा राम प्रवर्तते ।  
 सहास्माभिरितो गच्छ यदि बुद्धिः प्रवर्तते १५  
 सकलत्रस्य संदेहो नित्यं युक्तस्य राघव ।

( अयोध्या. सर्ग ११७ )

“हे रामचन्द्रजी ! तुम्हारे कारण ही ये ऐसे घोर कष्ट इन तापसियोंको राक्षसोंद्वारा दिये जा रहे हैं। इस कारण ये सब तापस गण इस चित्र-कूटको छोड़कर दूसरे स्थानपर जानेकी इच्छा कर रहे हैं और कई गये भी हैं। रावणका एक छोटा भाई खर इस नामवाला है, वह यहां रहता है और इन ऋषियोंको सताता है। आपका यहांका निवास उसको पसंद नहीं है। वह राक्षस निडर, क्रोधी, दुष्ट, मनुष्यभक्षक, घमंडी, पापी और भय-

कर है। जब ये राक्षस तापसीको देखते हैं, तब वे उसका वध करते हैं, इस लिये उनके डरसे ये तापसी दूसरे स्थानको जा रहे हैं। यह खर जब तक तुम्हारे ऊपर हमला नहीं करता तब तक तुम यहांसे दूसरे स्थानमें चले जाओ। यही तुम्हारे लिये अच्छा है। क्योंकि स्त्रियोंका साथ रहना कष्ट देनेवाला ही है। अतः चाहे तुमगी हमारे साथ चलो।”

ऐसा रामसे बोलकर बहुतसे तापसी वहांसे चले गये। पर कुछ श्रीराम-चन्द्रके पास ठहरते भी थे। यहां ऋषियोंने रावणका पता रामको दिया था, खरका और रावणका संबंध भी बताया था। राक्षस भी रामचन्द्रका नाश करनेके लिये तत्पर थे और रामचन्द्र भी राक्षसोंका नाश करनेका विचार कर रहे थे।

### राक्षस रामका द्वेष करते थे

रामचन्द्रजीने मारीचको घायल किया था और दूर फेंक दिया था, सुबाहुका वध भी उसीने किया था, ताटिका राक्षसीका भी रामबाणसे वध हो चुका था। इसलिये रामपर राक्षसोंका क्रोध हो चुका था और रावणतक रामका वृत्तांत पहुंच चुका था।

खर राक्षस विश्वका ऋषिका पुत्र राकासे उत्पन्न हुआ था और यह रावणका सौतीला भाई था और शूर्पणखा रावणकी बहिन थी। (म. भा. वन०) खर राक्षस रावणका सीमा-संरक्षक सेनापति था, जिसके अधीन चौदह सहस्र राक्षसोंकी सेना सतत जागरूक थी। उसके नीचे चौदह सेनापति भी थे। इस तरह यह खर रावणके आदेशसे वहां रहता था और आर्य राजाओं और वानर राजाओंका मेल नहीं होने देता।

मारीच राक्षस सुंदसे ताटिकामें पहिला जन्मा पुत्र था। सुमालीके चार प्रधानोंमें मारीच भी एक प्रधान था। ऋषि विश्वामित्रके यज्ञके संरक्षण करनेके लिये राम लक्ष्मण गये थे, इन्होंने मारीचको घायल किया था। इसके पश्चात् वह रावणके पास ही रहने लगा था। इस तरह रामचन्द्रके प्रभावका वृत्त रावणने सुना था और रावणने भी खर राक्षससे कहा ही

होगा, कि रामचन्द्रकी हलचल पर ख्याल रख । इस तरह रामके विषयमें रावणको अच्छा पता लगा था और रावणका रामको भी ।

सुबाहु भी सुंदसे ताटिकामें जन्मा पुत्र था । इसका वध विश्वामित्रके यज्ञके संरक्षण करनेके प्रसंगमें रामकेही बाणसे हो चुका था । जब यह बात रावणने सुनी तब उसने खरको आदेश दिया था कि रामका वध करना चाहिये । अर्थात् ताटिका-वधके समयसे ही रामके पराक्रमकी बातें रावण सुन रहा था और रामके रूपमें एक शक्ति राक्षसोंके विरुद्ध बढ रही है, इसको दूर करना आवश्यक है, इतनी बात रावणके ध्यानमें आ चुकी थी ।

इधर श्रीरामचन्द्र वनपर अपना राज्यही है, ऐसे पितृप्राप्त अधिकारसे बर्ताव कर रहे थे, यह राक्षसोंसे सहन होना असंभवही था । अतः राक्षसों के हमले धारंवार बढने लगे थे । प्रत्यक्ष रामपर हमले अभीतक नहीं हुए थे, पर ऋषिमुनियोंपर होते थे, क्योंकि उनकीहि हलचल रावण-साम्राज्यके नाश करनेके लिये बढ रही थी । ऋषियोंपर हमले होनेका तात्पर्य ही रामचन्द्रको आह्वान देना है । रावणको रामचन्द्रजीके सामर्थ्यका पता अच्छी तरह हो चुका था । राक्षसोंपर शस्त्र चलानेका धैर्य रामचन्द्रके पूर्व समयमें किसी भी आर्य कुमारमें नहीं रहा था । रावणका नाम सुनते ही आर्यवीर भागते थे । इस नव युवकमें भागनेका नामतक न रहा, पर एकके पीछे एक राक्षसोंका वध इस युवकसे होने लगा । राक्षसोंका प्रतिकार करनेके लिये ये आर्य युवक स्थान स्थानपर खड़े होते थे और इनके शस्त्रोंसे राक्षसोंका वध भी होता था । यह बात रावणने इससे पूर्व कभी नहीं देखी थी, यह उसके आंखके सामने अब होने लगी । इससे रावणने जान लिया था कि इन आर्य कुमारोंमें कुछ नयी विचार-प्रणाली शुरू हुई है, जो राक्षसोंके साम्राज्यके लिये बाधक होगी । इन आर्य युवकोंका उत्साह प्रतिदिन बढ रहा था और राम-लक्ष्मणोंने इस समय तक कई राक्षस मार दिये थे, कईयोंको घायल करके छोड दिया था । घायल करके शत्रुको छोड देनेका तात्पर्य यही दीखता है कि इस नव शक्तिका पता राक्षसोंके केन्द्र-स्थानमें शीघ्रातिशीघ्र पहुंच जाय । और इसी तरह बना भी ।

अयोध्यामें राम, भरत, कैकेयी, कौसल्या आदिकोंके जातियोंके संघ प्रचल थे और वे एक दूसरेके विरुद्ध कार्रवाइयां करते थे। रामचन्द्र और भरतमें वैरका लेश भी नहीं था, तथापि उनके जातियोंके संघोंमें न्यूनाधिक संघर्ष अवश्य था। राजगद्दी इसको मिले और उसको न मिले, इस बारेमें इन संघोंमें स्पर्धा थी। यह स्पर्धा कृपि, मुनि और देवोंने बढ़ा दी थी। क्योंकि उससे ही रामचन्द्रजीका वनवास सिद्ध होनेवाला था। वैसा ही हुआ और रामचन्द्र वनमें चले गये। भरत अन्तःकरणसे शुद्ध था, इसमें संदेह ही नहीं है, पर उसके विषयमें भी विरुद्ध विचार अयोध्यामें कैसे फैले थे, देखिये—

## भरतके विषयमें कौसल्याके विचार

यदि पञ्चदशे वर्षे राघवः पुनरेष्यति ।

जह्याद्राज्यं च कोशं च भरतो नोपलक्ष्यते ॥११॥

( अयोध्या. ६१ )

‘ पंद्रहवें वर्षे रामचन्द्रके वनसे वापस आनेपर, भरत राज्य और कोश उनको सुलभे वापस देगा, ऐसा दीखता नहीं है । ’ यह कौसल्याका कथन है। इससे स्पष्ट होता है कि कौसल्याके मनमें भी भरतके विषयमें कुछ न कुछ संदेह था। यद्यपि कौसल्याने ऐसा कहा और अन्योंने भी भरतके विषयमें संदेह प्रकट किया, तथापि भरतके आचरणमें ऐसा एकभी स्थान नहीं दीखता कि जिससे उक्त संदेहका समर्थन हो जाय। इससे इतनाही सिद्ध हो सकता है कि अयोध्यानगरमें कैकेयी, कौसल्या, राम आदिकोंके अनुयायियोंके संघ थे। दशरथ राजा होनेके कारण उसका भी एक प्रचल अनुयायी-संघ था और इस समय इन पक्षोंमें बड़ी स्पर्धा थी, बड़ा संघर्ष था और ये अनुयायी लोग दूसरोंके विषयमें घुरी भली बातको फैलाते थे। इस तरह इन्होंने भरतके विषयमें भी संदेह फैलाये रखे थे। ये बातें कौसल्या तक पहुंची होंगी और उनके कारण कौसल्याको भी वैसा संदेह प्रतीत हुआ होगा। चौदह वर्षे राज्य करनेके बाद भरतके मनमें राज्य, धन और

अधिकारका लोभ उत्पन्न होना संभव है और ऐसा लोभ उत्पन्न हुआ, तो यह भरत श्रीरामचन्द्रको राज्य वापस नहीं करेगा, ऐसी शंका मनमें उठाकर कौसल्या शोक कर रही है। अयोध्याके जनसंघोंमें कौनसे विचार कितने प्रबल हुए थे, इसका यह एक उदाहरण है।

## भरद्वाज मुनिभी भरतके विषयमें संदेह प्रकट करते हैं।

भरतं प्रत्युवाचेदं राघवस्नेहबंधनात् ।

किमिहागमने कार्यं तव राज्यं प्रशासतः ९

एतदाचक्ष्य सर्वे मे न हि मे शुध्यते मनः ।

भ्रात्रा सह सभायौ यश्चिरं प्रवाजितो वनम् ११

कश्चिन्न तस्यापापस्य पापं कर्तुमिहेच्छसि ।

अकण्टकं भोक्तुमना राज्यं तस्यानुजस्य च १३

( अयोध्या० स. १० )

“ रामचन्द्रके विषयमें मनमें अत्यंत आदर-भाव होनेके कारण भरद्वाज ऋषि भरतसे बोलने लगे— ‘ हे भरत ! राज्यका शासन करनेके समय ही तुम्हारे यहां वनमें आनेका कारण क्या है ? तुम्हारे मनमें शुद्ध हेतु है, ऐसा मुझे प्रतीत नहीं होता । इस बारेमें मेरे मनमें बड़ा संदेह उत्पन्न हुआ है । रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण वनमें चली गयीं हैं । अब तुम उन निष्पार्थों का और कौनसा अहित करना चाहते हैं ? उनको जड़से उखाड़ देनेका तो तुम्हारे मनमें विचार नहीं है ना ? ” यह भरद्वाज ऋषिका भाषण उस समय भरतके संबंधमें कैसे विचारप्रवाह फैले हुए थे, इसका चोतक है ।

भरद्वाज जैसे ऋषि भी अपने विषयमें ऐसा संदेह मनमें धारण कर रहे हैं, यह देखकर भरतको बड़ाही दुःख हुआ और वह बोला—“हे ऋषिवर ! आप भी मेरे विषयमें ऐसा ही संदेह अपने मनमें धारण करते हैं, तब तो मेरा जीवन ही व्यर्थ हुआ, इसमें क्या संदेह है ? मेरी माता कैकेयीने जो किया, वह मुझे बिल्कुल पसंद नहीं है । मैं वनमें इसलिये जा रहा हूं कि

मैं रामचन्द्रको वापस लाकर राजगद्दीपर उनको बिठाऊंगा। मैंने ऐसा ही निश्चय किया है।” यह भरतका भाषण श्रवण करके भरद्वाज ऋषिको बड़ा आनन्द हुआ और पश्चात् उन्होंने भरतको प्रेमसे आशीर्वाद भी दिया।

### गुहके मनमें भी भरतके विषयमें संदेह

भरतके चतुरंग सेनाको गंगा नदीके तटपर देखकर गुह अपने अनुयायियोंसे बोला— “हे धीवरो ! यह महासागरके समान बड़ीभारी सेना यहां (नास्यान्तं अयगच्छामि) किस उद्देश्यसे आयी है, इसका पता मुझे नहीं लगता। यह ‘कोविदारुध्वज’ दीख रहा है, इससे स्पष्ट है कि (दुर्वुद्धिः भरतः स्वयं आगतः) दुष्ट बुद्धिवाला भरत ही दुष्ट भावसे यहां आया है। इसमें संदेह नहीं कि यह रामचन्द्रजीका धातपात अवश्य ही करेगा। मैं श्रीरामचन्द्रजीका मित्र हूं। (वन्धयिष्यति यधिष्यति वा) अतः यह भरत हमारा बन्धन करेगा अथवा वध भी करेगा। कदाचित् यह (रामं हन्तुं) रामचन्द्रजीका वध करनेके लिये भी आया होगा। राम मेरा मित्र है, इसलिये हे धीवरो ! उस रामका हित करनेके लिये तुम सब यहाँ तैयार और सज्ज होकर रहो। (अयोध्या. स. ८४)२-८) प्रत्येक नौकामें सौ सौ तरुण कैवर्त वीरोंको तैयार रखो और ऐसी पांच सौ नौकाएं तैयार रखो। यदि भरत शुद्ध हेतुसे आया होगा, तो हम सब सहाय्य करके उसको पार कर देंगे। पर यदि उसमें कुछ कपट-भाव हो, तो उसे नदी पार होनेमें हम सहाय्यता नहीं करेंगे।” (अयोध्या. स. ८४)९-१०) ऐसा कहकर निषाद-राज गुह भरतके पास आया और भरतसे बोला—

अग्रवीत् प्राञ्जलिर्भूत्या गुहो गहन-गोचरः ।

दाशास्त्यनुगमिष्यन्ति देशज्ञाः सुसमाहिताः ५

अहं चानुगमिष्यामि राजपुत्र महाबल ।

कश्चिन्न दुष्टो व्रजासि रामस्याक्लिष्टकर्मणः ६

इयं ते महती सेना शंकां जनयतीव मे ।

(अयोध्या. स. ८५)



भरतने जब भरद्वाज ऋषिके आश्रमके पास पहुँचनेका मार्ग पूछा, तब धरण्यानिवासी गुह हाथ जोड़कर भरतसे कहता है— “हे राजपुत्र भरत ! हमारे सब धीवरोंको साथ लेकर मैं तुम्हारी सहायता करूँगा और तुम्हें नदीपार पहुँचाऊँगा । पर मुझे इस बातका पूरा पता होना चाहिये कि तुम जो इतनी बड़ी सेना लेकर रामके पास जानेके लिये वनमें जाये हो, वो उसमें तुम्हारा उद्देश्य पापमूलक तो नहीं है ? तुम्हारे साथ इतनी बड़ी सेना है, इसलिये मनमें संदेह उत्पन्न होता है ।”

इसके पश्चात् भरतने उसे अपने जानेका उद्देश्य कहा और स्पष्ट कह दिया कि ‘रामचन्द्रजीको वापस ले जाकर राजगद्दीपर विठलाना है, इस लिये मैं सब मंत्रियों और सैनिकोंके साथ आया हूँ ।’ जब इस तरह गुहका निश्चय हुआ, तब नदीपार जानेके लिये गुहने भरतकी संपूर्ण सहायता की ।

परंतु इससे पूर्व गुहने ५००० पाँच सहस्र सैनिकों द्वारा भरतका प्रतिकार करनेकी तैयारी की थी । पाँच सहस्र सेना तैयार रखनेके पश्चात् ही गुह भरतके पास पहुँचा था । अयोध्याके पक्षोपपक्ष आपसमें कितनी स्पर्धा कर रहे थे और प्रतिपक्षके संबंधमें कैसी अपवाताएँ फैलाई गयीं थीं इसका पूर्ण पता यहाँ लगता है । भरद्वाज ऋषि और गुह जैसा कुलमित्र ये सब भरतके विषयमें संदेह कर रहे हैं और इनमेंसे एक भी भरतके साथ शुद्ध भावसे बोलता नहीं, यह यहाँ देखने योग्य है । इतना प्रतिकूल वायुमण्डल होने पर भी भरत अन्तर्बाह्य शुद्ध था, इसी लिये वह विशेष प्रशंसा योग्य है—

### भरतका शुद्ध भाव

चरित्रब्रह्मचर्यस्य विद्यास्त्रातस्य धर्मतः ।

धर्मं प्रयतमानस्य को राज्यं मद्विधा हरेत् ११

कथं दशरथाज्जातो भवेद्राज्यापहारकः ।

राज्यं चाहं च रामस्य धर्मं वक्तुमिदार्हसि १२

( अयोध्या. स. ८२ )

‘महर्षि यालन करके जो स्नातक हुआ है, जो बुद्धिमान है और जो प्रयत्नपूर्वक धर्मका पालन करना चाहता है, उस रामचन्द्रका राज्य मेरे जैसा भाई किस तरह हरण करेगा ? दशरथसे उत्पन्न हुआ सुपुत्र अपने धीरामचन्द्र जैसे भाईके ही राज्यका कैसे हरण करेगा ? हे वसिष्ठ ऋषे ! आपको तो उचित है कि आप हमें ठीक धर्मका मार्गही कहें ।’

इस तरह वसिष्ठ ऋषिसे भरतने सबसे प्रथमही कहा था । दशरथके बीजसे उत्पन्न हुआ पुत्र कभी लोभी नहीं हो सकता, ऐसा भरत यहां कहता है । अपने कुलमें ऐसे लोभी कोई नहीं हुए, ऐसा वह यहां कह रहा है । इससे उसके अन्तःकरणकी शुद्धताका पता लगता है ।

जिस समय भरतने यह भाषण किया था, उस समय वहां कोई भी भरतके राज्य स्वीकार करनेके विरुद्ध नहीं था । बाह्यतः क्यों न हो, पर सब मन्त्री इसके राज्यके स्वीकार करनेके अनुकूल ही थे । पर भरतने ही स्वेच्छासे प्राप्त हुआ राज्य लिया नहीं, इससे भरतके अन्तःकरणकी पवित्रता अधिक ही प्रकट हो रही है ।

### भरतका अन्तरङ्ग

भरतका अन्तःकरण कितना शुद्ध और निष्कलंक था, यह नीचे लिखे उसके भाषणसे स्पष्ट हो सकता है—

किं नु कार्यं हतस्येह मम राज्येन शोचतः ।  
 विहीनस्याथ पित्रा च भ्रात्रा पितृसमेन च २  
 राजानं प्रेतभावस्थं कृत्वा रामे च तापसम् ।  
 कुलस्य त्वमभावाय कालरात्रिरिवागता ३  
 अथवा मे भवेच्छक्तियोगैः बुद्धिबलेन वा ।  
 सकामां न करिष्यामि त्वां अहं पुत्रगर्हिनीम् १७  
 एव त्विदानीमेवाहमप्रियार्थं तवानये ।  
 नियतैरिष्यामि घनाद्भूततरं स्वजनप्रियम् २६

( अयोध्या. स. ७१ )

“ पिता तथा पिताके समान मेरे भाई श्रीरामचन्द्रजीका वियोग हो जानेपर मेरा सर्वस्वही विनष्ट हुआ है, इसलिये शोकाकुल हुए मेरे लिये राज्य लेकर क्या करना है ? राजाका वध करके और प्रभु रामचन्द्रजीको वापसी बनाकर दू इस हमारे कुल-वंशका नाश करनेवाली कालरात्रिहि यहां प्राप्त हुई है ! मुझे यद्यपि मंत्रियोंकी सलाहसे राज्य करनेका सामर्थ्य प्राप्त होनेकी संभावना होगी, तथापि तेरी जैसी पुत्रके लिये लोभवश होकर ऐसे घोर कर्म करनेवाली माताका दुष्ट मनोरथ मैं कदापि सफल होने नहीं दूंगा । इसलिये जो तुझे पसंद नहीं है, वही करनेके लिये मैं रामचन्द्रजीको वनसे वापस ले आऊंगा । ”

इस समय भरत सहजहीसे प्राप्त हुआ राज्य छोड़नेके लिये तैयार हुआ है और रामचन्द्रजीको प्रयत्नसे वनसे वापस लाकर राजगद्दीपर बिठलानेके लिये सिद्ध हुआ है । इस समय अयोध्यामें जो परिस्थिति थी, वह सर्वथा भरतके लिये प्रतिकूल थी, इसकाभी अनुभव भरतने किया ही होगा । परंतु प्रारंभसेही भरतका आचरण पूर्णतया निर्दोष दीखता है । भरत ने रामचन्द्रजीका चित्र अपने पास रखा था, तथा उस चित्रका वह परम आदर करता था । इस तरह रामभक्ति भरतके अन्तःकरणमें थी । कैकेयीके शातिबान्धवोंने जो पड्यन्त्र अयोध्यामें रचा था, उस पक्षका मत बोलनेवाली मन्थरा वहां थी, इस मन्थराको ऋषि-मुनि तथा देवोंदे प्रभावित किया था। यह तो स्पष्ट ही है । पर पहिलेसेही आपसमें स्पर्धा न होती, तो ऋषि-मुनियोंको भी मन्थरापर प्रभाव डालना असंभवही था ।

भरत यद्यपि पितामहके घरमें था, तथापि उसका हृदय दशरथ और रामचन्द्रके साथ मिला हुआ था । इस तरह एकतानता होनेसे ही इधरके विचार उधर पहुंचते और कार्य कर दिखाते हैं । इसी तरह दशरथकी मृत्युका और इधरके शोकपूर्ण वायुमण्डलका प्रतिबिंब भरतके अन्तःकरणमें पड़ा और उससे जो उसके मनकी अवस्था बनी, उसीसे उसको वह घोर स्वप्न आया था, जिसका वर्णन इस तरह किया गया है—

## भरतका घोर स्वप्न

राजा दशरथकी मृत्यु अयोध्यामें हुई, जिसकी खबर दूतोंद्वारा भरतको पहुंचाई गई। उसी समय भरत अपने स्वप्नका विचार करके बड़ा दुःखी हुआ था। अर्थात् अयोध्याके दुःखी अन्तःकरणोंका प्रभाव भरतके कोमल अन्तःकरणपर हो चुका था। भरतको रात्रिके समय जो स्वप्न आया था, वह इस प्रकार था—

‘समुद्र सूख गया, चांद भूमिपर गिर पड़ा, पृथ्वीपर बड़ा अन्धेरा छाया है, राजा दशरथ जिस हाथीपर सवार होता था, उस हाथीके दांत टूटकर टुकड़े टुकड़े होकर इतस्ततः गिर पड़े हैं, भूमिके दो भाग हो गये हैं, लोहेके आसनपर राजा बैठ गया है, लाल फूलोंकी मालाएँ उसके गलेमें हैं, शरीरपर लाल चन्दन लगा है, गधोंके रथमें बैठकर राजा दक्षिण दिशामें जा रहा है, भयानक मूँहवाली राक्षसी राजाको खींचकर ले जा रही है।’

ऐसा यह भयानक स्वप्न भरतने रात्रिमें देखा था। यह स्वप्न अशुभ-सूचक है, ऐसा उसके मनमें विचार उठा था, जिससे वह बड़ा दुःखी हुआ था। भरत इस स्वप्नके संबंधमें अपने मित्रोंके साथ बातचीत कर रहा था, इतनेमें अयोध्यासे रवाना हुए दूत वहां पहुंचे और उन्होंने बुलानेका संदेशा भरतको दिया।

किसीकी मृत्यु होनेपर ऐसे भयानक स्वप्न महदय संबंधियोंको आते ही हैं। ये स्वप्न सबको नहीं आते, पर उनकोही आते हैं कि जो प्रेमसे भरे रहते हैं। इस स्वप्नसे भरतके शुद्ध अन्तःकरणका पता लग सकता है।

## भरतका प्रायोपवेशन

वसिष्ठ ऋषिने रामचन्द्रजीसे कहा कि ‘हे राम ! मैं तो तुम्हारा गुरु हूं। तथा मैं तुम्हारे पिताका भी गुरु हूं। इसलिये मेरी आज्ञा है, इसलिये तुम इस राज्यका स्वीकार करो। इससे सत्य मार्गका उलंघन होनेका पाप तुम्हें नहीं लगेगा।’ ( अयोध्या. स. ११२।१-८ )

इसपर धीरामचन्द्रजीने जो उत्तर दिया वह यह है— ‘मातापिता अपने

बालबच्चोंपर जो उपकार करते हैं, उनका बदला उनको कभी नहीं दिया जा सकता । पुत्रको जो चाहिये वह वे देते हैं, उसको सुलाते हैं, उसके शरीर को तेल लगाते हैं, मीठा भापण करते हैं, हंसी खेल करते हैं, इस प्रकार मातापिता बच्चोंकी पालना करते हैं । इन उपकारोंके बदले पुत्रोंसे प्रत्युपकार किसी तरह हो नहीं सकता । इसलिये मेरे जनक पिताने जो आज्ञा मुझे की है, उसका पालन मुझे करना अत्यावश्यक ही है, उसमें किसी तरह अन्यथा नहीं हो सकता ।" (अयोध्या. ११२।८-११)

इस तरह श्रीरामचन्द्रका निश्चययुक्त भापण सुनकर भरतने उसी पर्ण-शालाके द्वारमें बैठकर उपवास करते हुए मर जातेका निश्चय किया और इस सत्याग्रहसे रामचन्द्रजीको अपने अनुकूल बनानेका अन्तिम यत्न उसने किया । भरतने ऐसा निश्चय किया, पर वैसा बननेवाला न था । कारण यह था कि रामचन्द्रजी इस समय राक्षसोंका संपूर्ण नाश करके दण्डकारण्य को राक्षसोंसे मुक्त करनेकी आयोजना सिद्ध करनेका विचार कर रहे थे । श्रीरामचन्द्रजीकी महत्वाकांक्षा इस समय बढ़ रही थी । राज्यके मोहमें अटक कर इस कार्यको दूर करना अब उनके लिये असंभवसा ही था ।

## श्रीरामचन्द्रकी प्रतिज्ञा

लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद्वा हिमवान्वा हिमं त्यजेत् ।

अतीयात्सागरो वेलं न प्रतिज्ञां अहं पितुः ॥

(अयोध्या. स. ११३।१८)

‘चन्द्रमाका तेज उससे कदाचित् दूर होगा, हिमालय हिमसे रहित भी होगा, समुद्र अपनी वेलका अतिक्रमण भी कदाचित् करेगा, पर मैं पिताकी आज्ञाका कदापि उल्लंघन नहीं करूंगा ।’

रामचन्द्रजीकी यह कठोर प्रतिज्ञा है । इनकी प्रतिज्ञा सदा अटलही होती थी । वनवासकी प्रथम रात्रिमें श्रीरामचन्द्रको बहुतही दुःख हुआ था, यह सत्य है, पर उनका संबंध ऋषिमुनियोंसे होनेके अनंतर उनके सामने कर्तव्यका एक महाक्षेत्र ही खुला हुआ, तब पुरुषार्थी और कर्तव्यतत्पर

रामचन्द्रजीको राज्य-वैभव तुच्छ प्रतीत हुआ और उस कर्तव्यको निभाना ही उनको अपने जीवनका सर्वस्व प्रतीत हुआ। अपने स्वकीय पराक्रमसे राक्षसोंका समूल नाश करके दण्डकारण्यको सुरक्षित तपोवन बनाना, यह कार्य राज्य-शासनसे कई गुणा महत्त्वका है। यह बड़ा दैवकार्य था और ऋषि-मुनियोंकी सेवा भी इसीसे होनेवाली थी। इसलिये रामचन्द्रजीकोभी राजगद्दीपर बैठनेसे यह अधिक श्रेष्ठ कर्तव्य था, ऐसा उनको प्रतीत हुआ।

### पिताका वचन

उवाच रामः संप्रेक्ष्य पौरजानपदं जनम् २७

विक्रीतं आहितं फीति यत्पित्रा जीधता मम ।

न तद्दोषयितुं शक्यं मया वा भरतेन वा २८

उपाधिर्न मया कार्यो वनवासे जुगुप्सितः ।

युक्तमुक्तं च कैकेय्या पित्रा मे सुरतं कृतम् २९

(अयोध्या. म. ११२.)

“पिता जीवित थे, उस समय उन्होंने जो कुछ किसीको बेचा हो, जो कुछ धरोहर रखा हो, अथवा जो मोल लिया हो, वह मुझे अथवा भरत को बदल देना असंभव है। कैकेयीने जो कहा, वह योग्य ही था और पिताजीने जो आज्ञा की, वह भी योग्य ही थी।”

इसलिये हमें उचित है कि हम दोनों भाई अपने पिताजीको असल प्रतिज्ञासे मुक्त करे। पिताको सत्य-प्रतिज्ञ करनेसेही हम अपने जानपद-विषयक अपने कर्तव्यको अच्छी तरह निभा सकते हैं। यह जानपदविषयक कर्तव्यकी बात इस समय रामचन्द्रजीके मनमें प्रमुख स्थाव ररहिती थी। इसलिये वह इसके बाद किसी भी प्रलोभनमें फंस जाने की संभावना नहीं थी। इस समय इस तरह रामचन्द्रजी अपनी प्रतिज्ञापरहि स्थिर रहते हैं, इसका कारण यह है।

### लक्ष्मणका क्रोध

जब लक्ष्मणने सालरूपपर चढ़कर भरत अपनी बड़ी सेनाके साथ भा रहा

हे ऐसा देख लिया, तब उसका क्रोध बेहद बढ़ गया और वह रामसे कहने लगा—

“हे रामचन्द्रजी ! इस भरतके कारणही आप राज्यसे अट्ट हुए हैं, वही हमारा शत्रु भरत आज हमारी ओर पहले आ रहा है। इस समय इस का वध करनाही योग्य है। इसके वध करनेमें कोई भी दोष नहीं है। प्रथम उसीने हमारा अपकार किया है, अतः उसका वध करना धर्मके अनुकूलही है। ... उनके अनुयायियोंके साथ कैकेयीकाभी वध मैं करूंगा। आइएही यह पृथ्वी इन पापी लोगोंसे विमुक्त हो जावे।” (अयोध्या स. ९०)

रामने लक्ष्मणका यह भाषण सुना और उसका क्रोध शान्त करनेके लिये उसको सुयोग्य बोध किया। वह लक्ष्मणसे बोले—

“इस तरह वध करके जो भोग मिलेंगे, उनको मैं विषके समान ही स्वाज्य समझता हूँ। अधर्मसे प्राप्त होनेवाला राज्य मुझे नहीं चाहिये। भरत जो आ रहा है वह मुझे ले जाने और राज्यपद मुझे (राज्य में दातुं) वापस देनेके लिये आ रहा है। भरतने कभी तेरा या मेरा कोई अहित किया तो नहीं ? फिर उसके आनेसे डरनेका क्या भला प्रयोजन है ? इस लिये तू भरतके साथ कठोर भाषण न करना।” (अयोध्या. स. ९८)

इस तरह भाषण करके श्रीरामचन्द्रने लक्ष्मणका क्रोध दूर किया और भरतके साथ प्रेम-भावसे मिलनेके लिये रामचन्द्रजी तैयार हुए। अस्तु, इस लक्ष्मणके भाषणसे इस बातका अवश्य पता लगता है कि भरतके विषयमें कहांतक अविश्वास लक्ष्मण जैसे राजपुत्रोंमें फैला था।

**“दूसरेके द्वारा भोगा हुआ राज्य  
राम नहीं लेगा”**

राणी कौसल्या रामचंद्रके वनवासके विषयमें शोक करती हुई कहती है—

(१) जिस तरह अपने बान्धवोंको पहिले भोजन दिया गया और श्रेष्ठ

ब्राह्मणोंको पीछेसे भोजन करने बिठलाया, तो वह श्रेष्ठ ब्राह्मण पसंद नहीं करते । ( अयोध्या. ६१।१२-१३ )

(२) जिस तरह सींगोंको उखाड़ देना बैलोंको पसंद नहीं होता ।  
( अयोध्या. स. ६१-१४ )

(३) जिस तरह दूसरेने वध किये पशुका मांस बाव नहीं खाता ।  
( अयोध्या. स. ६१।१५-१६ )

(४) जिस तरह हविर्द्रव्य, धी, पुरोडाश, दर्भ, खादिर वृक्षका यूप एक-चार यज्ञमें बर्तने पर पुनः बर्ते नहीं जाते । ( अयोध्या. स. ६१।१७ )

इसीतरह भरतके द्वारा उपभोग किया हुआ राज्य मेरा राम कभी नहीं स्वीकार करेगा—

तथा ह्यात्तमिदं राज्यं० । नाभिमन्तुमलं रामो० १८ ॥५  
(अयोध्या. स. ६१।१८)

यहां राणी कौसल्याऐसा कहती है कि छोटे भाईके द्वारा प्रथम भोगा गया राज्य बड़ा भाई किस तरह उपभोगेगा ? वस्तुतः राज्यके संबंधमें ऐसा माननेका कोई कारण नहीं है । पर स्त्रियोंमें ऐसे भाव होना संभव है । कौसल्याका मन कैकेयीके विषयमें अत्यंत संतप्त होनेके कारण कौसल्याके मुखसे ऐसे शब्द प्रकट हो रहे हैं ।

### शत्रुघ्नका मत

सं रामः सत्त्वसंपन्नः क्षिया प्रेय्याजितो धनम् १

धलवान् वीर्यसंपन्नो लक्ष्मणो नाम योऽप्यसौ ।

किं न मोक्षयते रामं कृत्वाऽपि पितृनिग्रहम् ३

पूर्वमेव तु निग्राह्यः समवेक्ष्य नयानयौ ।

उत्पथं यः समारूढो नार्या राजा वशं गतः ४

( अयोध्या. स. ७८ )

“ इतना धलवान् राम, पर एक खीने उसे वनमें भेज दिया ! उसका भाई लक्ष्मण भी बड़ा धलवान् था, उसने पिताको बंधनमें रखकर रामको मुक्त



करना योग्य था । न्याय अथवा अन्यायका विचार न करते हुए एक स्त्रीके अधीन होकर ऐसा अन्याय करनेवाले राजाको उसने अवश्य बंधनमें रखना चाहिये था । ”

शत्रुघ्न भी लक्ष्मणके समान ही यहां बोल रहा है । सुमित्राके दोनों पुत्र समानही विचारके दीख रहे हैं ।

### मंत्रियोंसे पूछातक नहीं

रामचन्द्र जैसे लोकप्रिय राजपुत्रको वनवासमें भेजनेके पूर्व राजा दशरथ ने अपने मंत्रियों तथा वृद्धोंसे मंत्रणाभी नहीं की थी । देखिये—

कैकेय्या विनियुक्तेन पापाभिजनभाग्रया ।

मया न मन्त्रकुशलैर्वृद्धैः सह समर्थितम् १७

न सुहृद्भिर्न चामात्यैर्मन्त्रयित्वा न नैगमैः ।

मयायमर्थः संमोहात् ह्योहेतोः सहसा कृतः १९

भवितव्यतया नूनमिदं वा व्यसनं महत् ।

कुलस्यास्य विनाशाय प्राप्तं सूत यदृच्छेया २०

( अयोध्या. सर्ग ५९ )

राजा दशरथने वहां उपस्थित मृतसे कहा— “दुष्ट कुलमें तथा दुष्ट लोगों में उत्पन्न हुई कैकेयीने रामचन्द्रको वनमें भेजनेके लिये प्रेरणा की, परंतु मैंने इसका विचार अपने मंत्रियों, इष्ट-मित्रों और विद्वानोंसे करना चाहिये था, वह मैंने नहीं किया । स्त्रीके कारण यह बड़ा अनर्थ मुझसे वनशुका है । इसका परिणाम अब निःसंदेह कुलका नाश होनेमें होगा, इसमें कुछभी संदेह नहीं है । ”

राजा दशरथ जैसे धर्मात्मा राजाने इतने बड़े विवादास्पद विषयका विचार अवश्यही अपने मन्त्रियोंके साथ करना चाहिये था । एक स्त्रीने कहा और राजाने श्रीरामचन्द्रजीको एकदम वनमें भेजा और नगरसे बाहर कर दिया, यह ठीक नहीं हुआ । रामचन्द्रको यौवराज्यका अभिशेक करनेका निश्चय लोक-सभाने किया था, इसलिये उसी रामचन्द्रको नगरसे

बाहर निकालने और वनमें भेजनेके विषयमें तो अवश्यही उन लोक-  
सभाके सदस्योंसे परामर्श करना चाहिये था। पर दशरथने वहां  
जनमत की पचाह नहीं की, यह उचित नहीं हुआ।

राजपुत्रको राजगद्दीपर बिठलानेके लिये इस समय जनताके प्रति-  
निधियोंकी संमति लेनी पड़ती थी। इस समय ऐसी ही प्रथा थी। यह  
परिपाठी उत्तम है, इसमें संदेह नहीं है। इससे राजपुत्रकोभी अपना  
आचार-व्यवहार लोकप्रिय होने योग्य उत्तम रखना पड़ता था, जिससे  
राजपुत्रोंका सुधार ही होता था। जन्मके कारण राज्य नहीं मिलेगा, परंतु  
जनताकी अनुमतिसे ही राज्य मिलेगा, ऐसा होना अत्यंत आवश्यक है।  
जनताकी संमतिकी अपेक्षा राजपुत्रकी पर्यंदगीके लिये होनेसे इस पद्धति  
का दबाव राजपुत्रपर रह सकता है, जिससे उसका सुधार होना संभव  
है। इस पद्धतिके अनुसार राजा दशरथने जनताके मुख्य प्रतिनिधियों  
की एक सभा बुलायी थी और उस सभाने श्री रामचन्द्रजीको यौवराज्यपर  
बिठलानेके लिये अपनी संमति भी दी थी। सब राजमन्त्री भी वहां थे,  
उन्होंने भी अपनी अनुमूल संमति प्रदत्त की थी, जनताके प्रतिनिधियोंकी  
संमति तो अनुमूल थी हि। ऐसे जनसंमतिसे नियुक्त हुए राजपुत्रको एक  
पक्षके आग्रहके कारण वनवाममें भेजना और किसी योग्य कारणके बिना  
नगरसे बाहर करना कदापि योग्य नहीं था। ऐसे समयमें राजाने अपने  
सब मंत्रियों और जनताके प्रतिनिधियोंकी संमति लेनी चाहिये थी।  
जनताकी संमति मिलनेके कारण रामचन्द्रजी जनताके वन चुन लें, उसपर  
केवल पितामाही अधिकार नहीं रहा था। ऐसा होनेपर भी राजाने एकदम  
रामचन्द्रजीको वनमें भेज दिया, यह राज्यशास्त्रके नियमोंके अनुकूल नहीं  
हुआ। सब जनताने इसीलिये उस दिन राजा दशरथका निषेध और धिक्कार  
किया था। केवल निषेध करकेही जनता चुप नहीं रही, परंतु श्रीराम-  
चन्द्रदे साथ सब लोग वनमें गये और अयोध्या उस दिन जनशून्यसी  
ही हो चुकी थी। जनताके द्वारा इतनाही हो सकता था, वह जनताने  
उत्तम रीतिसे किया।

१. योग्य समयमें प्रतिदिन यज्ञशालामें जाकर होमहवनकी, और ध्यान देना,

२. राजाकी योग्य रीतिसे सेवा करो और दक्षतासे रहो,

३. मेरी अन्य माताओंके साथ अहंकार छोड़कर शान्तियुक्त मनके साथ व्यवहार कर,

४ कैकेयी माताकी इच्छाके अनुसार राजा चलता है, इसलिये उसके साथ कभी विरोध न कर,

५ कुमार भरतके साथ राजाके साथ बर्तनेके समानही बड़े आदरके साथ बर्ताव करो, क्योंकि आयुसे छोटे भी क्यों न हो, राजा पूजनीयही होता है, यह राजधर्मका तत्त्व है, इसका अवश्य स्मरण रखो,

६. कुमार भरतको मेरा यह संदेश कहो कि तू सब माताओंके साथ यथाम्याय बर्ताव करो। यौवराज्यपर आरुढ़ होनेके पश्चात् भी बृद्ध राजाकी आज्ञाका यथायोग्य पालन करो, राजासे कभी विरोध न करो।

इस संदेशमें श्रीरामचन्द्रने दशरथ राजाका वर्णन 'कैकेयीके मतानुसार वर्तनेवाला' ऐसा किया है, यह वर्णन उसके अन्तःकरणके आन्तरिक भावोंका सूचक है। तथा युवराजके स्थानपर कार्य करनेवाला आयुसे छोटा हुआ तो भी सन्मान देने योग्य है, ऐसा जो कहा है तथा भरतके साथ भी राजाके समान आदर-भावसे बर्ताव कर, ऐसा जो अपनी मातासे कहा है, वह भी श्रीरामचन्द्रके आन्तरिक भावोंका सूचक है।

श्रीरामचन्द्रजी अपनी माताको ( अ-प्रमाद ) प्रमाद न करते हुए सावध रहनेकी सूचना कर रहे हैं। राजमहलमें उस समय बड़ी विकट समस्या बनी थी, यह इससे स्पष्ट दीख रहा है। राजा मृत्युके वश होगा अथवा निर्बल होगा, कैकेयीका महत्त्व बढ़ जायगा, इस कारण कौसल्याको बड़ा दुःख सहना पड़ेगा, यह जानकर ही श्रीरामचन्द्रजी ऐसा संदेश अपनी माताको भेज रहे हैं। अभिमान छोड़कर, नम्रतासे बर्ताव करनेकी बात इस संदेशमें है। इससे स्पष्ट होता है कि कौसल्याकी परिस्थिति बड़ी शोचनीयसी हो चुकी थी। वास्तवमें देखा जाय तो सम्राट्की पद्मामिषि

महारानी कौसल्या थी, परंतु कैकेयीके अधीन राज्यके सब सूत्र जानेके समान ही व्यवस्था बनी थी। इसलिये वह बड़ी धमण्ड करने लगी थी। राजा दशरथ तो उसके अधीनता बन गया था, इस कारण कौसल्या बर्षाही दुःखी बन चुकी थी। यह सब परिस्थिति इस रामचन्द्रके संदेशमें स्पष्ट दिखाई दे रही है।

भरत आयुसे छोटा हुआ तो भी राजाके समान सम्मान के योग्य है, क्योंकि आयुसे छोटा भी राजा क्यों न हो, वह सम्मानके योग्य है, ऐसा रामचन्द्रजी कह रहे हैं, वह राजाकी अमर्याद सत्ताका शोचक है। राजाका थोड़ासा भी अपमान हो जाय तो वह अपमानकर्ताका नाश करता है, इसलिये श्रीराम अपनी मातासे कह रहे हैं कि भरत अब कुमार नहीं रहा, वह राजा हो चुका है, यह जानकर उसका सुयोग्य सम्मान करो और उसके साथ नम्रताका व्यवहार करो। राजाओंकी घातक शक्ति कितनी थी, इसका परिचय इस संदेशमें मिलता है। भरत इस नियमका अपवाद सिद्ध हुआ, यह बात और है। तथापि परिस्थिति कैसी थी, इसका पता यहां लगता है।

भरतके विषयमें रामचन्द्रके मनमें किस तरहके विचार आते थे यह बात यहीं स्पष्ट हो गयी है। रामचन्द्रजी और भरतका संबंध १०।१२ वर्ष नहीं था, क्योंकि भरत मातामहके घरमें १२ वर्ष था। तथापि रामचन्द्रजी को भरतकी माता कैकेयी और उसके ज्ञातिबांधव कैसा बर्ताव करते थे उसका पता था, इस लिये उसको भरतके विषयमें भी संदेह हुआ तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

दशरथ कैकेयीसे डरता था

देव यस्या भयाद्रामं नानुपृच्छसि सारधिम् ।

नेह तिष्ठति कैकेयी विभ्रान्त्यं प्रतिभाष्यताम् ॥

(अयो. स. ५७।३१)

कौसल्या राजा दशरथसे बोली कि— 'हे राजन् ! आप जिसके भयसे

नहीं मिलता है, ऐसा भाव है, क्योंकि राजा सर्वथा कैकेयीके महलमें रहता था, उसके कहनेके अनुसार करता था, इसलिये पतिका जो आश्रय पत्नीको मिल सकता है, वह मुझे नहीं मिल रहा है। अर्थात् मैं निराधार हूँ, ऐसा कौसल्या कहती है। इसका परिणाम आज ऐसा बना है—

हृतं त्वया राष्ट्रमिदं सराज्यं हताः स्म सर्वाः सह मन्त्रिभिश्च ।  
हता सपुत्रास्मि हताश्च पौराः सुतश्च भार्या च तव प्रहृष्टौ ॥  
(अयोध्या स. ६१।२६)

‘ हे राजन् ! राष्ट्रका, राज्यका, सब प्रजाओंका और हम सबका विनाश हो चुका है। केवल ( तुम्हारी प्रिय ) पत्नी ( कैकेयी और उसका ) पुत्र ( भरत ) इनकोही आनन्द हो रहा है । ’

इस स्थानपर दशरथको ( तव भार्या ) तेरी पत्नी और ( तव सुतः ) तेरा लड़का ये शब्द क्रमशः कैकेयी और भरतके लिये कौसल्याने प्रयुक्त किये हैं। इससे स्पष्ट होता है कि कौसल्याके मनमें कितना जलन हो रहा था। पर यह सब पुत्रवियोगके असह्य शोकावेगके कारण हुआ था, इसमें संदेह नहीं है।

## स्त्रीके आश्रय

स्त्री परतंत्र है। उसके लिये तीन आश्रयस्थान हो सकते हैं—

पतिरेका गतिर्नार्याः द्वितीया गतिरात्मनः ।

तृतीया ज्ञातयो राजन् चतुर्थी नैव विद्यते २४  
(अयोध्या. स. ६१)

‘ स्त्रीका पहिला आश्रय पति है, दूसरा आश्रयस्थान पुत्र है, तीसरा आश्रयस्थान ज्ञातिबंधव हैं, स्त्रीके लिये चौथा आश्रय नहीं है । ’

स्त्री पूर्णतासे स्वतंत्र है, ऐसा उस समय कोई मानते नहीं थे। कौसल्या के लिये पतिका आश्रय नहीं था, वनमें जानेके कारण पुत्रका भी आश्रय नहीं रहा था, ऐसी शोकमय अवस्थामें वह इस समय पड़ी थी, इसलिये हताश होकर वह ऐसा बोल रही है। स्त्री कितनी भी शान्त क्यों न हो, वह ऐसी भयानक परिस्थितिमें ऐसीही हताश होना स्वाभाविक है।

## हरिश्चन्द्रचरितम्

जब राजाको वैदिकके कृत्योंसे बहुत कुछ ही श्रेष्ठत्वके लिये मना  
बड़ा निकल दिने है, तब तबे कहे जायेंगे कि वह तबे तबे  
काय मनाके बहिष्कृत होने संभव हो सकता है, ये कारण श्रेष्ठत्वके  
संभव होने, देना हमका मन बने कराने के। कहे कहे मनाके  
बहिष्कृत होनेके ये कारण हैं-

१. ब्राह्मणों की ओर वा. अनाथों की ओर। २२ के अन्तर, कहे  
वा निर्वन ननुमना वह किना होगा।

२. ब्राह्मणधर्म हूँ। (२३) = ब्राह्मणके धर्मका कारण दिना है।

३. परदारान् आमिनम्यते। (२४) = परदारान् कहे कहे रहने है।

इस समय अनेक राजाको स्वयंसे करनेकी हलचल करनेके कारण बहुतसे  
काकाज और नगरमें बहिष्कृत करनेके दण्ड दिने जा रहे हैं। इससे  
कस्या तक भारतके मनमें नहीं था। इसलिये भारत सम्मिलित है कि  
पापका आवरण करनेके कारणही नगरसे बहिष्कार होना संभव है।

## कुछ पापोंकी गणना

रामचन्द्रजीको धर्ममें भ्रष्टनेके कार्यके साथ मेरा कोई संबंध नहीं है,  
जिसका संबंध होगा उसको ये पापक लेनेगे, ऐसा भारतने कहा। भारतके  
इस भाषणमें जो पापोंकी गणना की गयी है, उसमें ये पाप सम्मिलित हैं।  
(सं. ७५)

१. पापीयसां प्रेष्यं ( २२ ) - पापी लोगोंकी सेवा करना,

२. सूर्यं प्रति मेहतु ( २३ ) - सूर्यके सामने मुक्त करके गुरु करना,

३. कारयित्वा महत्कर्म मर्ता भृत्यं अनर्थकम् । ( २४ ) - बहुत  
काम करवाकर मादिकका मजदूरको कम वेतन देना अथवा बिपुल वेतन  
न देना,

४. हन्तुं पादेन सुतां गां- सोपी गायको साथ मारना,

५. परिपालयमानस्य राक्षो भूतानि पुनश्च । ततश्च पुनश्च

ततः सर्वा नरेन्द्रस्य कैकेयीप्रमुखाः स्त्रियाः ।

रुदत्यः शोकसंतप्ता निपेतुर्गतचेतनाः २६

( अयोध्या. स. ६५ )

‘ हे पापिनी कुलघातकी कैकेयी ! हे मेरे शत्रुरूपिणी ! ऐसे शब्द उच्चार करता हुआ, रोने पीटने चिल्लाने और शोक करनेकी अवस्थामें राजा दशरथ कौसल्या तथा सुमित्राके समीपवर्ती स्थानमें मृत्युके वश हो गया । इस समय कौसल्या और सुमित्रा अतिशोकके कारण निद्रित हो गयी थीं, इस कारण दशरथके प्राण चले गये हैं, इसका उनको भी पता नहीं लगा या । अन्तःपुरकी स्त्रियोंने राजा मर चुका है ऐसा मालूम होतेही रोने पीटनेके लिये प्रारंभ किया, तब उस आक्रोशके शब्दसे कौसल्या और सुमित्राको जाग आयी, तब उनको पता लगा कि राजा गतप्राण हुआ है । यह समझतेही ‘ हे नाथ ! ’ ऐसा चिल्लाते हुए शोक करके मूच्छासे भूमिपर गिर गयीं । इसके पश्चात् कैकेयी और अन्य राणियां वहां आगयीं और वे सब भी अत्यंत शोक करने लगीं । ’

राजा दशरथ सार्वभौम सम्राट् या । परंतु उसकी मृत्युके समय अर्थात् प्राण जानेके समय उसके पास देखनेके लिये भी कोई जागता हुआ आदमी वहां नहीं था । कौसल्या और सुमित्रा पतिसेवामें तत्पर थीं, पर राजाका मृत्यु मध्यरात्रिके समय हुआ, उस समय शोकातिरेकसे आयी थकावटके कारण वे निद्रित थीं । दशरथके प्राण चले जानेके पूर्व कौसल्या और सुमित्रा जो सो गयीं वे सबेरे जाग उठीं अर्थात् राजाका प्रेत प्रायः ४-६ घण्टे बैसाही वहां पड़ा रहा । कोई देखनेके लिये भी वहां न था ।

कैकेयी तो मृत्युके समय वहां थीही नहीं । सब अन्तःपुरवासिनी स्त्रियों का शोकका आक्रोश सुनकर वह वहां आगयी । तबतक कैकेयी अपनेही महलमें सोती रही थी । उसने इन पांच या छः दिनोंमें राजाकी खबर भी नहीं ली थी ।

### राजाका सिर

कौसल्या वाष्पपूर्णाक्षी त्रिविधं शोककार्शिता ।

उपगृह्य शिरो राक्षः कैकेयीं प्रत्यभाषत २ ( अयोध्या. स. ६५ )





## मुनिका शाप

एवं त्वं पुत्रशोकेन राजन्कालं करिष्यसि ५४

अज्ञानात्तु हतो यस्मात्क्षत्रियेण त्वया मुनिः ।

तस्मात्त्वां नाविशत्याशु ब्रह्महत्या नराधिप ५५

त्वामप्येतादृशो भावः क्षिप्रमेव गमिष्यति ।

जीवितान्तकरो घोरो दातारमिव दक्षिणाम् ५६

( अयोध्या. स. ६४ )

‘ हे राजन् ! तेरी भी मृत्यु इसी तरह पुत्रके शोकसेही होगी । तुमने यह वध न जानते हुए किया है, इसलिये तुम्हें ब्रह्महत्याका पातक नहीं छोगा । पर जैसी हमारी मृत्यु पुत्रशोकसे हो रही है, वैसीही तुम्हारी भी मृत्यु पुत्रशोकसेही होगी । ’

किसीको निष्कारण बहुत दुःख हुआ, तो वह जो शापवाणी बोलता है, वैसा ही बनता है । ऐसा ही यहां हुआ ।

## छोटी आयुमें किया पाप

कुमारः शब्दवेधीति मया पापमिदं कृतम् ११

एवं मयाप्यविज्ञातं शब्दवेध्येमिदं फलम् ।

देव्यनूढा त्वमभवो युवराजो भवाम्यहम् १२

( अयोध्या. स. ६३ )

‘ हे कौसल्ये ! तुम्हारे साथ मेरा विवाह भी नहीं हुआ था, मैं कुमार अवस्थामें था, तब मैं शब्दवेध करनेमें प्रवीण था । उस युवराज अवस्थामेंही यह पाप मुझसे हुआ था । ’

यह पाप श्रावणका वध ही है । श्रावण अपने अन्धे और बृद्ध माता-पिताओंके लिये जल लानेके लिये नदीपर गया था । वहां वह कमण्डलुमें पानी भर रहा था, उस जलमें कमण्डलु हुवानेका जो शब्द हुआ, उसे दशरथने सुना । दशरथको वह शब्द हाथीके पानी पीने जैसा प्रतीत हुआ । हाथी समझकर राजाने बाण चलाया, वह बाण श्रावणके मर्मपर लगा,

उस कारण यह मरा । तब ध्रावणके मातापिताओंने राजाको ऐसा शाप दिया कि ' हे राजन् ! तू भी हमारे जैसाही पुत्रशोकसे मरेगा । '

इस पूर्व-श्रुतका स्मरण राजाको इस समय हुआ और वह इस समय बोल रहा है कि ' इस पूर्व समयमें किये पापका फल आज मुझे मिल रहा है । '

जिस समय ध्रावणका वध हुआ, उस समय दशरथ कुमार था, युवराज था । उसका विवाह भी नहीं हुआ था । इस कारण दशरथको इस शापसे आनन्द हुआ, ऐसा जो कई ग्रंथोंमें लिखा है, वह अशुद्ध है, ऐसा दीखता है । विवाहके पूर्वका यह अपराध है, उस समय राजाको पुत्र न होनेका दुःख होना संभवही नहीं है । अर्थात् पुत्रशोकसे मृत्यु होनेका शाप सुननेसे, पहिले पुत्र होगा, पश्चात् उसका शोक होगा, ऐसा मानकर पुत्रहीन राजाको यह शाप सुखकारक लगा, ऐसा जो कहते हैं, वह सब कल्पना मात्र है, इसमें सचाई नहीं है, यह यहां स्पष्ट हुआ है ।

### धानप्रस्थी व्रतिका वध

धानप्रस्थाश्रममें रहनेवाले व्रतिका वध करनेसे राजाका नाश होता है, ऐसा ध्रावणका पिता कहता है—

क्षत्रियेण वधो राजन् धानप्रस्थे विशेषतः ।

ज्ञानपूर्वं कृतः स्थानाच्छयावयेदपि वज्रिणम् १३

सतथा तु भवेन्मूर्धा मुनौ तपसि तिष्ठति ।

शानाद्विस्त्रुजतः शस्त्रं तादृशे ब्रह्मवादिनि १४

अज्ञानाद्वि कृतं यस्मादिदं ते तेन जीवसे ।

( अयोध्याकाण्ड सर्ग ६४ )

' यदि क्षत्रियने जानबूझकर धानप्रस्थी मुनीका वध किया तो वह राजा अपने स्थानसे पदच्युत होगा, उसके सिरके टुकड़े टुकड़े हो जायेंगे । तुमने यह वध न जानते हुए किया है, इसलिये जी रहे हो । '

ऐसा ध्रावणके पिताका वचन है । मुनिका वध हुआ, तो राजाको इतना

बड़ा भय प्राप्त होता है । इससे उस समय राजाकी शक्ति कम थी और कपि मुनि व्रतीकी संघटना अच्छी थी, यही निश्चित होता है ।

### अराजक राष्ट्र

राष्ट्रमें अराजकता नहीं होनी चाहिये, क्योंकि अराजक अवस्था राष्ट्रकी हानि करती है । इस विषयमें इस रामायणके अयोध्या-काण्डके ६७ वें अध्यायके विधान विशेष ध्यानसे देखने योग्य हैं । उनमेंसे कुछ नमूनेके लिये देखिये—

१. अराजक राष्ट्रका नाश होता है । (८)

२. राष्ट्रमें अराजकता हुई तो कोई भी थोड़ासा भी धान भूमिमें बोना नहीं चाहता । इससे किसीको खानेके लिये अन्न नहीं मिलता । (१०)

३. अराजकता होनेपर न पुत्र पिताकी आज्ञामें रहता है तथा स्त्री पतिकी आज्ञामें रहती है । अराजकतामें किसीका धन सुरक्षित नहीं रहता । (११)

४. अराजक देशमें व्यापारपध्धा ठीक नहीं चलता । (१३)

५. अराजक देशमें परिपदे नहीं होती, रमणीय उद्यान नहीं होते, तथा यज्ञ-याग भी नहीं होते । (१४)

६. अराजक देशमें राष्ट्रका संवर्धन करनेवाले महोत्सव नहीं होते तथा किसी संघटनाकी उत्पत्ति भी नहीं होती । (१५)

७. अराजक देशमें देशदेशान्तरका व्यापार-व्यवहार नहीं होता । (१६)

८. अराजक देशमें सुवर्णालंकार धारण करके कुमारिकाएं उद्यानोंमें सायंकाल खेलकूद और भ्रमणादिके लिये नहीं जा सकती । (१७)

९. किसान वा अन्य कोई रातके समय अपने घरके द्वार खुले रख कर अराजक देशमें नहीं सो सकते । (१८)

१०. अराजक देशमें स्त्री-पुरुष बेगवान् यानोंमें बैठकर दूरतक भ्रमण करनेके लिये नहीं जा सकते । (१९)

११. अराजक प्रदेशमें मुनि संचार नहीं करते, क्योंकि किसीका योगक्षेम वही चलता नहीं । (२३-२४)

१२. मराजक देशमें किसीका भी जीवन और धन सुरक्षित नहीं रहता। वहाँके लोग मछलियोंके समान एक दूसरोंको खाते रहते हैं। ( ३१ )

राष्ट्रमें नियमन और शासन करनेवाली संस्था अवश्य चाहिये, यही इसका तात्पर्य है। यह संपूर्ण अध्याय राष्ट्रकी सुच्यवस्थाकी दृष्टिसे विचारपूर्वक देखना चाहिये। यह अध्याय बहुतही मनन करने योग्य है।

### जनसंमत राजा

यदि प्रयाजितो रामो लोभकारणकारितम् ।  
वरदाननिमित्तं वा सर्वथा दुष्कृतं कृतम् २८  
असमीक्ष्य समारब्धं विरुद्धं बुद्धिलाघवात् ।  
जनयिष्यति संक्रोशं राघवस्य विवासनम् ३०  
अहं तावन्महाराजे पितृत्वं नोपलक्ष्ये ।  
भ्राता भर्ता च बन्धुश्च पिता च मम राघवः ३१  
सर्वलोकप्रियं त्यक्त्वा सर्वलोकहिते रते ।  
सर्वलोकोऽनुरज्येत कथं चानेन कर्मणा ३२  
सर्वप्रजाभिरामं हि रामं प्रयाज्य घार्मिकम् ।  
सर्वलोकविरोधेन कथं राजा भविष्यति ३३

( अयोध्या. स. ५८ )

राजपुत्र लक्ष्मण कहता है—

१. धीरामचन्द्रको लोभसे अथवा वरदानके कारण वनमें भेजा होगा, तो यह नितान्त अयोग्य है।

२. क्षुद्र बुद्धिसे किया हुआ यह कार्य महा शोकके लिये कारण होगा।

३. दशरथ राजासे अब मेरा पितृत्वका संबंध रहा नहीं है।

४. मेरा भाई, पोषणकर्ता, बन्धु और पिता रामही है।

५. जनताका हित करनेवाले लोकप्रिय रामचन्द्रको नगरसे बहिष्कृत करके जनताकी प्रीति राजाके लिये कैसी प्राप्त होगी ?

६. सब जनताके लिये प्रिय रामचन्द्रको वनमें भेजकर और इस कारण

हि० ११ ( अयोध्या. उ. )

सब जनताका विरोध करके कौन भला राजा हो सकता है ?

इस लक्ष्मणके कथनमें यह स्पष्ट कहा है कि जनताकी अनुकूलताके बिना कोई भी राजा नहीं हो सकता । जनता की संमतिसेही कोई भी राजगद्दीपर स्थिर रह सकता है । जनतामें, स्वभावतः यह शक्ति है, यह लक्ष्मणको पता था । इसी लिये वह कहता है कि जनताकी प्रीति रामचन्द्र पर है, वैसी भरतपर नहीं है, इस कारण दशरथ वा भरत इनमें से कोई भी राजा नहीं हो सकता । इस लक्ष्मणके कथनमें एक अटल राजनैतिक सिद्धान्त कहा गया है ।

दशरथके साथ उसका पितृत्वकर्मसंबंधभी तोड़नेके लिये वह तैयार हो चुका था । इतना इस समय लक्ष्मण क्रोधके अधीन हुआ था । इसलिये यदि लक्ष्मण अयोध्यामें रहता, तो भरत सुखसे राज्य कर सकता था, ऐसा दीखता नहीं ।

## राजाका प्रेत

दशरथकी मृत्यु होनेके समय उसकी ओर देखनेके लिये वहां कोई भी नहीं था । इतनाही नहीं, परंतु उसका प्रेतसंस्कार मृत्युके पश्चात् ७ वें दिन हुआ था । देखो—

व्यपनिन्द्यः सुदुःखार्ता कौसल्यां व्यावहारिकाः १३

तैलद्रोण्यां तदामात्याः संवेश्य जगतीपतिम् ।

राज्ञः सर्वाण्यथादिष्यश्चक्रुः कर्माण्यनन्तरम् १४

न तु संकालनं राज्ञो विना पुत्रेण मन्त्रिणः ।

सर्वज्ञाः कर्तुमीयुस्ते ततो रक्षन्ति भूमिपम् १५

तैलद्रोण्यां शायितं तं सचिवैस्तु नराधिपम् ।

( अयोध्या. स. ६६ )

‘ राजाकी मृत्यु होनेके पश्चात् व्यवहारकुशल मन्त्रियोंने कौसल्याको वहांसे दूर करके राजाका प्रेत तेलकी कढ़ाहीमें रख दिया । पश्चात् वसिष्ठ ऋषि आदि ऋषियोंकी आज्ञासे करने योग्य प्रेत-कर्म किये गये । पुत्रके बिना

प्रेतमंस्कार करना योग्य नहीं है, ऐसा उन्होंने ठहराया। इसीलिये भरतके आनेतक राजाके प्रेतको तेलकी कड़ाहीमें रख दिया और उसका संरक्षण करनेका प्रबंध भी उन्होंने किया।'

## भरतको बुलाया

दशरथ राजाका प्रेत तेलकी कड़ाहीमें रख दिया और वह न सड़े इसका तथा उसकी सुरक्षाका प्रबंध कर दिया। पश्चात् वामिष्ठ आदिकोंमें भरतको बुला लानेका निश्चय किया। उसको बुलानेके लिये दूत भेजे और उनके साथ बड़े बड़े उपहारके रूपमें बहुतसी सुयोग्य सामग्री भेजी। वे दूत केकय देशमें गये। पर सब दूतोंसे यह कहा गया था कि राजाकी मृत्यु और रामका वनवास आदि सबर किसीसे नहीं कहना। उपहारोंको दूतोंके साथ भेजनेका तात्पर्य इधर सब कुशल है, ऐसाही होता है। बहुतही आवश्यक कार्य उत्पन्न होनेके कारण भरतको बुलाया है, ऐसाही संदेशा दूतोंके साथ दिया गया था।

छोटी छोटी बातोंमें किननी सावधानता रखनी पड़ती है, सो यहां पाठक देखें। भरत अयोध्यामें आनेतक भरतको तथा केकय देशमें किसीको दशरथकी मृत्युकी खबर नहीं थी। इतनी यह मृत्युकी खबर गुप्त रखी गयी थी।

इसका कारण भी वैसाही था। यदि इसी समय दशरथकी मृत्युकी खबर फैल जाती तो कोई शत्रु आक्रमण करता, अथवा केकय राजा भी भरतको राज्यपर विठलानेके लिये सेनाके साथ आजाता। इस आपत्तिको टालनेके लिये राजाकी मृत्युकी खबर अत्यंत गुप्त रखी गयी थी। दशरथ नेभी भरतको न बुलाकर अथवा केकयराजको निमंत्रण न देकर एकदम रामचंद्रजीको यौवराज्याभिषेक करनेकी शीघ्रता की थी। इसका संबंध जोड़नेमें मृत्युकी गुप्तता रखनेका कारण स्पष्ट दीखने लगता है।

## भरतके आनेका मार्ग

१. राजकुमार भरत अपने मामाके महलसे अयोध्याको पहुंचनेकी दिग्गम पूर्व दिशाके मार्गसे चल पड़ा,

२. वहांसे वह सुदामा नदीपर पहुंचा,  
 ३. पश्चात् वह विस्तृत और विशेष फैली ह्यादिनी नदीपर आया,  
 ४. वहांसे भरत शतद्रु नदीपर आया,  
 ५. पश्चात् वह ऐलधान ग्रामके पास पहुंचकर अमरपर्वतके समीप पहुंचा  
 ६. नंतर वह शिला नदीको लांघकर आगे बढ़ा, वहांसे आग्नेयी दिशासे शल्यकर्षण प्रदेशमें पहुंचा ।

७. इसके बाद वह शिलावहा नदीमें स्नान करके चैत्ररथ नामक बन पहुंच गया,

८. पश्चात् गंगा और सरस्वतीके संगमपर पहुंच कर तसने वहां स्नाप किया,

९. नंतर वीरमत्स्य देशकी उत्तर दिशामें पहुंचकर भांडद वनमें पहुंच गया,

१०. पश्चात् कुलिंगा नदीके पार जा कर यमुनाके तटपर आगया और वहां उसने अपने सैनिकोंको विश्राम करनेके लिये कहा,

११. इसके बाद वह घने वनसे पार होकर अंशुधान ग्रामके पास पहुंचा, प्राग्वट नगरके पासके प्रदेशको पार करके सेनाके साथ गंगाके पार हुआ, वहांसे वह धर्मवर्धन ग्रामको पहुंचा,

१२. वहांसे वह तोरण ग्रामके दक्षिण दिशामें अवस्थित जंबुप्रस्थ नामक नगरके पास पहुंचा, वहांसे वह चरुथ नगरीके पास गया और वहांसे रम्य वनको लांघकर उज्जिहान नगरीको पहुंचा ।

१३. यहांसे अपनी राजधानी अयोध्या पाम है, ऐसा देखकर उसने वेगवान् घोड़े अपने रथको जोड़ दिये, और अनुयायियोंको शनैः शनैः आनेके लिये कहकर, स्वयं जलदी पहुंचनेकी इच्छासे वेगसे आगे बढ़ा

१४. आगे सर्वतीर्थ ग्राममें थोड़ा विश्राम करके, अनेक नदियोंको लांघकर हस्तिपृष्ठ ग्रामके पास कुटिका नदीके पार हुआ,

१५. पश्चात् लौहित्य ग्रामके पास कपीवती, एकसाल ग्रामके पास स्थानुमती और विनत ग्रामके पास गोमती नदीको लांघकर भरत आगे

चलने लगा,

१६. नंतर कलिंग नगरके पासके सालवनके पास पहुँचकर, रातही रात में उसने वह वन छाँध दिया और सबेरे अरण्योदयके समय उसने अयोध्या नगरीका दर्शन किया,

१७. थोड़ेही समयमें उसने अयोध्यामें प्रवेश किया । (अयोध्या. स. ७१)

केकय देशसे चलकर अयोध्याको पहुँचनेके लिये भरतको ( मत्तमी रात्रिः । अयोध्या. स. ७२।८ ) सातवीं रात्रि आ गयी अर्थात् इसका मार्ग सात दिनोंका था । रथके घोड़े अधिकसे अधिक दिनमें ३०।४० मैल जाते हैं, ऐसा माननेसे केकय देशसे अयोध्यातक जाने आनेका अन्तर दो ढाई सौ मैल अधिकसे अधिक होगा, ऐसा अनुमान हो सकता है ।

### सूतने चार दिन राह देखी थी

श्रीरामचन्द्रको गंगा-तीरपर पहुँचानेके बाद वह गंगापार होकर वनमें चल गया । सूतने समझा था कि श्रीरामचन्द्रजी वनवाससे तंग आकर वापस चले आयेंगे और तब मैं उनको वापस ले जाऊँगा । इस इच्छासे वह वहीं चार दिन रहा ।

गुहेन सार्धं तत्रैव स्थितोऽस्मि दिवसान् बहुन् ।

आशया यदि मां रामः पुनः शब्दापयेदिति ३

(अयोध्या. स. ५९)

‘गुहके साथ मैं वहीं गंगातीरपर इस इच्छासे रहा कि राम वापस आवेंगे और मुझे कहेंगे कि ‘वापस चलो,’ तो मैं उनको वापस ले आऊँ, इस इच्छासे मैं बहुत दिन वहीं ठहरा, पर वह नहीं लौट आये ।’ बहुत दिन’ के माने तीन दिन,

१ पहिले दिन श्रीरामचन्द्रजी गंगा किनारे पहुँचे, दूसरे दिन पार हुए,

२ दूसरे दिन वे चित्रकूटपर पहुँचे,

३ तिसरे दिन गुहके दूतोंने वे चित्रकूटपर पहुँचनेकी खबर लायी,

रामचन्द्रजी जिस दिन गंगापार हुए उससे पूर्वदिन शामको वे गंगा



तटपर पहुँचे थे । इससे पता चलता है कि सारथी गंगातटपर चार दिन इंतजार करता रहा । सूतने ( वहन् दिवसान् ) बहुतदिन मैं वहाँ रहा ऐसा कहा है । श्रीरामभद्रके विरहसे कारण चार दिनही उसको बहुत दिन करके प्रतीत हुए । ऐसा होना दुःखके कारण अत्यंत स्वाभाविकही है ।

## रामचन्द्रजी वनमें जाकर पांच दिन हुए

वनवासाय रामस्य पञ्चरात्रोऽत्र गण्यते ।

यः शोकहतहर्षायाः पञ्चैवर्षोपमो मम १७

‘राम वनवासमें जाकर आज पांच रात्रियां हो गयीं । ये पांच रात्रियाँ दुःखके कारण पांच वर्षोंके समान प्रतीत हुईं,’ ऐसा कौसल्या कहती है । दुःखसे ऐसाही होवा है ।

छठी दिन भी इसी तरह चला गया । सूर्यका अस्त हुआ और छठी रात्रि प्रारंभ हुई । तब दशरथ राजाको शोकसे थोड़ीसी निद्रा या बेहोशी-सी आगयी । ( अयोध्या. ६२।१८-२० )

स राजा रजनीं पथीं रामे प्रव्याजिते वनम् ।

अर्धरात्रे दशरथः सोऽस्मरद् दुष्कृतं कृतम् ४

( अयोध्या. स. ६३ )

इस छठी रात्रिके समय मध्यरात्रिमें दशरथको उस श्रावणवधके अपनेही दुष्कृत्यका स्मरण हुआ और वह वृत्तांत उसने कौसल्यासे कहा ।

## दो दिनका प्रवास

श्रीरामचन्द्रको गंगानदीतक पहुँचाकर रथको वापस अयोध्यामें आनेके लिये दो दिन लगे, यह मार्ग दोही दिनका है ।

ततः सायाह्नसमये द्वितीयेऽहनि साराथिः ।

अयोध्यां समनुप्राप्य निरानन्दां ददर्श ह ५

( अयो. स. ५७ )

‘दूसरे दिन सायंकालमें सुमंत्र रथ लेकर आनन्दरहित अयोध्यामें आ पहुँचा ।’ छत्तीस घण्टे उसको आनेके लिये लगे, ऐसा इसमें स्पष्ट होता

है। यह मार्ग अयोध्यासे अधिकसे अधिक ५० या ६० मील होगा।

## रामकी स्त्रीवधके लिये घृणा

अवध्याः सर्वभूतानां प्रमदाः क्षम्यतामिति २१

हन्यामहं इमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम् ।

यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम् २२

इमामपि हतां कुब्जां यदि जानाति राघवः ।

त्वां च मां चैव धर्मात्मा नाभिभाषिष्यते ध्रुवम् २३

( अयोध्या. स. ७८ )

भरतने शत्रुघ्नसे कहा- ‘ स्त्रियोंका वध करना सर्वथा निषिद्ध है। धर्मात्मा राम यदि मुझे मातृघातकी कहकर दोष न देगा, तो मैं इस दुष्ट आचरणवाली कैकेयीका वध करूंगा। यदि मैंने उस कुब्जा मंधराका वध किया तो वह धर्मात्मा राम मुझसे भाषण भी नहीं करेगा। ’ इस-लिये मैं इनका यहां वध नहीं करता, नहीं तो मेरा जी तो चाहता है कि मैं इनका वध करूं।

भरतने शत्रुघ्नसे कहा कि इस कारण तू इसका वध न कर। श्रीराम-चन्द्रका भय भरत और शत्रुघ्न मानते थे। श्रीरामचन्द्रका आदर्श वर्ताव ऐसाही उत्तम था।

## सीता जेवर पहनती थी

नूपुरोत्कृष्टलीलेय खेलं गच्छति भामिनी ।

इदानीमपि वैदेही तद्रागान्यस्तभूषणा १९

( अयोध्या. स. ६० )

‘ नूपुरोंकी आवाजसे सीतादेवीके चलनेमें अधिक लालित्य प्रतीत होता था। सीता जेवरोंके धारण करनेकी इच्छा करके वनमेंभी वह अपने शरीर-पर जेवर धारण करती थी। ’

स्त्रियां जेवर पहनना सदा पसंद करनी हैं, यह बात यहां कविने बड़े लाजिके साथ बताया है। सीता जेवर पहनती थी, ऐसा कहनेसे वह

वनवाससे उदास नहीं हुई थी, ऐसा यहां कविने सूचित किया है ।

### मुझे स्मरण नहीं

‘मुझे स्मरण नहीं’ ऐसा सूतने सीताका संदेश कहनेके समय कहा—

कैकेयीसंश्रितं जल्पं नेदानीं प्रतिभाति माम् १४

( अयोध्या. स. ६० )

‘कैकेयीके संबंधमें सीताने क्या कहा, सो मुझे अब याद नहीं है।’ इस संबंधमें कविका कथन ऐसा है—

ध्वंसयित्वा तु तद्वाक्यं प्रमादात् पर्युपस्थितम् ।

ह्लादनं वचनं सूतो देव्या मधुरमब्रवीत् १५

( अयोध्या. स. ६० )

कैकेयीके संबंधमें सीता देवीने जो भाषण किया था, उसका स्मरण सूतको अच्छी तरह था, कहनेके लिये वह भाषण उसकी जिह्वापर आया भी था । पर वह बड़ा अप्रिय था, इसलिये सूतने कहा नहीं और जिससे आनन्द प्रतीत होगा वही भाषण उसने वहां कहा । चतुर दूतके येही लक्षण हैं ।

### स्त्रियोंके साथ भ्रमण

स्त्रियोंको साथ लेकर एक कोसतक ( दो तीन मील ) लोक घूमनेके लिये जाते थे । ऐसा उस समय रिवाज था, ऐसा प्रतीत होता है—

रामं वा लक्ष्मणं वापि दृष्ट्वा जानाति जानकी ।

अयोध्याक्रोशमात्रे तु विहारमिव संश्रिता १६

( अयोध्या. स. ६० )

सीतादेवी रामचन्द्रको वनके संबंधमें मालुमात पूछती है । और अयोध्या से एक कोस फासलेतक भ्रमणके लिये गयी है, ऐसे भावसे वह आनन्दसे रहती है, ऐसा दूतने कहा ।

इस कथनमें नगरसे एक कोस दूरीतक स्त्रियोंके साथ भ्रमण करनेका उल्लेख है । इससे प्रतीत होता है कि ऐसा रिवाज उस समय था । कुमा-

रिक्तार्थदानोंमें खेलकूदके लिये जाती ही थीं। स्त्रिया भी जाती थीं। मात्र यह रिवाज रहा नहीं है।

## यज्ञकर्ममें रामकी प्रवीणता

यज्ञस्व, कुशलो ह्यसि २९ (अध्या. स. ५६)

‘रामचन्द्रजी याजनकर्ममें कुशल थे।’ पितृमेशादि कार्य वे स्वयं कर सकते थे। इतनी कुशलता और प्रवीणता वैदिक कर्मोंमें श्रीरामचन्द्रजीकी थी। पुरोहितकी सहायताके बिनाही वे सब धर्म-कर्म, यज्ञयाग, होम-इवन किया करते थे। सब धर्म-कर्म किस तरह करने चाहिये, उनके विधि-नियेध क्या हैं, संक्षेपसे कर्म किस तरह किये जाते हैं, यह सब उनको शान था।

इस समयके क्षत्रियोंको यह सब पढ़ाया जाता था, रामचन्द्रजीने पितृ-श्राद्ध स्वयं किया था इस विषयमें देखिये—

## पितृश्राद्ध

आनयेद्भुदिषिष्याकं चीरमाहर चोत्तरम् ।

जलक्रियार्थं तातस्य गमिष्यामि महात्मनः २०

सीता पुरस्ताद्भुजतु त्वमेनामभितो व्रज ।

अहं पश्चाद्गमिष्यामि गतिर्होषा सुदारुणा २१

(अध्या. स. १०४)

‘सूने हुए इंगुदी फलोंका पिण्ड यहां ले आ। वह उत्तम बल्कल भी ले आ। मैं पिताकी उदकक्रिया करता हूं। सीतादेवी पहिले चले, लक्ष्मण उसके पीछेसे जावे और मैं सबसे पीछेसे आऊंगा। इस कार्यके लिये ऐसा ही जाना चाहिये।’

‘सर्वे कनिष्ठप्रथमा इतरे तु स्त्रियोऽग्रतः’

‘स्त्रियाँ सबसे प्रथम जायें, छोटी ऊमरवाले उसके बाद चले, अन्य लोग आयुकी अनुसार पीछेसे जायें।’ इस शास्त्रवचनसे अनुसार राम-

चन्द्रजीने किया । यहां इंगुदी फलोंके आटेका पिण्ड दिया है । यहां मांसका उल्लेख नहीं है । श्रीरामचन्द्रकी पर्णशालामें यदि मांस होता तो वह इस समय लिया होता । इससे प्रतीत होता है कि मांस-वचन बहुधा प्रक्षिप्त होंगे ।

श्रीरामचन्द्रजीके शास्त्रविधिके समाप्त करनेके पश्चात् कौसल्याने वह पिण्ड इंगुदीके आटेका है, प्रेमा देखा और उसको बड़ा ही दुःख हुआ, उसने तब कहा— ‘ देखो भाई, देखो ! इतने बड़े सम्राट्के लिये यह इंगुदीके आटेका पिण्ड दिया जाता है ! क्या सम्राट्के लिये यह योग्य भोजन है ? वैभवसंपन्न रामचन्द्रपर अपने वैभवसंपन्न पिताके लिये प्रेमा इंगुदी-पिण्ड अर्पण करनेका दारुण प्रसंग आया है, इससे अधिक दुःखदायी तो और क्या हो सकता है ? ’ (अयोध्या. १०५।८-१७)

### १३ दिनका और्ध्वदेहिक

और्ध्वदेहिक तेरह दिनतक चलता था । चौदहवें दिन मनुष्य इसमें निवृत्त होकर अपने दैनिक कार्यमें लगता था —

ततः प्रभातसमये दिवसेऽथ चतुर्दशे ।

समेत्य राजकर्तारो भरतं वाक्यं धनुचक्रं १

( अयोध्या. स. ७९ )

चौदहवें दिन सबरे राज्यके सब ओहदेदार आगये और सबने भरतसे कहा कि ‘ अब तुम राज्यका पालन करो । ’ उसपर भरतने कहा कि— ‘ बड़े भाईकाही अधिकार राज्यपर बैठनेका है । इसलिये मैं वनमें जाऊंगा और श्रीरामचन्द्रको वापस ले आऊंगा । सब मिलकर उनकोही राजगद्दीपर बिठलायेंगे । ’ ( अयोध्या. ७९।६-१३ )

भरतका यह भाषण सुनकर सबको आनन्द हुआ । और उन्होंने कहा— ‘ जिस कारण बड़े भाईको ही राज्य देनेकी तुम्हारी इच्छा है, उस कारण तुम्हें कमलवासिनी लक्ष्मी प्राप्त होवे । ’ इस तरह सबने भरतको आशीर्वाद दिया और भरतका यह भाषण सुनकर सबको अत्यंत आनन्द भी

हुआ। पश्चात् रामचन्द्रजीको वापस लानेके लिये वनमें जानेकी आज्ञा भरतने सबको दी। तब सब लोग वनगमनकी तैयारी करने लगे।

## वनभोजन

नीवार नामक धान्य है, जो वनमें स्वयं उगता है। यह तृणधान्य है। यही वनवासियोंका भोजन है—

भुक्त्वाशनं विशालार्क्षी सूपदंशान्वितं शुभम् ।

वन्यं नीवारमाहारं कथं सीतोपभोक्ष्यते ५

( अयोध्या. म. ६१ )

‘जायकेदार चयनियों और स्वादु पदार्थ खानेका अभ्यास सीतादेवीको अयोध्यामें था, वही सीता अब नीवारका भोजन किस तरह करती होगी?’

नीवारका आटा, सीगाड़ोंका आटा, इंगुदीके फलोंका आटा, यह अन्न चुष्क, नि सार और रसहीन है। यही वनमें मिलेगा। यह सीता कैसा खायेगी, ऐसा कहकर शोक हो रहा है।

## मांसभक्षण

इस समय मांसभक्षण किया जाता था या नहीं, इसका विचार करनेके समय निम्नलिखित वचन देखने योग्य हैं—

पेणेयं मांसं आहृत्य शालां यक्ष्यामहे वयम् २२

कर्तव्यं वास्तुशमनं सौमित्रे चिरजीविभिः ।

मृगं हत्वाऽऽनय क्षिप्रं लक्ष्मणेह शुभेक्षण २३

कर्तव्यः शास्त्रदृष्टो हि विधिधर्ममनुस्मरन् ।

पेणेयं श्रपयस्वैतच्छालां यक्ष्यामहे वयम् २४

न्यार साम्यं मुहूर्तोऽयं ध्रुवश्च दिवसो हयम् ।

स लक्ष्मणः कृष्णमृगं हत्वा मेध्यं प्रतापवान् ।

अथ चिक्षेप सौमित्रिः समिद्धे जानकेदम् २५

ननु पक्षं समाधाय निप्रसं छिन्नशोणितम् २६

लक्ष्मणः पुरुषव्याघ्रं अथ राघवमब्रवीत् ।  
 अयं सर्वः समस्तांगः स्थितः कृष्णमृगो मया २८  
 देवता देवसंकाश यजस्वकुशलो ह्यसि ।  
 रामः स्नात्वा तु नियतो गुणवाञ्छकोविदः २९  
 संप्रहेणाऽकरोत्सर्वान्मन्त्रान् सत्रावसानिकान् ।  
 इष्ट्वा देवगणान् सर्वान् विवेशावसथं शुचिः ३०  
 वैश्वदेवबलिं कृत्वा रौद्रं वैष्णवमेव च ।  
 वास्तुशंसमनीयानि मंगलानि प्रवर्तयन् ३१  
 जपं च न्यायतः कृत्वा स्नात्वा नद्यां यथाविधि ।  
 पापसंशमनं रामश्चकार बलिमुत्तमम् ३२  
 वेदिस्थलविधानानि चैत्यान्यायतनानि च ॥  
 आश्रमस्यानुरूपाणि स्थापयामास राघवः ३३

(अयोध्या. स. ५६)

इसका आशय यह है— श्रीरामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा कि 'हे लक्ष्मण ! हरिनका मांस ले आ, हम वास्तुशान्ति करेंगे। दीर्घकालतक घरमें रहने-वालोंको उचित है कि वे वास्तुशान्ति करें। मृगको मारकर शीघ्र ले आ। शास्त्रके अनुसार और विधिके अनुसार वास्तुशान्ति करना योग्य है। हरिनका मांस पकाकर तैयार कर, हम अब इस शालाकी शान्ति करेंगे। हे लक्ष्मण ! तू त्वरा कर, यह ध्रुव दिवस है। लक्ष्मणने कृष्ण मृगको जलती आगमें डाल दिया। पश्चात् वह पककर तैयार हुआ, तब रक्तलाव बंद हुआ, यह देवकर उसने श्रीरामचन्द्रसे वैसा कहा। अब देवताओंका यजन कर, तुम इस कार्यमें कुशल हो, ऐसा कहा।

श्रीरामचन्द्रजीने स्नान किया, जप किया, पश्चात् संक्षेपसे वास्तुशान्तिका संस्कार किया। सब देवताओंके उद्देश्यसे हविर्भाग दिया और पवित्रता-पूर्वक उसने उस घरमें प्रवेश किया।

बलि, वैश्वदेव, रुद्रबलि और वैष्णव बलि करके उसने वास्तुशान्ति की। जप किया, नदीमें फिर स्नान किया। पापके नाशके लिये बलि दिया,

वेदिस्थान, चैत्यस्थान, देवालय आदिसे उद्देश्यसे तथा आश्रमोंके उद्देश्यसे उन्होंने बलि दिये ।

इसमें मांसका उल्लेख है । पर यदि पाठक इस अवतरणका विशेष सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करेंगे तो उनको स्पष्ट दीखेगा कि इस स्थानपर निष्कारण पुनराक्ति हुई है । श्लोक २२, २३ तथा २५ इनमें तीन स्थानोंपर मृग-मांसका उल्लेख है । और वह पुनरुक्तदोष स्पष्ट है । देखो—

ऐणेयं मांसं आहृत्य शालां यक्ष्यामहे वयम् २२

ऐणेयं श्रपयस्वैतत् शालां यक्ष्यामहे वयम् २५

मृगं हत्वाऽऽनय क्षिप्रं ... २३

यह पुनरुक्ति वाल्मीकिकी है, ऐसा दीखता नहीं है । क्योंकि यह निरर्थक पुनरुक्ति है । खानका उल्लेख श्लोक २९ और ३२ में दो बार है जो प्रसंगहीन है । इसके अतिरिक्त लक्ष्मणने बनायी पर्णकुटि बनमें थी वहां चैत्य, देवालय आदि स्थान थेही नहीं, इनलिये जो स्थान आस पास नहीं हैं, उनके उद्देश्यसे बलि दिये, यह कथन प्रसंगहीन है ।

श्लोक २० के पश्चात् ३४ वां श्लोक होगा ऐसा स्पष्ट दीखता है । अर्थात् भीचका मांस-प्रकरण स्पष्टही प्रक्षिप्त दीखता है ।

## मांस

शुद्धयाणहतांस्तत्र मेध्यान् कृष्णमृगान्दश ।

राशीकृतान् शुष्यमाणानन्यान्कांश्चन काश्चन ३४

क्रियतां बलयश्चेति रामः सीतामथान्वशात् ।

तयोरुपददद्वाचोर्मधु मांसं च तद् भृशम् ३६

( अयोध्या. म १६ )

‘शुद्ध अर्थात् विष न लगाये बाणसे दस कृष्ण मृगोंको मारकर उसका एक ढेर लगाया और अन्य भी कुछ मृग रामचन्द्रने वहां देखे । उनको देखकर रामको आनन्द हुआ । ‘अब बलि देदो’ ऐसा उसने सीतादेवीसे कहा । प्रथम भूतबलि करके पश्चात् मधु और मांस सीतादेवीने उनको यथेच्छ दिया ।’



यह संपूर्ण अध्याय प्राक्षिप्त है, ऐसा सब टीकाकारोंका मत है। इस अध्याय का आगे पीछे कोई संबंध भी नहीं दीखता । मधु नामक मद्य तैयार करने के लिये जितने दिन लगते हैं, उतने दिन श्रीरामचन्द्रजीका निवास भी यहाँ नहीं हुआ था । ऐसा होते हुए यहाँ लिखा है कि सीतादेवीने मधु-मांस यथेच्छ उनको परोस दिया । यह वर्णन उक्त कारणसे प्राक्षिप्त है । कोई भी टीकाकार इस अध्यायको यहाँ नहीं मानता और सब इसको प्राक्षिप्त मानते हैं । कई पुस्तकोंमें यह है और कईयोंमें यह नहीं है । इसलिये यह प्राक्षिप्त है ।

## भरद्वाज मुनिने भरतके सब सैनिकोंको भोजन दिया

सेनायास्तु तथैवास्याः कर्तुमिच्छामि भोजनम् ४

( अयोध्या, स. ९१ )

भरद्वाज ऋषिने कहा कि—‘हे भरत ! तुम्हारे सब सैनिकोंको मैं भोजन देना चाहता हूँ । उसका स्वीकार करो ।’ भरतने प्रथम नम्रतापूर्वक कहा कि ‘इससे आश्रमवासियोंको बड़े कष्ट होंगे,’ पर ऋषिका बहुत आप्रह देस-कर वह उस निमंत्रणको स्वीकार करनेके लिये तैयार हुआ । इस भोजनका वर्णन बड़ा संदेह करने योग्य है ।

इस भोजनमें शरावियोंके लिये मद्य तैयार था, पायस पीनेवालोंके लिये पायस था, मांस खानेवालोंके लिये मांस था, एक एकके लिये सतसत स्त्रियां शरीरपर तेल लगानेके लिये थीं । ( अयोध्या, ९.१।५१-५४ ) यह वर्णन आश्रमजीवनके साथ सजनेवाला नहीं है । यहाँ बकरों और सूवरोंके भी मांस परोसे थे । ( ६७ ) मिट्टीके लपरपर भूने मांस भी थे । ( ७० ) ये सब वर्णन मुनिभोजनके साथ तथा आश्रमजीवनके साथ मिलने-जुलनेवाले नहीं हैं ।

## लक्ष्मणका झोंपडा बनाना

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सौमित्रिर्विविधान्द्रुमान् ।

आजहार ततश्चक्रे पर्णशालामरिदमः

तां निष्ठितां बद्धकटां दृष्ट्वा रामः सुदर्शनाम् ।

(अयोध्या. स. ५६)

रामचन्द्रकी आज्ञा सुगकर लक्ष्मणने अनेक वृक्ष तोड़कर लाये और उनकी एक उत्तम पर्णशाला बनायी । वह उत्तम रीतिसे बनायी, सजायी थी, अन्दर जलन न हो इसलिये उसपर घांसका अच्छा आच्छादन किया था । यह देखनेमें बड़ी सुन्दर दीखती थी । वह देखनेमें सुहानी, रहनेके लिये सुखदायी तथा शीतोष्णका कष्ट दूर करनेवाली थी ।

यहां लक्ष्मणने दूसरोंकी सहायता ली, ऐसा नहीं कहा है । इसलिये अकेले राजपुत्रनेही वह बनायी यह सिद्ध है । कमसे कम तीन कमरे उसमें होंगे ही । श्रीरामचन्द्र और सीतादेवीके लिये एक कमरा, लक्ष्मणके लिये पृथक् कमरा तो अवश्यही चाहिये । इसमें ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय राजपुत्रोंको शोषडा बनानेका और उसमें होनेवाले कष्ट सहन करनेकी शिक्षा भी मिलती थी । गुरुकुलमें अन्य अध्ययनके साथ यह भी पढ़ाया जाता था ऐसा दीखता है । नहीं तो राजपुत्रको एकदम बिना भग्याया शोषडा बनाना कठीन ही प्रतीत होता है ।

### चित्रकूट पर्वत

चित्रकूटं इमं पदं प्रवृद्धशिखरं गिरिम् १०  
समभूमितले रम्ये द्रुमैर्वहुभिरावृते ।  
पुण्ये रस्यामहे तात चित्रकूटस्य कानने ११  
बहुमूलफलं रम्यं संपन्नसरसोदकम् १२  
मनोशोऽयं गिरिः सौम्य नानाद्रुमलतायुतः ।  
बहुमूलफलो रम्यः स्वर्गायः प्रतिभाति मे १३  
मुनयश्च महात्मानो वसन्त्यास्मिन् शिलोञ्चये ।

(अयोध्या स. ५६)

‘इस चित्रकूट पर्वतपर ये बड़े ऊँचे और रमणीय शिखर हैं । यहां नाना प्रकारके रमणीय वृक्ष हैं । इस समतल पवित्र तथा आल्हादकारी

स्थानपर हम आनंदसे रहेंगे । यहां अनेक पक्षियोंके समूह रहते हैं । यहां कंदमूल और फल भी विपुल हैं । नाना प्रकारकी लता-वह्नियोंसे यह शोभता है । यहां हम उत्तम रीतिसे आजीविका कर सकते हैं । यहांका जल भी उत्तम है और यहां ऋषिमुनि भी बहुत रहते हैं । इसलिये यह पर्वत उत्तम है ।’

यहां कन्दमूल फल उत्तम हैं, जल उत्तम है, रहनेके लिये उत्तम स्थान है, धर्मचर्चाके लिये यहां तपस्वी बहुत रहते हैं । इसलिये यहां रहनेसे हमें सुख होगा, यह श्रीरामचन्द्रजीके कहनेका तात्पर्य है ।

### पिशाचबाधा

पिशाच-बाधा होनेके समान जानकी वहां थी, ऐसा सूतका कथन है—

जानकी तु महाराज निःश्वसन्ती तपस्विनी ।

भूतोपहतचित्तेव विष्टिता विस्मृता स्थिता ३४

(अयोध्या. स. ५८)

‘सीता तो पिशाचबाधा होनेके समान वेगसे श्वास लेती हुई वहां खड़ी थी, कुछ भी स्मरण नहीं ऐसी ढरी हुई अवस्थामें वहां वह खड़ी थी ।’

यहां ‘भूत-उप-हत-चित्ता’ यह पद है, इससे ऐसा पता चलता है कि उस समय मनुष्योंकी भूतबाधा होती है, ऐसा लोगोंका विश्वास था । जब भूतबाधा होती है, उस समय जोरोंसे श्वासोच्छ्वास होता है, आगेपीछे का कुछ भी स्मरण नहीं रहता । मनुष्य सुस्तसा होकर अचेत गिर पड़ता है । इन लक्षणोंसे भूतबाधापर विश्वास था, ऐसा प्रतीत होता है ।

ततो भूतोपच्छ्रेय वेपमाना पुनः पुनः ।

धरण्यां गतसत्त्वेव कौसल्या सूतमब्रवीत् ३५

(अयोध्या. स. ६०)

‘पिशाचबाधा होनेके समान कौसल्या कांपने लगी ।’ यहां भी पिशाचबाधा होनेका उल्लेख है । यहां कहा है कि पिशाचबाधा होनेपर शरीर कांपने लगता है ।

## मुहूर्त

त्वर सौम्य मुहूर्तोऽयं भुवश्च दिवसो ह्ययम् २६

(अयोध्या. स ५६)

भुव मुहूर्त और भुव दिवसका उल्लेख यहां है। चल मुहूर्त और चल-दिन गृहप्रवेशके लिये योग्य नहीं है। चल मुहूर्तपर गृहप्रवेश किया जाय तो वह गृहप्रवेशकर्ता उस घरमें बहुत दिनतक नहीं रहता। भुव मुहूर्तपर तथा भुव दिनमें गृहप्रवेश करना योग्य है, जिससे उस घरमें सुखसे दीर्घ-कालतक वह मनुष्य रह सकता है। यह कल्पना इस समय प्रचलित थी, ऐसा यहां पता लगता है।

## कुंकुमतिलक

स्त्रियां अपने सिरपर कुंकुमतिलक लगाती थी, ऐसा पता लगता है। देखो—

‘इस वनमें एक बड़ा बंदर सीतादेवीने देखा। तब वह डर गयी और उसने रामको डरसे पकड़ लिया, तब रामने उस बानरको भय बताकर भगा दिया। इस गववड़ीमें—

मनःशिलायास्तिलकः सीतायाः सोऽथ वक्षसि।

समदृश्यत संक्रान्तो रामस्य विपुलौजसः २४

(अयोध्या. मर्ग १६)

‘सीताके सिरपर लगाया मन शिलाका लाल तिलक रामचन्द्रकी छातीपर लगा, जब सीताने रामको आलिंगन दिया’ उसे देखकर सीता हंसने लगी।

इससे स्त्रिया कभी कभी सुंदरता बढ़ानेके लिये सिरपर लाल तिलक लगाती थीं, ऐसा प्रतीत होता है। नहीं तो सीतादेवीके सिरपर तिलक थाता ही नहीं। प्रतिदिन सौभाग्य-चिह्न करके लगाती नहीं होंगी। प्रतिदिन लगानेका वचन अभी तक मिला नहीं। पुरुष अपने शरीरपर रत्नबंदन लगाने थे। स्त्रियां कुंकुम अथवा दूमरा मुँह लगाती थीं या नहीं, हम विषय-

में अधिक खोज होनी चाहिये ।

## क्षत्रियोंको प्रायोपवेशन करनेका अधिकार नहीं है

किं मां भरत कुर्वाणं तात प्रत्युपवेक्ष्यसे १६

ब्राह्मणो ह्येकपाश्वर्णेन नरान् रोद्धुमिहार्हति ।

न तु मूर्धाभिपिक्तानां विधिः प्रत्युपवेशने १७

( अयोध्या. सर्ग ११२ )

रामचन्द्रजी बोले— 'हे भरत ! मैंने कौनसा अपराध किया इसलिये तूने यहां इस तरह प्रायोपवेशन करके मरना चाहते हैं ? इसका अधिकार केवल ब्राह्मणोंको है । क्षत्रियोंको प्रायोपवेशनका अधिकार नहीं है ।' इसलिये क्षत्रिय प्रायोपवेशन न करें ।

## भरतके साथ कुत्ते

केकय देशसे अपने मातामहका आशीर्वाद लेकर भरत चला, उसके साथ भेंदके रूपमें जो वस्तुएं दीं थीं, वे ये हैं—

तस्मै हस्त्युत्तमांश्चित्रान् कम्बलानजिनानि च ।

सत्कृत्य केकयो राजा भरताय ददौ धनम् १९

अन्तःपुरेऽति संवृद्धान् व्याघ्रवीर्यबलोपमान् ।

दंष्ट्रायुक्तान् महाकायाञ्छुनश्चोपायनं ददौ २०

रुक्मनिष्कसहस्रे द्वे षोडशाश्वशतानि च ।

( अयोध्या. सर्ग ७० )

'केकय राजाने भरतके साथ उत्तम हाथी, उत्तम ऊनी वस्त्र, सिंह व्याघ्रके चर्म, अन्तःपुरमें बढाये गये व्याघ्रके समान बलवान् कुत्ते, सोनेकी दो सहस्र मुद्रायें, सोलह सौ छोटे इतना नजराना भरतके साथ भेज दिया ।'

इसमें भयानक कुत्ते और ऊनी वस्त्र ये मीमांसांतकी बहुमोल चीजें हैं । मण्डलचक्रवाल रथ भी थे । ( २९ ) चार चक्रवाले रथोंको घुमानेके लिये मण्डलचक्र बीचमें लगा होते हैं । गज्जर और ऊंट भी इस देशकी

विशेषता है।

## सेनाकी शिक्षा

तूर्णं त्वमुत्थाय सुमन्त्र गच्छ चलस्य योगाय बलप्रधानान् ।

( अयोध्याकाण्ड, सर्ग ९२।३० )

‘ हे सुमन्त्र ! तू शीघ्र चल और सेनाधिकारियोंसे कह दे कि सब सेनाको उत्तम सुव्यवस्थामें खड़े करो ।’ यहां ‘ चलस्य योगः ’ अर्थात् ‘ सेनाको संयुक्त करके ठीक पंक्तिमें खड़ा करना ’ ऐसा लिखा है जो सैनिकोंकी व्यवस्थाका द्योतक है।

## जावालीका नास्तिक मत और उसका खंडन

अयोध्या २१०-२१२ इन दो अध्यायोंमें जावाली ऋषिने कुछ नास्तिक जैसा प्रतिपादन किया था। इसका खण्डन स्वयं रामचन्द्रने किया है। यह सब विषय इन अध्यायोंमें देखने योग्य है। इससे स्पष्ट होता है कि श्रीरामचन्द्रजी वैदिक धर्मकी सुरक्षाके लिये कितना दक्ष थे। श्रीरामचन्द्रजीका संपूर्ण जीवनही आदर्श धार्मिक पुरुष जैसा है। सर्वत्र धर्मका जीवन इसके चरित्रमें है। इसीलिये इसे अवतार कहा है। ‘ धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि । ’ ( गीता ) यह वचन यहां सार्थ हुआ है।

इस तरह अयोध्याकाण्डके उत्तरार्धका  
निरीक्षण यहां समाप्त  
हुआ है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अयोध्याकांड  
समाप्त

